उषा प्रियंवदा का कथा–साहित्य

USHA PRIYAMVADA KA KATHA SAHITHYA

Thesis submitted to the
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

ब्रिजिट जोसफ के.
BRIDGET JOSEPH K.

Professor and Head of the Department
Dr. P. V. VIJAYAN

Supervisor
Dr. M. EASWARI
Professor

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

1993

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by BRIDGET JOSEPH, K., under my supervision for Ph.D., and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology,
Kochi - 682022

Dated: 27-12-93

Dr.M.EASWARI
Professor
(Supervising Teacher)

ACKNOWLEDGEMENT

This work was carried out in the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Kochi-682022 during the tenure of fellowship awarded to me by the Cochin University of Science and Technology. I sincerely express my gratitude to the Cochin University of Science and Technology for this help and encouragement.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology,
Kochi-682022

Dated: 27-12-93

BRIDGET JOSEPH, K.

पुरोवाक्

नये कथा-साहित्य के क्षेत्र में उषा प्रियंवदा अपनी ही कोटि की विलक्षण कथा-लेखिका हैं । वे आधुनिकता-बोध की कथाकार हैं । भारतीय मन और विदेशी परिस्थितियों का द्वन्द्व उनके कथा-साहित्य की विशेषता है । वे नये परिवेश और संस्कारों के बनने बिगड़ने को कथा-रूप देती हैं । प्रामाणिक और निर्भीक अनुभूतियों को साहस और तटस्थता से खींचने में वे समर्थ हैं । उन्होंने सूक्ष्मता और तन्मयता से नारी की अस्मिता की खोज और द्वन्द्व को उकेरा है । कलात्मक सन्तुलन, चेतना के गहरे स्तरों को वाणी देने का प्रयत्न और बौद्धिक ईमानदारी की वजह से समकालीन कथाकारों में इनका विशिष्ट स्थान है । नैतिकता के बदलते स्वरूप, आधुनिक जीवन के वैविध्य, अकेलापन, ऊब आदि चित्रित करने में वे गहरे यथार्थबोध का परिचय देती हैं । इन सब दृष्टियों से उनके कथा-साहित्य का अध्ययन अवश्य ही महत्वपूर्ण है ।

नये कथा-साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में कई स्थानों पर उषा प्रियंवदा का उल्लेख मिलता है । किन्तु उनके कथा-साहित्य पर स्वतन्त्र अध्ययन अब तक नहीं हुआ है । अतः इस शोधप्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य उषा प्रियंवदा के रचना-संसार का सही मूल्यांकन करना है । प्रस्तुत शोधप्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त हैं ।

प्रथम अध्याय "उषा प्रियंवदा - जीवन परिचय - रचना संसार" में उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व और रचना-प्रक्रिया को देखने-परखने का प्रयत्न किया गया है । प्रत्येक युग का कथा-साहित्य

समकालीन परिस्थितियों की देन है । इस अध्याय में तत्कालीन कथा-साहित्य का विकास, उसके परिप्रेक्ष्य में उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य का विश्लेषण तथा उनकी रचना-प्रक्रिया की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है ।

दूसरा अध्याय है "उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नारी की परिकल्पना ।" हिन्दी कथा-साहित्य में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है । स्त्री-पुरुष संबन्धों में कहीं आत्मीयता का पुट है, कहीं झूठा प्रेम भी है । रिश्ते की टूटन या दरार होने पर नारी या पुरुष अलगाव की स्थिति तक पहूँचता है । ऐसी स्थिति में स्त्री पर-पुरुष से या पुरुष पर-नारी से संबन्ध जोडते हैं और उनकी शारीरिक कामेच्छा की पूर्ति होती है । प्रस्तुत अध्याय में इन बातों पर विस्तार से अध्ययन किया गया है ।

"उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिकता का स्वरूप" है तीसरा अध्याय । इस अध्याय में उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में अंकित विभिन्न नैतिक समस्याओं को अध्ययन का विषय बनाया गया है । साथ ही स्त्री और पुरुष की प्रवासी भारतीय मानसिकता का भी विश्लेषण हुआ है ।

चौथे अध्याय "उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में अजनबीपन" में व्यक्ति के अजनबीपन का विश्लेषण हुआ है । यह अजनबीपन कभी वह स्वेच्छा से वरण करता है, कभी उस पर थोपा जाता

है । इसमें पति-पत्नी, परिवार-सदस्य और प्रेमी-प्रेमिका के बीच के अलगाव पर विचार किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय है "उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की शिल्पगत विशेषताएँ ।" इसमें लेखिका की रचनाओं में कथानक का ह्रास, सांकेतिकता, बिंबात्मकता, प्रतीकात्मकता, सरल सपाट भाषा, चित्रात्मकता, अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग आदि शिल्पगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है ।

उपसंहार में उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य के उल्लेखनीय पहलुओं को अनावृत किया गया है

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के प्रोफ्तर आदरणीय डॉ. एम. ईश्वरी के निर्देशन में यह शोधकार्य संपन्न हुआ । उन्होंने बहुमूल्य निर्देशों एवं सुझावों द्वारा जो मार्गदर्शन और स्नेहिल प्रोत्साहन दिया, उनके प्रति मेरी श्रद्धापूर्ण कृतज्ञता निवेदित है ।

लेखिका उषा प्रियंवदा से पत्र-व्यवहार करके मैं ने अपने विषय संबन्धी ज्ञान को समृद्ध किया है । उनका आभार भी मेरे साथ है । इस शोधकार्य में विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डॉ. पी. वी. विजयन ने मेरी जो सहायता की है, उनके लिए भी मैं आभारी हूँ ।

इस विभाग के अन्य गुरुजनों के उपदेश के लिए मैं कृतज्ञ हूँ । पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुंजिकावुट्टी तंपुरान और सहायक श्री पी. ओ. आन्टेणी के प्रति मैं आभारी हूँ ।

इस शोधप्रबन्ध की पूर्ति के लिए अपने माँ-बाप और भाइयों से मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है, उनका भी मैं सदैव आभारी रहूँगी । कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के प्रति मैं विशेष कृतज्ञ हूँ क्योंकि उन्होंने छात्रवृत्ति देकर मुझे आर्थिक संकट से बचाया ।

Bridget

ब्रिजिट जोसफ. के.

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोच्चि - 682 022.

अनुक्रमणिका

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय — 1 - 44

उषा प्रियंवदा - जीवन परिचय - रचना संसार

जीवन झाँकी - जीवन दर्शन - समकालीन संदर्भ - यथार्थ का नया धरातल - नगरबोध का अंकन - आँचलिकता - मूल्यविघटन - अस्तित्व की तलाश - अकेलापन - नारी का बदलता स्वरूप - शिल्पगत विशेषता - सृजन प्रक्रिया की रूपरेखा - उषा प्रियंवदा की कथा-यात्रा - पचपन खंभे लाल दीवारें - रुकोगी नहीं राधिका - शेष यात्रा - ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - एक कोई दूसरा - कितना बड़ा झूठ - मेरी प्रिय कहानियाँ - निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय — 45 - 102

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नारी की परिकल्पना

हिन्दी कथा-साहित्य और नारी - बदलते संबन्ध और नारी - पिता-बेटी संबन्ध - रिश्ते की टूटन - रिश्ते की आत्मीयता - रिश्ते की दरार - प्रेमी-प्रेमिका संबन्ध - बनता-बिगड़ता प्रेम - असफल प्रेम - अवैध संबन्ध - विवाहित पुरुष से प्रेम - प्रेम में धोखा - उन्मुक्त प्रेम -

गुरू-शिष्य संबन्ध - आत्मीयता - पति-पत्नी संबन्ध -
बिगडन - आत्मीयता - आर्थिक समस्या - ढीलापन -
बेमेल संबन्ध - आदर्श संबन्ध - भाई-बहन संबन्ध -
स्त्री-पुरूष संबन्ध में तीसरा व्यक्ति - पारिवारिक जीवन में
तीसरा व्यक्ति - प्रेम संबन्ध में तीसरा व्यक्ति - रूढिमुक्त और
आधुनिकता से संपृक्त नारी - काममूलक संवेदना - निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय 103 - 148
==========

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिकता
का स्वरूप

नैतिकता के विभिन्न रूप - साहित्य और
नैतिकता - हिन्दी कथा-साहित्य और नैतिकता - उषा प्रियंवदा
के कथा-साहित्य में अंकित नैतिक समस्याएँ - संयुक्त परिवार
विघटन - पति-पत्नी संबन्ध - प्रवासी भारतीय मानसिकता -
विदेशी वातावरण में घुटते नारी पात्र - विदेशी परिवेश में
आमग्न नारी पात्र - भारतीयता पर अनुरक्त नारी पात्र -
स्त्री-समाज की अन्य नैतिक भूमिकाएँ - विदेशी वातावरण में
घुटते पुरूष पात्र - विदेशी परिवेश में आमग्न पुरूष पात्र - पुरूष
समाज की अन्य नैतिक भूमिकाएँ - नैतिकता की व्यक्तिपरक
भूमिका - उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिक मूल्यों की
प्रतिष्ठा - उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिक मूल्यों
का ह्रास - निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय 149 - 193

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में अजनबीपन

हिन्दी कथा-साहित्य और अजनबीपन - उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में अजनबीपन - विवशता से ग्रहीत अकेलापन - अस्मिता की तलाश - परिवेशजनित घुटन - उषा प्रियंवदा की कहानियों में अजनबीपन - परिवार में अलगाव - वैवाहिक संबन्ध में अलगाव - प्रेमी से बिछुडने पर अलगाव - स्वदेश और परिवार छोडने पर अलगाव - पापबोध से उत्पन्न अकेलापन - आर्थिक कमी से उत्पन्न घुटन, अकेलापन - निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय 194 - 232

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की शिल्पगत विशेषताएँ

कथानक का ह्रास - पात्र-योजना - संवाद-वातावरण - शैलीगत प्रयोग - पूर्वदीप्ति शैली - संवादात्मक शैली - आत्मकथात्मक शैली - विवरणात्मक शैली - विलीन शैली - समाप्ति से शुरूआत - सांकेतिकता - प्रतीकात्मकता - बिंबात्मकता - भाषा - चित्रात्मकता - शीर्षकों की मनोवैज्ञानिकता - निष्कर्ष ।

उपसंहार 233 - 242
======

परिशिष्ट 243 - 251
=======

उषा प्रियंवदा की रचनाएँ

संदर्भ ग्रन्थ

पत्र - पत्रिकाएँ

========

पहला अध्याय

उषा प्रियंवदा - जीवन परिचय-रचना संसार

जीवन झाँकी

उषा प्रियंवदा का जन्मस्थान कानपुर है । उनकी प्रारंभिक शिक्षा कानपुर में, ढेढ भारतीय स्कूल, बालिका विद्यालय में हुई । पढाई में उषा प्रियंवदा बचपन से प्रगल्भ थीं और अध्यापिकाओं की प्रिय छात्रा रही । वे प्रारंभ से ही विद्यालय की अनुपालिका छात्रा भी थीं । पिता की मृत्यु और भाइयों के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय सहयोग के कारण उनका बचपन कभी अकेले, कभी संयुक्त परिवार में बीता । कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, हरिद्वार, दिल्ली - ये शहर उनके जीवन से निकट संबन्ध रखनेवाले हैं तथा उनका उल्लेख भी उनके कथा-साहित्य में कई स्थानों पर हुआ है । परिवार के सदस्य शिक्षित और सरकारी काम में होने के कारण कभी उन्होंने अपनी बहन को लडकी या नारी होने के हीनभाव का अनुभव नहीं दिया, बल्कि स्नेह ही दिया । 1948 में उनका परिवार दिल्ली में रहने लगा । उषा प्रियंवदा ने अंग्रेज़ी साहित्य में बी.ए, एम.ए और पी.एच.डी इलाहाबाद विश्वविद्यालय से की । तदुपरान्त उन्होंने अध्यापिका के रूप में लेडी श्रीराम कॉलेज में सेवा की । 1961 में उन्हें फुलब्रैट स्कौलर्शिप मिली और अमेरीकी और अंग्रेज़ी साहित्य का अध्ययन करने के लिए वे संयुक्त राष्ट्र अमेरीका गयीं और तबसे वहीं रहती हैं । अमेरीका में उषा प्रियंवदा की शादी प्रसिद्ध भाषाविद्वान श्री किम निलसन से हुई । अमेरीका के विस्कांसिन विश्वविद्यालय में दक्षिणएशियाई विभाग के प्रोफ्सर पद से सेवानिवृत्त होकर अब वे जाति, सेक्स और वंशीयता के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी फिल्म और दूरदर्शन सीरियल में नारी चित्रण पर काम कर रही हैं ।

जीवन-दर्शन

उषा प्रियंवदा युगीन चेतना से प्रभावित हैं । उनके जीवन-दर्शन के रूपायित होने में तत्कालीन परिस्थिति, युगीन प्रभाव एवं अनुभवज्ञान का महत्वपूर्ण हाथ है । जैसा उषा प्रियंवदा ने लिखा है, जो बात उन्हें बहुत सालती थी वह है समाज में नारी शोषण ।[1] वे समाज की परतों दर परतों में नारी के प्रति लगातार होनेवाले अन्याय और असमानता से खूब अभिज्ञ हैं । उनकी राय में भारतीय समाज में बचपन से ही लडके और लडकी में अन्तर किया जाता है जिसके कारण पुरुष प्रारंभ से ही अपने को श्रेष्ठ समझने लगता है और नारी हीन-भावना से ग्रस्त हो जाती है । वह बचपन से ही स्वीकार कर लेती है कि उसकी सारी खुशी, मान-सम्मान सब उसके पति और बच्चों पर आश्रित है । अगर कभी वह उस संबन्ध से अलग होती है - जैसे वैधव्य या तलाक से - तो उसे लगता है जैसे उसे जीने का कोई अधिकार नहीं है । इसलिए उषा प्रियंवदा की प्रारंभिक रचनाओं में आर्थिक विषमता, स्त्री होने की विडंबना, समाज के बन्धनों को दूर करने की अक्षमता अधिक पाई जाती हैं ।

उषा प्रियंवदा की दृष्टि में दिन प्रतिदिन बढती हुई आत्महत्याओं का यही एक कारण है कि स्त्रियों में कभी यह बोध जाग्रत नहीं होने दिया जाता कि वह भी समाज का एक सर्जन - उत्पादन - हिस्सा है । अपनी ज़िन्दगी इतनी फालतू जताई जाती है कि उसका अन्त करने में उसे कोई शंका नहीं । नारी को इस दयनीय स्थिति से मुक्त करना उषा प्रियंवदा का लक्ष्य है । अमेरीकी वातावरण की उन्मुक्तता,

---

1. पत्र व्यवहार

सेक्स के प्रति अकुंठा इसके लिए सहायक बन गयी । याने भारत छोडकर अमेरीकी समाज और जीवन में प्रवेश, उनके लिए और उनके कथा साहित्य के लिए समान रूप से एक मुक्ति का अनुभव था । इसी कारण से नारी के संदर्भ में अपने लिए अपने आप की जिम्मेदारी और आर्थिक स्वतन्त्रता- उषा प्रियंवदा के बाद के साहित्य का कथ्य है ।

समकालीन संदर्भ

भौगोलिक और राजनीतिक स्तर पर घटित देश के विभाजन ने मानवीय संबन्धों को तोडने का प्रयास किया । इसने हमारी सारी मर्यादाओं और नैतिक मान्यताओं को ठुकरा दिया ।[1] सामयिक परिस्थितियों से उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक दबाव यूरोपीय विचार-धाराओं से प्रेरित था । भारत के बुद्धिजीवि लोग इसकी ओर आकृष्ट हुए । अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद के प्रभाव से समाज के नैतिक मूल्यों में परिवर्तन हुआ ।[2] विभाजन के पीछे कार्यरत स्वार्थी राजनीतिज्ञों की वजह से जनता को भ्रष्टाचार का सामना करना पडा और आर्थिक स्थिति अधिक शोचनीय बन गयी । धीरे धीरे इस स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न हुआ । फिर भी बढती हुई जनसंख्या के कारण आर्थिक स्थिति में कोई उल्लेखनीय बदलाव नहीं हुआ ।

यथार्थ का नया धरातल

स्वतन्त्रता-पूर्व कथा साहित्य में अंकित यथार्थ, यथार्थ का वास्तविक रूप प्रस्तुत नहीं करता ।[3] तत्कालीन परिवेश ने जिस संकट-ग्रस्त स्थिति को जन्म दिया उससे इस समय के कथाकार दूर ही रहें ।

---

1. हिन्दी कहानी - दो दशक की यात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. नरेन्द्र मोहन - पृ. 270
2. नई कहानी उपलब्धि और सीमाएँ - डॉ. गोरधनसिंह शेखावात -पृ. 23
3. आज की हिन्दी कहानी - विचार और प्रतिक्रिया - मधुरेश -पृ. 35

घोर आत्मपरकता में डूबे रहनेवाले इन लोगों ने वैयक्तिक समस्याओं को अधिक महत्व दिया । दूसरी ओर नये कथाकारों ने काल्पनिक लोक में भटकाये गये व्यक्ति को उसके परिवेश से जोडा और उस परिवेश के साथ मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया । उन्होंने व्यक्ति और परिवेश को एकरूपता दी । याने परिवेश के बीच से व्यक्ति का आकलन करने का प्रयास किया । "नयी कहानी में तलाश पात्रों की नहीं, यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की । पहले कहानी कला-मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर, पहले कहानी झूठी थी, अब सच्ची है ।"[1] कमलेश्वर के अनुसार "उसकी यात्रा घटनाओं या संयोगों से न होकर प्रसंगों की आन्तरिक प्रतिक्रियाओं के बीच होती है और संवेदना के सूक्ष्म तन्तुओं पर धीरे धीरे आघात करती हुई वह एक संपूर्ण अनुभव से गुज़र जाती है, इसलिए वह कथायात्रा नहीं, पाठक के उस अनुभव से स्वयं की यात्रा हो जाती है ।"[2] नये और बाद के कथासाहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थ को स्वीकार किया है । इनमें रचनाकार व्यक्ति की आत्मोपलब्धि पर अधिक ज़ोर देते हैं । आधुनिक मानव के व्यक्तित्व में छिपी हुई पशुसमान विकृतियों को व्यक्त करने में यह मनोवैज्ञानिक प्रणाली अत्यन्त सहायक है ।

नगरबोध का अंकन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नगरीकरण की प्रक्रिया बहुत तेज़ी से हुई ।[3] नौकरी मिलने पर व्यक्ति कस्बायी जीवन के पवित्र वातावरण को छोडकर महानगर की चकाचौंध जीवन का अंग बनने को बाध्य

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 9।
2. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 6।
3. कहानीकार मोहन राकेश - डॉ. सुषमा अग्रवाल - पृ. 26

हो जाता है । यहाँ रहते समय नगर जीवन की यान्त्रिकता और अतीत की स्मृतियों के बीच संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । स्पष्ट है कि कस्बायी क्षेत्र से आया व्यक्ति किसी का पिता, किसी का बेटा या किसी का पति होगा । इन बन्धुजनों को रोटी, कपडा और निवासस्थान देना इस व्यक्ति का कर्त्तव्य है । जीवन व्यवस्था आयोजित करने के उद्देश्य से वह आया है लेकिन स्वयं अव्यवस्थ हो जाता है । नये कथाकार महानगर की भीड़ में अपरिचित बननेवाले व्यक्ति के साथ साथ उस परिवेश को भी प्रस्तुत करते हैं । नये कथा-साहित्य में महानगरीय जीवन का वास्तविक रूप अंकित है । अतः स्पष्ट है कि "नयी कहानी जीवन की कोख से जनमी है । उसके जन्म की पीडा, विकास की वंचना और परिणति की उपलब्धि सभी कुछ जीवन के पार्श्व में खडी हैं । वह जीवन से दूर नहीं जा पाई है । उसने ज़िन्दगी की तहों में प्रवेश किया है और वहाँ से उसे जो मिला है, वही सब उसका कथ्य है ।"[1]

<u>आँचलिकता</u>

नगर से दूर गाँव की ज़िन्दगी के सुख-दुख का सही चित्र भी नये कथाकार प्रस्तुत करते हैं । अमुक अंचल के संपूर्ण परिवेश को वहाँ की शब्दावली सहित वे चित्रित करते हैं । जनपदीय और सांस्कृतिक लोक विश्वासों को अनावृत करने में यह सहायक है । इस प्रकार की रचनाओं में पात्रों के साथ उसका परिवेश भी बोलता है । फणीश्वरनाथ रेणु की "तीसरी कसम", मार्कण्डेय की "भूदान" इस श्रेणी में आनेवाली कहानियाँ हैं ।

---

1. कहानीकार मोहन राकेश - सुषमा अग्रवाल - पृ. 29

मूल्य-विघटन

सदियों से चलनेवाली व्यवस्था की निरर्थकता अनावृत करके नये कथाकारों ने नूतन मूल्यों का आविष्कार किया । पुराने मूल्यों की अविश्वसनीयता से ऊब कर व्यक्ति नयेपन की तलाश करने लगा । इस तलाश में वह अनेक ऐसे संदर्भों से गुज़र गया जिन्होंने उसे जडतातुल्य बनाया । टूटे हुए नर-नारी की संकल्पना ऐसे संदर्भों की उपज है । "व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्धों में सबसे जटिल, नाटकीय और अनिवार्य संबन्ध स्त्री-पुरुष का आपसी संबन्ध है, इसलिए वही लेखकों को असाधारण रूप से आकर्षित करता है ।"[1] नये कथा-साहित्य में नर-नारी के बदलते संबन्धों से उत्पन्न अकेलापन, ऊब, उदासी का स्वर उपलब्ध है । साथ ही प्राचीन और नवीन मूल्यों के बीच द्वन्द्व का शिकार होनेवाले व्यक्ति की त्रासद स्थितियों को भी नये कथाकार प्रस्तुत करते हैं । बदलते हुए यौन संबन्धों की जटिलता साठोत्तर युग के कथा-साहित्य का कथ्य है । अवैध संबन्ध को स्थापित करके आधुनिक मानव पुराने मूल्यों को चोट पहुँचाता है । मानवीय संबन्धों में प्रेम का कोई स्थान नहीं । त्याग और बलिदान की बात भी अप्रासंगिक हो गयी । संयुक्त परिवार-विघटन भी मूल्य-संक्रमण के अन्तर्गत आ जाता है । "परिवार-विघटन केवल एक बडे परिवार का छोटे परिवार में संकुचन नहीं है, बल्कि मूल्य के स्तर पर बडे परिवारों की जातीय, रिश्ते संबन्धी फैली हुई विस्तृति की जगह छोटे एक यूनिटवाले परिवारों के परिवर्तित आचरण की नयी निर्मिति है ।"[2] परिवार सदस्यों के बीच का संबन्ध अब धनाश्रित हो गया है ।

---

1. कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 207
2. साप्ताहिक हिन्दुस्तान - डॉ. गंगाप्रसाद विमल - 30 मार्च 1980 - पृ. 39

इस मूल्य-च्युति की ओर इशारा करके कमलेश्वर ने लिखा है - "जीवन की सहजता स्वयं एक मूल्य है । हमारी सभ्यता ने हमारे ऊपर इतने कृत्रिम आवरण डाल रखे हैं कि हम मनुष्य की तरह न जीकर यन्त्र की तरह जीते हैं ।"[1]

अस्तित्व की तलाश

मानवीय अस्तित्व से जुडी हुई रचनाओं का चयन साठोत्तर युग के कथा-साहित्य की विशेषता है । ज़िन्दगी में अनिश्चय की स्थिति आने पर व्यक्ति समझता है कि उसका कोई अलग अस्तित्व नहीं । वह अपने को पराधीन मानता है । कमलेश्वर की "तलाश", मोहन राकेश की "कई एक अकेले", निर्मल वर्मा की "पराये शहर में" जैसी कहानियों में अपने आप को बनाये रखने के मानव की ज़िद का अंकन है । मानव की दृष्टि में स्वयं वही श्रेष्ठ है । बाकी लोगों को वह कोई महत्व नहीं देता । अपने आपको पूर्णवान बनाने के प्रयत्न में वह प्रेमी, पत्नी और बच्चों को भूल जाता है । इसलिए देवीशंकर अवस्थी ने कहा - "बाधक तत्व अब समाज नहीं रहा, नीति और कर्त्तव्य के अंकुश नहीं रहे । अब तो बाधक अपने ही व्यक्तित्व का अंश है । वही अंश खलनायक है, उसी की महिमा के नीचे बेचार प्रेमी अंश अप्रतिम हो दुबक जाता है ।"[2]

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 63
2. नई कहानी - संदर्भ और प्रकृति - डॉ. देवीशंकर अवस्थी -पृ. 160

अकेलापन

बदलते जीवन मूल्यों की वजह से व्यक्ति में अकेलापन और अजनबीपन की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं । परिवार और परिवेश में व्यक्ति इसको झेलता है । इसके कारण औद्योगीकरण, यान्त्रिकता, बढती हुई जनसंख्या, बेकारी, आर्थिक संकट हैं । यह अकेलापन व्यक्तिमन की घुटन और निराशा की अभिव्यक्ति करता है ।

नारी का बदलता स्वरूप

स्वतन्त्रता-पूर्व नारी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी । घर के चार दीवारों के अन्दर सिमटकर जीवन यापन करना इसका अभिशाप बन गया था । महादेवी वर्मा की राय में "चाहे हिन्दु नारी की गौरव गाथा से आकाश गूँज रहा हो, चाहे उसके पतन से पाताल काँप रहा हो, उसके लिए न सावन सूखा न भादों हरा की कहावत चरितार्थ होती रही । उसे हिमालय को जला देनेवाले उत्कर्ष और समुद्र तल की गहराई से स्पर्धा करनेवाले अपकर्ष दोनों का इतिहास आँसूओं से ही लिखना पडा है ।"[1] स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा के फलस्वरूप नारी की इस स्थिति में परिवर्तन आया । पूर्ण रूप से न होने पर भी अब नारी का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है ।[2]

प्रवासी भारतीय मानसिकता

विदेश-प्रवास से संबन्धित अनुभवों को चित्रित करने में उषा प्रियंवदा, निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव वैद आदि कथाकारों का महत्वपूर्ण योगदान है । इन कथाकारों की दृष्टि उच्च शिक्षा प्राप्त

---

1. श्रृंखला की कडियाँ - महादेवी वर्मा - पृ. 39

करने विदेश गये और वहाँ बसनेवाले भारतीयों पर पडी है । विदेशी परिवेश के साथ साथ वहाँ रहनेवाले भारतीयों की मानसिक स्थितियों को इन कथाकारों ने अपने कथासाहित्य में अंकित किया है । वहाँ से लौटने पर स्वदेश में उन्हें अजनबी स्थिति का एहसास होता है । प्रवासी व्यक्ति अपने संस्कारों से आबद्ध होकर भी वहाँ के उन्मुक्त वातावरण से अवश्य ही प्रभावित हो जाता है । पाश्चात्य और देशी सभ्यता के प्रभाव से जीनेवाले पात्रों के मानसिक तनाव या वैचारिक रूपान्तरण को उन्होंने वाणी दी है । पूर्ण रूप से इन पात्रों ने अपने को विदेशी परिवेश के अनुरूप ढाल नहीं लिया बल्कि एक सीमा तक अपने को उसके अनुरूप बना लिया है ।

शिल्पगत विशेषता

नये कथा-साहित्य में कथानक का ह्रास एक उल्लेखनीय शिल्पगत विशेषता है । जीवन के छोटे से प्रसंग को लेकर नये कथा-साहित्य की रचना होती है । नये कथाकारों ने अनेक शिल्पगत प्रयोग भी किये हैं जैसे पूर्वदीप्ति शैली, आत्मकथात्मक शैली, विलीन शैली । भाषा की कृत्रिमता और जडता को तोडने के लिए साकेतिकता, बिम्बात्मकता और प्रतीकात्मकता का प्रयोग भी किया है । इनके द्वारा यथार्थ संवेदना को वे सूक्ष्म रूप में प्रकट करते हैं । कभी कभी आंचलिक भाषा का प्रयोग करके किसी अंचल विशेष के जीवन का अंकन वहाँ की भाषा के द्वारा सजीवता से कथाकार प्रस्तुत करते हैं । नये कथा-साहित्य की भाषा लेखकीय व्यक्तित्व से आरोपित नहीं । उनके पात्र जिस भाषा में सोचते हैं और जीते हैं, उसे ही नया कथाकार अभिव्यक्ति देते हैं ।[1]

---

1. नई कहानी उपलब्धि और सीमाएँ - डॉ. गोरधनसिंह शेखावत - पृ. 237

उपर्युक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि "60 के बाद की हिन्दी कहानी मानव विश्वास की आदर्श कहानी नहीं है, अपितु वह मनुष्य मस्तिष्क के भीषण संकटबोध की यथार्थ प्रतीति की कहानी है जो मानव पीडन को इसलिए व्यक्त नहीं करती कि वह कोई प्रशंसनीय प्रसंग है अपितु वह सिर्फ यथार्थ-बोध है ।"[1]

उषा प्रियंवदा की सृजन-प्रक्रिया की रूपरेखा

रचनाकार के व्यक्तित्व विकास के अनुरूप उसकी रचनाओं में भी विकास द्रष्टव्य है । उषा प्रियंवदा की रचनाएँ उनके रचना व्यक्तित्व की प्रामाणिक साक्ष्य हैं । कृति पर कृतिकार के व्यक्तित्व का प्रभाव पडता है । हडसन ने कहा है -"प्रत्येक महान कलाकार एक नये तत्व को ले आता है जो वह स्वयं है ।"[2] परिचित सामाजिक जीवन से इकट्ठी हुई सामग्री पर रचनाकार की रचना दृष्टि उतना अधिक निर्भर नहीं करती जितना उसके अनुभवों पर निर्भर करती है । अतः "अपनी रचना प्रक्रिया के दौरान जिस तीव्रता से रचनाकार गुज़रता है, वह उसका स्वयं का एक अनुभव है जो सबसे अच्छा और प्रामाणिक है ।"[3]

सर्जनात्मक संभावना में भावांकुरण से कलात्मक परिणति तक रचनाकार को अनेक प्रकार की मानसिक स्थितियों से गुज़रना पडता है ।

---

1. धर्मयुग - 27 मार्च 1966 - गंगाप्रसाद विमल
2. An Introduction to the Study of Literature - Hudson-P-15
3. समकालीन कहानी का रचना विधान - डॉ. गंगाप्रसाद विमल -पृ. 66

उषा प्रियंवदा की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं । इसलिए वह कहती है "मैं यह भी नहीं जानती कि जो कुछ लिखा जा रहा है, वह पूरा भी होगा, या "अधूरे प्रारंभ" या "नोट्स फॉर अ न्यू नॉवल" या "गुड बिगिनिंग" नामक फाइलों में बन्द होकर बरसों उपेक्षित पडा रहेगा ।"[1] कभी कभी लेखिका को आश्चर्य होता है कि क्या यह सृजन प्रक्रिया अपनी तूलिका से संपूर्ण हो गई या नहीं । ऐसी स्थिति में उन्हें लगता है कि वे "वे" नहीं रहती, कोई दूसरा व्यक्ति है । साथ ही उन्हें इस बात का भी एहसास होता है कि भावावेश युक्त किसी अदृश्य और अव्यक्त शक्ति उनके आलस्य को दूर करके रचना सृष्टि की पूर्ति करवाती है ।

उषा प्रियंवदा ने कॉलेज के दिनों में ही लिखना प्रारंभ कर दिया था । उनके अनुसार पहले ही उनकी सृजन-प्रक्रिया की कोई बन्धी हुई लीक नहीं रही । कभी कभी कोई भूली हुई बात कहानी या उपन्यास में आती है । अत: रचना सृष्टि का कोई कैटेलौगिंग सिस्टम नहीं । इसका मतलब यह नहीं कि असम्बद्ध बातों की कहानी वे प्रस्तुत करतीं । इनकी हर रचना का निश्चित मक्सद है । पढाई के समय में भी बाढ के समान उमडनेवाली भावना को रोकना असंभव हो जाता है ।

अमेरीका आने पर रचना-सृष्टि का आयाम अधिक व्यवस्थित हो गया । रचना में सतर्कता और सूक्ष्मता आ गयी । रचना की श्रेष्ठता के बढाव के साथ साथ उसके व्यक्तित्व में अधिक

---

1. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - अगस्त 1969 - उषा प्रियंवदा-पृ. 42

अलगाव और तटस्थता मुखर हो उठी । लेखिका के शब्दों में "जहाँ मैं रहती हूँ , उस नगर में चार सौ तेइस भारतीय हैं । संगीत, समारोह, मुशायरे, भोजन, हिन्दी फिल्में, चाट-पार्टियों में निमन्त्रण मिलते हैं और प्राय: सम्मिलित भी होती हूँ, पर उस सबके बावजूद भी जैसे उनके जीवन की परिधि पर हूँ । कभी मध्य में नहीं । भारत लौटने पर भी ऐसा ही लगता है, इसलिए वह अलगाव शायद मेरे व्यक्तित्व और लेखन का अभिन्न अंग बनता जा रहा है ।"[1] लेखिका ने व्यक्त किया है कि सामाजिक स्तर का यह बदलाव मात्र उनका ही नहीं, बल्कि सभी प्रवासी भारतीय लोगों की स्थिति यही है । इसका कारण ज़रूर पाश्चात्य वातावरण का प्रभाव है । अकेलापन से पीडित व्यक्ति की मानसिक व्यथा को एक कैमरा की तरह लेखिका स्वीकार करती हैं । यह फिल्म बाद में आकस्मिक ढंग से एक कहानी के रूप में अवतरित होता है । इस प्रक्रिया से लेखिका भी अनभिज्ञ हैं ।

उषा प्रियंवदा को अमेरीकी लेखकों से भी लिखने की प्रेरणा मिली । एक अमेरीकी लेखक के अनुसार प्रतिभा मात्र से एक व्यक्ति लेखक नहीं बनता । अभिरुचि होनी चाहिए । रचना करने का प्रयत्न भी उसकी ओर से होना चाहिए । बागवानी में तत्पर लेखिका मानती हैं कि कुछ फूल स्वयमेव खिल उठते हैं और कुछ पौधों पर कठिन परिश्रम करना चाहिए । साहित्य सृष्टि की स्थिति भी यही है । इसलिए वह अमेरीकी लेखक पूछता हैं - "लेखक के जीवन में व्यवस्था होनी चाहिए, लेखक में स्टैमिना चाहिए । प्रतिभा ? प्रतिभा तो पचासों

---

1. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ. 43

लोगों में होती है, लेकिन सभी तो लेखक नहीं बन पातें ।"[1] सृजन प्रक्रिया के बाद कुछ रचयिता संशोधन किये बिना प्रकाशित नहीं करते । कुछ लोगों के अनुसार संशोधन की कोई ज़रूरत नहीं । उषा प्रियंवदा का मत यह है कि "मेरी सृजन प्रक्रिया में ये दोनों ही रूप सम्मिलित हैं, रिवाइज़ करना, शब्द विन्यास बदलना, काटना-छाँटना मैं स्वाभाविकता से लेती हूँ, यदि कृति में मुझे उसकी आवश्यकता लगती है । विशेषकर लंबे, औपन्यासिक लेखन में मुझे कम से कम दो तीन ड्राफ्ट लिखने पड़ते हैं, उससे सन्तुष्टि तब भी नहीं होती ।"[2]

पढ़ते वक्त या किसी काम में व्यस्त रहते वक्त लिखे गये पन्नों से सृजनात्मकता को आगे बढ़ाने की प्रेरणा भी लेखिका को प्राप्त हुई । इस "अधूरे प्रारंभ" को उन्होंने अमेरीकी जीवन प्रणाली से ही हासिल की । लेखिका ने इसकी ओर संकेत दिया है कि "यहाँ के बेहद व्यस्त, बेहद गतिशील जीवन का हर अंग व्यवस्थित है । सत्र के पहले दिन ही छात्र अध्यापक से अपेक्षा करते हैं कि उन्हें आगामी साढ़े तीन महीनों का कार्यक्रम थमा दिया जाये, किस सप्ताह, किस दिन, किस लेखक या पुस्तक की चर्चा होगी, यह मुझे भी पहले से ही केवल निर्धारित ही नहीं, बल्कि टाइप और मिमियोग्राफ कर तैयार रखना पड़ता है ।"[3] इस निर्धारित प्रणाली की वजह से लिखे गए पन्नों की आवश्यकता पड़ने पर सारे घर में इसकी तलाश करने की ज़रूरत नहीं । लिखने का मूड आने पर इन "अधूरे प्रारंभों" की

---

1. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ. 43
2. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ. 44
3. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ. 44

सहायता से काम आगे बढ सकता । लेखिका की राय में "प्राय: यह एक ऐसे स्विच-बटन का काम देते हैं, जिन्हें पढकर क्या लिखना प्रारंभ किया था - फिर ताज़ा हो आता है । यदि मूड काफी प्रबल हुआ तो कभी कभी कुछ महीनों पहले शुरू की हुई कहानी समाप्त हो जाती है, या फिर उन पन्नों में कुछ और जुड जाते हैं ।"[1]

उषा प्रियंवदा की सृजनात्मकता को आगे बढाने का कार्य उनके नोट्स की ओर से भी हो जाता था । उषा प्रियंवदा के नोट्स की सीमा उनकी डायरी मात्र नहीं । साहित्य सृष्टि करते समय उनकी याद में उत्पन्न घटनाओं की सहायता को भी उषा प्रियंवदा श्रेष्ठ मानती हैं । बीते गये मूड या दृश्य की याद करने में नोट्स का बहुत बडा हाथ है । कहानियों और उपन्यासों की रचना करने के लिए आवश्यक सामग्रियों का सूक्ष्म अंकन इन नोट्स में उपलब्ध है । लेकिन नोट्स में से ली गई सामग्रियाँ रचना रूप धारण करते वक्त भिन्न प्रकार में अवतरित होती हैं । ऐसी स्थिति में रचना में कल्पना और यथार्थ को ढूँढ निकालना असंभव हो जाता है । किसी नयी जगह के प्रति मोह होने पर लेखक की रचना में अवश्य उसका उल्लेख आएगा । उषा प्रियंवदा की स्थिति भी वैसी ही है । एक नयी जगह से परिचित होने पर वे कागज़ के टुकडे में उसकी विशेषता नोट करती हैं । नहीं तो बाद में कभी उस स्थान का पूरा चित्र याद में नहीं उभरेगा । लेखिका के नोट्स भारतीय परिवेश के समकालीन लेखकों से उपलब्ध प्रेरणा को कुरेदने का एक साधन भी हैं ।

---

1. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ. 44

अपनी सृजन प्रक्रिया की रूप रेखा उषा प्रियंवदा ने इस प्रकार दी है कि "लिखने के लिए भी एक छोटा सा रिचुअल है । काफी देर तक विचार उमडते रहने पर भी हाथों से इधर उधर कुछ करती रहती हूँ । पेडों में पानी देना, जूडा खोलकर चोटी बाँधना, फर्नीचर को इधर से उधर लगाना, हर क्रिया उस क्षण को पास लाती जाती है जबकि कलम उठाकर लिखना प्रारंभ होगा । एक बार बैठने पर फिर कुछ दुश्वार नहीं लगता, क्योंकि अदृश्य द्वार खोलकर मैं एक ऐसे संसार में चली जाती हूँ, जो यथार्थ भी है, और काल्पनिक भी, जहाँ पात्र बहुत आत्मीय हैं और बहुत अपरिचित और मनमानी करनेवाले भी ।"[1]

उषा प्रियंवदा की कथा - यात्रा

उषा प्रियंवदा की रचनाओं का प्रमुख कथ्य नारी मन की आलोचना है । उसके पीछे प्रकट सामाजिक उद्देश्य है । नारी के विविध स्वरूपों को अनावृत करके उसके जीवन की समस्याओं की ओर उन्होंने इशारा किया । तत्कालीन संघर्षमय जीवन के विभिन्न संदर्भों में नारी के अधिकारों के लिए लडने की सामर्थ्य उषा प्रियंवदा के रचना व्यक्तित्व की विशेषता है । उनकी रचनाएँ अनुभवों की विविधता प्रसारित करती हैं । उषा प्रियंवदा की राय में लिखना उनके जीवन का अभिन्न अंग है और उनके लिए अत्यन्त आवश्यक भी है । किसी रचना की सृष्टि करने में उन्हें कोई दुविधा नहीं । उनके लिए सृजन कार्य सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है । इसलिए उन्होंने कहा -

---

1. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ. 45

"सृजन क्रिया मेरे अन्दर, मन में बराबर चलती रहती है, उसकी अभिव्यक्ति चाहे क्लास में दिए गए लेक्चर में हो या लंबे पत्रों या नोटबुक में ।"[1] उषा प्रियंवदा की रचनाओं में उनके परिचित व्यक्तियों की जीवनी झलकती है । इन रचनाओं में आत्म-मंथन है, अस्मिता की खोज की प्रक्रियाएँ मिलती हैं । वर्तमान के माध्यम से सामाजिक स्थिति का अन्वेषण उषा प्रियंवदा की रचनात्मकता का एक प्रमुख अंग है ।

उपन्यासों का रचना-विधान

नव अधिकार चेतना से युक्त शिक्षित नारी जीवन में पुरुषोचित बोझ उठाती है ।[2] घर की बडी सन्तान होने के नाते परिवार के सभी सदस्यों का उत्तरदायित्व उसे अपने कन्धों पर लेना पडता है । पुरुष के समान वह भी अर्थोपार्जन करती है । उसकी भावनाओं और पारिवारिक, सामाजिक परिवेश के बीच निरन्तर संघर्ष हो रहा है ।[3] इस संघर्ष में पिसनेवाली नारी को "पचपन खंभे लाल दीवारें" की कथा का केन्द्रबिन्दु बनाया गया है । 1968 में प्रकाशित "रुकोगी नहीं राधिका" में अस्मिता की तलाश करनेवाली नारी को अंकित किया गया है । तीसरे उपन्यास "शेष यात्रा" में लेखिका ने सदियों से चलने-वाली नारी समस्याओं को अनावृत किया है । साथ ही शिक्षा प्राप्त करके अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने का उचित प्रयत्न करनेवाली नारी को चित्रित किया गया है ।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 10
2. हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना - डॉ. एन. के जोसफ-पृ. 160
3. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - डॉ. खलचन्द आनन्द - पृ. 231

पचपन खंभे लाल दीवारें

कथाकार के रूप में उषा प्रियंवदा की रचना-प्रक्रिया की शुरूआत 1960 के बाद ही हुई । लेडी श्रीराम कॉलेज में काम करते समय कई प्रोफ्सर, सहपाठी और मित्रों ने उनकी रचनाओं की प्रशंसा की थी और आगे लिखने की प्रेरणा भी दी थी । 1961 में उषा प्रियंवदा ने प्रथम उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" की रचना की । उपन्यास की नायिका सुषमा दिल्ली के एक कॉलेज की अध्यापिका है । उसका घर कानपुर में है । घर पर पक्षाघात से पीडित बापू है, माँ है और छोटे भाई-बहन हैं । सुषमा की माँ का दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं था । कुछ भी करने को असफल पति, दुल्हिन बनने युक्त दो बेटियाँ, छोटे बच्चों की पढाई-जीवन के ये सब भार उसे एक अतृप्त मानसिकता से भर देते हैं । पिताजी के पेंशन पर घर का गुज़ारा करना संभव नहीं । इसलिए सुषमा का वेतन ही घर की प्रमुख आमदनी है । बडी बेटी होने के कारण घरवालों की देखभाल उसके कन्धों पर है । बहन नीरू की शादी, प्रतिमा, विनय और संजय की पढाई - सुषमा संबन्धों के तनाव से उत्पन्न वेदना में टूटती है । दिल्ली में नील कश्यप नामक युवा से सुषमा की मुलाकात होती है । सुषमा का प्यासा नारीत्व सारे निषेधों को अनसुनाकर कश्यप के प्रेम संबन्ध में डूब जाता है । तैंतीस साल की नारी और उससे पाँच वर्ष छोटे सुन्दर युवक के प्रेम संबन्ध से कॉलेज के लोग ईर्ष्यालू हो जाते हैं और सुषमा उनके बीच चर्चा का विषय बन जाती है । प्रिन्सिपल उसे बुलाकर व्यवहार सुधार करने को कहती है, या इस्तीफा देकर वार्डेन पद के उत्तरदायित्व से विमुक्त होने का उपदेश देती है । दूसरी ओर परिवार में निरुमा की शादी की तैयारियाँ होती हैं ।

परिवार का दायित्व सुषमा के जीवन का एक पक्ष है तो दूसरे पक्ष में नील उससे शादी करने तैयार खडा है । शादी करके सुषमा का सारा उत्तरदायित्व उठाने के लिए वह तैयार भी है । यह सुषमा नहीं चाहती । अतः सामाजिक और पारिवारिक दबाव की वजह से वह नील के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है । फिर भी नील के होलैण्ड-गमन के पहले सुषमा उससे मिलकर एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करना चाहती है । लेकिन अन्तिम क्षण में इरादा बदलती है और वह उस कॉलेज के पचपन खंभों और लाल दीवारों के अन्दर घुट-घुटकर जीने का निश्चय लेती है ।

उषा प्रियंवदा इस बात को स्वीकार करती हैं कि उपन्यास में अंकित घर-पर्दों और साड़ियों का रंग, नौकरानी का नाम निश्चय ही उन्होंने एक परिचित युवती से लिया है । देवीशंकर अवस्थी की राय में "सुषमा और नील का प्रेम जिन कारणों से असफल रह जाता है उसके पीछे कहीं मनुष्य की संकल्प शक्ति और बुद्धिमता की पराजय झलकती है । उस प्रेम की एक सपाट सफलता यह रही कि दोनों अलग हो गए बिना किसी ऐसे कारण के जिसकी अनिवार्यता अधिक संगत होती ।"[1] इसका कारण यह है कि प्रस्तुत उपन्यास की रचना करते समय उषा प्रियंवदा का रचना व्यक्तित्व भारतीय परंपराओं को तोडने नहीं देती । सुषमा बाहर से आधुनिक होते हुए भी आन्तरिक रूप से परंपरा का पालन करने को उत्सुक रहती है । इसलिए "वे मूलतः भारतीय होने के कारण कथा के अन्त में एक कृत्रिम आदर्शवाद को स्वीकारती है ।"[2]

---

1. विवेक के रंग - डॉ. देवीशंकर अवस्थी - पृ. 380
2. साठोत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पारूकान्त देसाई - पृ. 130

रुकोगी नहीं राधिका

अपने व्यक्तित्व विकास के अगले चरण में लेखिका भारतीय रीति-रिवाज़ों का उल्लंघन करनेवाली राधिका जैसी नारी को 1968 में प्रकाशित "रुकोगी नहीं राधिका" में प्रस्तुत करती हैं । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा जहाँ परिवार के उत्तरदायित्वों के बीच पिसती हुई नील को एक तरह से त्याग देती है, वहीं से राधिका की एक यात्रा जिसे खोज भी कहा जा सकता है प्रारंभ होती है ।"[1] माँ की मृत्यु के बाद पिता बेटी राधिका को प्यार के साथ पालता है । पिता से अधिक निकट होने के कारण वह अपने जीवन में किसी दूसरे का प्रवेश नहीं चाहती ।[2] माँ की मृत्यु के अठारह वर्ष बाद पिता अपने से बीस वर्ष छोटी विद्या से विवाह करता है । पिता से प्रतिशोध लेने के लिए वह डैन नामक विदेशी पत्रकार के साथ अमेरीका चली जाती है । डैन में पिता तुल्य स्नेह ढूँढने की वजह से वह उसे छोड देता है । स्वाभिमानी राधिका अपने आप मिसेज़ होमर के मकान में रहने का इन्तज़ाम करती है । काम के साथ साथ पढाई करके फाइन आर्ट्स में एम.ए. डिग्री भी वह हासिल करती है । राधिका स्वदेश लौटना चाहती है । वह पिता से अपने व्यवहार पर माँफी माँगते चिट्ठी लिखती है । एयरोड्रोम में उसे लेने घर से कोई नहीं आया । विद्या की सहेली का भाई अक्षय उसे अपने फ्लैट पर ले जाता है । रात का ट्रेन पकडकर वह घर चली जाती है । लेकिन रास्ते में लखनऊ में मामा-मामी के पास रुकती है । घर आने पर विद्या सहर्ष उसका स्वागत

---

1. साठोत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पारूकान्त देसाई - पृ. 134
2. हिन्दी उपन्यास के पद-चिह्न - डॉ. मनमोहन सहगल - पृ. 302

करती है । विमाता होने के कारण राधिका कभी उससे स्नेहपूर्ण व्यवहार करने का प्रयास नहीं करती । घर पर पिता नहीं मिले । विद्या से पता चलता है कि पिता गंगा पारवाली कोठी में अकेले रहकर किसी पुस्तक की रचना में संलग्न है । वहाँ जाकर राधिका पिता से भेंट करती है । लेकिन वह उस वातावरण में न रह पाती है । अगले दिन वह दिल्ली लौट आती है । वहाँ अक्षय से राधिका की मुलाकात होती है । अक्षय राधिका से प्यार करता है । लेकिन वह उसके अतीत के प्रति शंकालू है । राधिका यह जानती है । इसलिए वह अक्षय के प्रति प्यार होते हुए भी अपने से दूर खडा करती है । दिल्ली में राधिका का मनीश के साथ भेंट होती है । दोनों का परिचय विदेश में ही हुआ था । मनीश दिल्ली का एक बडा आर्ट इन्स्टीट्यूड का डायरेक्टर है । हमेशा सुन्दर और नई नई लडकियों से रिश्ता स्थापित करने में उत्सुक मनीश राधिका को नई प्रेमिका के रूप में स्वीकार करता है । राधिका का भाई बिज़नस के काम से दिल्ली आता है और राधिका को अपने साथ लखनऊ ले जाता है । वहाँ रहते समय मनीश विवाह प्रस्ताव लेकर उसके घर आता है । राधिका को विद्या के आत्माघात का समाचार मिलता है । घर पहूँचने पर पिता राधिका से उसके साथ रहने को कह देता है । लेकिन वह मानती नहीं । राधिका मनीश के साथ चले जाने का निर्णय लेती है । "राधिका दो संस्कृतियों के पाटों में पिसकर अनिर्णय और अकेलेपन को झेलती है । वह दोनों संस्कृतियों- विदेशी और देशी - में मिसफिट होकर रह जाती है ।" [1] स्वयं उषा प्रियंवदा ही इसका संकेत देती हैं कि राधिका की कहानी यथार्थ जीवन की कथा है जिसमें

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - सं. डॉ. नरेन्द्र मोहन - पृ. 47

मुख्य भूमिका निभानेवाली राधिका लेखिका की एक बन्धु है ।[1]
"शिक्षा से उसने शिष्ट जीवन की परंपरा पायी है, जिसे अपने जीवन में उतार लिया है । उसका शील और विवेक परंपरागत पारिवारिक मूल्यों के अनुरूप नहीं है । वरन् वह व्यक्तिनिष्ठ है । प्रतिभाशील, मननशील राधिका में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह है । उसके जीवन की मान्यताओं को ठोस लगी है, इसलिए वह अतीत को भूलना चाहती है । वह पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है पर यह प्रभाव कहीं भी उसके व्यक्तित्व पर थोपा हुआ सा प्रतीत नहीं होता । वह बस वहीं तक ही जहाँ तक उसका व्यक्तित्व उसे ग्रहण कर सका है । इसलिए उसके विचारों में गांभीर्य है ।"[2]

शेष यात्रा

1984 में प्रकाशित "शेष यात्रा" उषा प्रियंवदा का तीसरा उपन्यास है । रचनाकार के व्यक्तित्व-विकास के इस पहलू में तलाक के बाद आत्महत्या का सहारा न लेकर एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करनेवाली अनुका की कथा प्रस्तुत करती हैं । अनुका एक मध्यवर्गीय परिवार की लडकी है । माँ-बाप की मृत्यु के बाद मामा-मामी द्वारा निर्धारित जीवन काटने को वह बाध्य हो जाती है । अनुका के रिश्ते की दीदी से शादी करने आये डॉ. प्रणवकुमार अनुका के सौंदर्य से आकर्षित होता है और उससे शादी करता है । शादी के बाद प्रणव अनुका को लेकर विदेश चला जाता है । अपरिचित

---

1. पत्र व्यवहार
2. हिन्दी उपन्यास - एक नयी दृष्टि - इन्द्रनाथ मदान - पृ. 87

वातावरण से किसी न किसी तरह से मेल खाने के प्रयत्न करने पर अनुका को कई स्तरों पर मानसिक द्वन्द्व होता है । यह द्वन्द्व उस संदर्भ में और भी बढ जाता है जब प्रणव धीरे-धीरे अनुका के हर काम में कोई कमी ढूँढ निकालता है । माँ बनने की अनुका की इच्छा को भी प्रणव ठुकराता है । प्रणव का परिचय चन्द्रिका से होता है । वह न्यूयोर्क में एक टी. वी. स्टेशन में प्रोग्रामों की प्रोड्यूसर है । प्रणव डाक्टरी छोडकर फिल्म बनाने की योजना करता है । शूटिंग के लिए वह कैलीफोर्निया जाना चाहता है । प्रणव के साथ अनुका भी जाना चाहती है । लेकिन प्रणव उसे रोकता है । अनुका को ज्योत्सना बेन से पता चलता है कि प्रणव वहाँ चन्द्रिका के साथ रहता है और वह उससे शादी करना भी चाहता है । अनुका समझती है कि शादी के पहले ही प्रणव के कई स्त्रियों से अवैध संबन्ध थे । यह अनुका की विक्षिप्त मानसिकता का कारण बन जाता है । प्रणव अनुका से तलाक चाहता है । तलाक के बाद दिव्या से अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की प्रेरणा पाकर अनुका नौकरी करके डाक्टर बन जाती है । चन्द्रिका से बिछुडकर पुनः डाक्टरी करते समय प्रणव को दिल के दौरे की वजह से हार्ट सर्जरी करना पडता है । अस्वास्थ्य की वजह से वह नयी प्रेमिका नमिता से शादी नहीं करता । अस्पताल में प्रणव की अनुका से मुलाकात होती है । मानसिक दृष्टि से अब प्रणव में परिवर्तन आया । अनुका की शादी दिव्या का भाई दीपांकर से होती है जो पहले से ही उसे चाहता था । इसलिए वह पुनः प्रणव से जुडने नहीं देती । प्रणव भी दुबारा अनुका से मिलकर यादों को लौटाना नहीं चाहता । इसलिए वह अस्पताल छोडकर चला जाता है ।

अनुका की कथा इस सत्य की ओर इशारा करती है कि "वर्तमान परिवेश में शादी से बढ़कर नारी आर्थिक सुरक्षा चाहती है जिससे वह ज़िन्दगी की विकट से विकट समस्या पर दो टूक निर्णय ले सके, अपने नीचे एक पक्की ज़मीन पा सके और अपने स्वाभिमान की रक्षा कर सके ।"[1] उपन्यास के द्वारा उषा प्रियंवदा ने यह व्यक्त किया कि परिवेशगत बदलाव के अनुसार नारी के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ । "किसी भी स्तर पर जीते हुए वे (उषा जी के नारी पात्र) विवेक के तरफदार हैं, मानो लेखिका इस तथ्य के प्रति बराबर सचेत है कि विकासशील जीवन-मूल्य मनुष्य की इच्छा क्षमता से अधिक उसकी चिन्तन क्षमता पर निर्भर करते हैं ।"[2] विश्वसनीयता कायम रखने और आन्तरिक आत्मीय संबन्ध जोडने की संज्ञापरक सुविधा को लक्ष्य करके उषा प्रियंवदा अपनी रचनाओं में हॉलन्ड, कैलिफोर्निया, वाशिंगटन जैसे विभिन्न स्थानों का उल्लेख करती हैं । "शेष यात्रा" इस दृष्टि से उल्लेखनीय कृति ही है । अतः उषा प्रियंवदा की रचनाओं की भौगोलिक सीमाएँ नहीं थीं ।

कहानियों का रचना-विधान

उषा प्रियंवदा स्वीकार करती हैं कि उनकी कहानियों के पीछे एक विचार, एक इमेज, एक अनुभव या अनुभूति का एक बीज ज़रूर होता है । यही बीज उनकी कहानियों का विषय बनता है । प्रचलित खामियों और जानी हुई कमज़ोरियों से कथा कृतियों को,[3] कथाकार की

---

1. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य – कृष्ण बिहारी मिश्र – पृ. 28
2. विवेक के रंग – डॉ॰ देवीशंकर अवस्थी – पृ. 37।
3. नई कहानी – दशा और दिशा – डॉ॰ सन्तबख्श सिंह – पृ. 118

भावुकता को विवेक से जोहती हुई उबार ले जाने में उषा प्रियंवदा की विशेषता छिपी हुई है । "उनकी कहानियों में कथातत्व प्रबल है और उनमें शिल्पगत बिखराव नहीं पाया जाता । जीवन में वे विवेक को महत्व देती हैं । भावुकता उनमें अवश्य है, किन्तु साथ ही वैचारिक गरिमा, संयम और गहराई भी हैं । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में मुक्ति की साँस लेने की प्रतीक्षा है । बुद्धिजीवि नारी के जीवन की उदासीनता को उन्होंने कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है और रूढ़ियों, जड़ मान्यताओं और मृत परंपराओं पर चोट की हैं । उनकी कहानियों में जगह जगह मानवीयता और करूणा के स्वर भी फूट पड़ते हैं । कलात्मकता रहते हुए भी उन्होंने नारी के दृष्टिकोण को अधिक महत्व दिया है ।"[1] उषा प्रियंवदा की प्रारंभिक कहानियाँ समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई ।

ज़िन्दगी और गुलाब के फूल

संग्रह रूप में 1961 में प्रकाशित "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" की कहानियाँ भारतीय परिवेश में लिखी गई हैं । "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" की कहानियाँ कहीं भी एक नये ढंग के पाठक की माँग नहीं करतीं । वे सामान्य अनुभवों को इस तरह नया संदर्भ देती हैं कि पाठक को कहीं भी संस्कारगत धक्का नहीं लगता ।"[2] किसी विशिष्ट दृश्य, विशिष्ट व्यक्ति के चेहरे या किसी के कहे वाक्य से उषा प्रियंवदा

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ. 191
2. नई कहानी - दशा, दिशा, संभावना - श्री सुरेन्द्र - पृ. 246

की सृजनात्मक प्रक्रिया की शुरूआत होती है । उनके पात्र कल्पित नहीं हैं, लेकिन अपने यथार्थ जीवन से वे पूर्ण रूप से मेल नहीं खाते । उषा प्रियंवदा पात्रों के चरित्र को रूपायित करते समय यथार्थ जीवन से सामग्री अवश्य लेती हैं । पात्र को उन्होंने यथार्थ जीवन से पूर्ण रूप से इसलिए जुडने नहीं दिया कि "किसी व्यक्ति विशेष को लेकर उसे पहचाने जानेवाले रूप में रखना मुझे (उषा प्रियंवदा को) कुछ ऊब भरा और ओछा-सा लगता हैं ।"[1] पात्रों की शारीरिक विशेषताएँ, बातचीत का ढंग और पृष्ठभूमि यथार्थ जीवन की है ।

लेडी श्रीराम कॉलेज में काम करते वक्त उषा प्रियंवदा ने "छुट्टी का दिन" की रचना की । इसमें उषा प्रियंवदा जीवन की किसी भी परिस्थिति से समझौता करने में असमर्थ होकर उससे मुक्त होने में पराजित नारी की परिकल्पना करती हैं । माया सहगल कॉलेज की अध्यापिका है । घर से दूर अकेली होने से "छुट्टी का दिन" भी उसे पहाड़ जैसा प्रतीत होता है । कॉलेज की सहअध्यापिकाओं से खुलकर न बातें करने या अपने रिश्तेदारों से आत्मीय संबन्ध न होने की वजह से माया सब कहीं अपने को अलग पाती है । दर्पण में अपना थका एवं टूटा प्रतिबिंब देखकर माया पछताती है कि घरवालों से दूर रहकर वह अपनी ज़िन्दगी ही बर्बाद करती है । लेखिका के अनुसार "बहुत दिनों बाद उसे अब पढने पर मेरे मन में छोटे शहर के अकेलापन और एक निरुद्देश्य भटकन का वही स्वाद ताज़ा हो आया जिसके दौरान मैं ने यह कहानी लिखी थीं ।"[2]

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 7
2. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 6

"पूर्ति", "मोहबन्ध", "चाँद चलता रहा" कहानियाँ भी इस समय की रचनाएँ हैं जिसमें सुशिक्षित नारियों की मिसफिट स्थिति और अकेलापन अंकित है । "पूर्ति" में उषा प्रियंवदा ऐसी नारी का चित्रण करती हैं जो नलिन नामक व्यक्ति से प्रथम मिलन के परिचय से ही उससे आकृष्ट होकर बिना वैवाहिक संबन्ध स्थापित किए उसकी याद में मानसिक तृप्ति प्राप्त करती है । माँ-बाप के प्यार से वंचित अविवाहिता तारा एक कॉलेज की अध्यापिका है । छुट्टियों के दिनों में विवाहित नलिन से तारा का प्रेम संबन्ध होता है । छुट्टी के बाद लौटने से पहले तारा नलिन का निमन्त्रण स्वीकार करके उसके घर जाती है । नलिन की भुजाओं में सिमटकर तारा प्यार पाने की इच्छा की पूर्ति करती है । उसके बाद तारा को कभी न एहसास हुआ कि वह जीवन में अकेली है ।[1] "मोहबन्ध" में प्रेमी द्वारा वंचित अचला का अकेलापन चित्रित है । यूनिवेर्सिटी में पढते वक्त देवेन्द्र से अचला का प्रेम होता है । लेकिन देवेन्द्र अचला की सहेली नीलू से शादी करना चाहता है । दूसरी ओर नीलू राजन नामक व्यक्ति से शादी कर लेती है । राजन अचला में एक आदर्श पत्नी को देखता है और उससे संबन्ध रखने का प्रयास करता है । लेकिन पहले प्रेम के तिरस्कार से अकेली अचला राजन को स्वीकार नहीं करती ।

"चाँद चलता रहा" में उषा प्रियंवदा अपराध-बोध से ग्रस्त नारी को रेखांकित करती हैं । मातृविहीन रोहिनी की सगाई अरविन्द से होती है । अरविन्द की बहन शैला की परीक्षा-विजय के वास्ते आयोजित पार्टी के अवसर पर कामवासना से अभिभूत

---

1. समकालीन हिन्दी कहानी - विविध संदर्भ - डॉ. कीर्ति केसर -

अरविन्द रोहिनी से शारीरिक संबन्ध रखने का आग्रह करता है । अरविन्द के बाहों में सिमट जाने की इच्छा होने पर भी रोहिनी इसका तिरस्कार करती है । वह शादी से पहले अवैध संबन्ध स्थापित करना नहीं चाहती । बाद में अरविन्द की एक दुर्घटना में मृत्यु होती है तो वह दुखी हो जाती है और कई पुरुषों से शारीरिक संबन्ध रखकर अपने अपराधबोध को शान्त करने का प्रयास करती है ।

"उषा प्रियंवदा की कहानी-कला से रूढियों, मृत परंपराओं, जड मान्यताओं पर मीठी मीठी चोटों की ध्वनि निकलती हैं, घिरे हुए जीवन की उबासी एवं उदासी उभरती हैं, आत्मीयता और करुणा के स्वर फूटते हैं । सूक्ष्म व्यंग्य कहानीकार के बौद्धिक विकास और कलात्मक संयम का परिचय देता है, तटस्थ दृष्टि और गहन चिन्तन का परिणाम है ।"[1] "पैरम्बुलेटर", "कच्चे धागे" जैसी कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । "पैरम्बुलेटर" में उषा प्रियंवदा कालिन्दी की कथा प्रस्तुत करती हैं । गर्भवती कालिन्दी की हठानुसार उसके पति परमेश्वरी होनेवाले बच्चे के लिए पैरम्बुलेटर खरीदता है । कालिन्दी एक मृत कन्या को जन्म देती है । इस पर दोनों दुःखी होते हैं । लोग कालिन्दी की निन्दा करते हैं । मानसिक दृष्टि से कालिन्दी शिथिल होती है । नौकरी छूटने पर धनाभाव परमेश्वरी को पैरम्बुलेटर बेचने की हालत तक पहूँचाता है । लेकिन कालिन्दी उसे बेचने तैयार नहीं होती । आठ वर्ष बाद उनका एक बच्चा पैदा होता है । जब वह बच्चा बीमार पडता है तो पैसे की कमी की वजह से

---

1. आलोचना और साहित्य - इन्द्रनाथ मदान - पृ. 170

कालिन्दी पैरम्बुलेटर बेचकर दवा लेने को कहती है । शिशु की जान के सामने पैरम्बुलेटर कुछ नहीं है ।

"कच्चे धागे" में लेखिका मानव जीवन के क्षणिक संबन्धों पर व्यंग्य करती हैं ।[1] कुन्तल एक गरीब परिवार की बडी बेटी है । घर में उसके पिता उमाचरन और भाई-बहन हैं । पडोस के रामकिशनबाबू की पत्नी उसे जीजी के समान प्रिय है । जीजी की राय में कुन्तल जैसी बहू पानेवाली सास भाग्यवती होगी । दीदी का भाई सिद्धार्थ के रूप और व्यवहार से कुन्तल उस पर मुग्ध हो जाती है । दलाल गजाधर बाबू कुन्तल और सिद्धार्थ की शादी का प्रस्ताव रखता है । लेकिन जीजी को यह रिश्ता मंजूर नहीं । उसे पैसे की ज़रूरत नहीं, बल्कि खूबसूरत लडकी चाहिए ।

बदलते सम्बन्धों की ओर भी उषा प्रियंवदा संकेत देती हैं । "दृष्टिदोष", "जाले", कँटीली छाँह जैसी कहानियाँ पति-पत्नी संबन्ध पर प्रकाश डालती हैं । "दृष्टिदोष" की चन्द्रा धनी माँ-बाप की लाडली बेटी है । पति साम्ब के घरवालों के पुराने विचारों और रीति-रिवाज़ों से मेल न खाने के कारण चन्द्रा उन लोगों से दूर रहकर नौकरी करती है । उनका पुत्र बण्टी होस्टल में रहता है । इसी बीच चन्द्रा की सहेली मधुर साम्ब से आकर्षित हो जाती है । लेकिन साम्ब अपनी पत्नी को छोडकर किसी दूसरी को स्वीकार करने तैयार नहीं । गलती समझकर चन्द्रा साम्ब के पास लौट आती है और वे एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करते हैं । "जाले" देर से दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करनेवाले कौमुदी और राजेश्वरसिंह की कहानी है ।

[illegible]

अविवाहिता कौमुदी एक सरकारी पेशेवर है । वेशभूषा में अधिक तत्पर कौमुदी अकेली रहती है । नौकर ठाकुर के विवाह के बाद कहानी का नायक प्रोफेसर राजेश्वरसिंह भी अकेला होता है । एक बार दोनों की मुलाकात होने पर वे एक दूसरे से आकर्षित होते हैं । दोनों की शादी होती है और शादी के बाद प्रोफेसर समझता है कि कौमुदी रूपी मकडी के "जाले" में फंसने पर उसकी ज़िन्दगी की रूपरेखा में परिवर्तन होता है । "कँटीली छाँह" की राजी का ट्यूशन मास्टर भला आदमी है । अपने को भूलकर परिवारवालों का बोझ उठाने पर जगत बाबू की शादी देरी से होती है । अशान्तिपूर्ण दाम्पत्य जीवन से वह निराश है । एक दिन अपनी पत्नी राधा के साथ जगत बाबू का अवैध संबन्ध कम्पाउण्डर देखता है । फलतः सभी उसे दोषी मानते हैं । लेकिन राजी इस बात का समर्थन करती है कि जीवन यात्रा में राधा रूपी पेड़ की छाँह में कुछ देर के लिए खडा होने में कोई गलती नहीं ।

सच्चे प्यार से वंचित नारी की कथा द्वारा बदलते पति-पत्नी संबन्ध की ओर इशारा करने का प्रयत्न "दो अँधेरे" में द्रष्टव्य है । कौशल्या और सुमित्रा बहनें हैं । एक आदर्श पत्नी की तरह कौशल्या अपनी सुख-सुविधाओं की परवाह न करके पति दिनेश के वेतन की खर्च सोच समझकर करती है । लेकिन अन्य युवती कँवल से संबन्ध स्थापित करके दिनेश विश्वासाघात करता है । लेखिका प्रेमी से तिरस्कृत नारी का सही चित्र खींचती हैं । शंकर सुमित्रा का प्रेमी है । दोनों का संबन्ध शादी में परिणत होने के लिए कौशल्या चाहती है । लेकिन शंकर इसका तिरस्कार करता है ।

"वापसी", "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" जैसी कहानियाँ बदलते पारिवारिक संबन्धों की ओर संकेत देती हैं । "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" के सुबोध और वृन्दा भाई-बहन हैं । नौकरी करते समय सुबोध की इच्छा के अनुसार ही घर का संचालन कार्य होता था । लेकिन बेकार होने पर कामकाजी वृन्दा के आदेशानुसार घर का सारा काम आगे बढता है । अब घर में सुबोध का स्थान एक नौकर के समान है । बहन की तरह माँ भी जानबूझकर सुबोध की उपेक्षा करती है । बेकारी की वजह से सुबोध को, प्रेमिका शोभा को भी छोडना पडता है । घरवालों के तिरस्कार भाव से आहत् होकर सुबोध घर छोडकर चला जाता है । लेकिन पेट की भूख की वजह से वह उसी घर में वापस आने को बाध्य हो जाता है जहाँ उसकी उपेक्षा होती है । इस प्रकार लेखिका अर्थाश्रित मानवीय संबन्धों पर भी प्रकाश डालती हैं ।

बचपन में एक रेलवे स्टेशन के निकट गर्मियों की छुट्टी मनाने के अवसर पर वहाँ का स्टेशन मास्टर लेखिका की माँ के पास आया करता था और अपने बच्चों की लापरवाही पर रोता था । उषा प्रियंवदा के मन में उस वृद्ध पिता के प्रति सहानुभूति होती थी । इसको केन्द्र में रखकर उन्होंने "वापसी" कहानी की रचना की । यह यथार्थ जीवन से उत्पन्न कथा है । इसका सबूत स्वयं लेखिका देती हैं कि "छपने पर गजाधर बाबू के सबसे बडे पुत्र ने मुझसे पूछा - यह स्टेशन की सेटिंग और यह स्टोरी आइडिया तुम्हें सूझा कैसे ? "[1] इसमें कोई शंका नहीं कि लेखिका की प्रस्तुत कहानी

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 8

गाजाधर बाबू के पुत्र को छूने में समर्थ हो गयी । उषा प्रियंवदा इस कहानी में रिटायर्ट गजाधर बाबू का अकेलापन और बदलते जीवन मूल्यों को प्रस्तुत करती हैं । "आश्चर्य नहीं कि यह {कहानी} एक व्यक्ति की अपने ही द्वारा निर्मित अपने ही परिवार से "वापसी" और एक नयी दिशा और राह पर चलने की कहानी लगे ।"[1] इसलिए नामवर सिंह का कथन सार्थक हो जाता है कि "गजाधर बाबू की वापसी पर किसी की आँखों में आँसू नहीं । एक विषाद की छाया है जो क्रमशः गहरी होती जाती है, केवल दया नहीं, केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि जीवन के प्रति गहरा पीडा-बोध । इस रिटायर्ट आदमी का अकेलापन जैसे अपरिहार्य - अकेलापन से निकलना चाहते हुए भी वह फिर उसी अकेलापन में वापस जाने के लिए लाचार हो जाता है । और क्या यह अकेलापन एक गाजाधर बाबू का ही है ? क्या ऐसा नहीं लगता कि यह अकेलापन बहुत व्यापक है, ऐसा अकेलापन जो कहीं न कहीं आज सबके अन्दर मौजूद है ।"[2]

उपर्युक्त कहानियों के विश्लेषण के बाद यह स्पष्ट होता है कि उनकी कहानियों में नयापन है । "नयापन की परख यह है कि उषा प्रियंवदा की कहानी में एक प्रकार की तलखी लिये तटस्थता है - साथ ही "वापसी" का मूल स्वर एकदम नया है, जो कहानी की भाषा से भी सूचित होता है ।"[3]

---

1. नई कहानी - दशा, दिशा, संभावना - श्री सुरेन्द्र - पृ. 107
2. कहानी - नयी कहानी - डॉ. नामवरसिंह - पृ. 173
3. नई कहानियाँ - परिसंवाद, कहानी अच्छी और नयी - नामवरसिंह - पृ. 131

एक कोई दूसरा, कितना बडा झूठ और मेरी प्रिय कहानियाँ

अमेरीका में रहते समय वहाँ के उन्मुक्त वातावरण से प्रभावित होकर लिखी गई कहानियाँ, "एक कोई दूसरा", "कितना बडा झूठ", "मेरी प्रिय कहानियाँ" जैसे कहानी संग्रहों में संकलित हैं । पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन से भी उन्होंने बहुत कुछ सीखा । लेखिका के अनुसार "अमेरीका में मैं ने बहुत कुछ नया जिया, नया परिवेश, नई पुस्तकें, नये विचार । रामानुजन ने अमेरीकी कवियों और लेखकों से परिचय कराया - उसकी फिनिश मॅगेतर ने स्कैंडिनेविया का द्वार खोला । एक ही सप्ताह में सत्यजित राय और इंगमार बेरीमान की फिल्में देखना मुझे सहज लगने लगा ।"[1] अत: भारत की बन्धी हुई लीक से हटकर सोच विचार करने की शक्ति पाश्चात्य वातावरण से ही लेखिका ने प्राप्त की । उषा प्रियंवदा की कहानियों में प्रतिबिंबित आधुनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए बच्चनसिंह ने कहा है "युगीन संक्रमण में एक ओर चीख और टेरर है तो दूसरी ओर अकेलापन की ठेडी खामोशी । गलीज़ ज़िन्दगी जीने की विवशता, अन्तर्वैयक्तिक संबन्धों को तोड लेने की लाचारी । उषा प्रियंवदा की कहानियों में आधुनिक ज़िन्दगी के ये पक्ष चित्रित हैं ।"[2]

अमेरीका के प्रवासी भारतीय लेखक जैसे ए. के. रामानुजन, पी. लाल और बालचन्द्र राजन सभी अंग्रेज़ी में लिख रहे थे । उषा

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 7
2. आलोचना - परंपरा का नया मोड रोमान्टिक यथार्थ - डॉ. बच्चनसिंह - 1967

प्रियंवदा भी अंग्रेज़ी में लिख सकती थीं । लेकिन मन ही मन वे अपनी मातृभाषा में ही साहित्य-सर्जन करना चाहती थीं । "राइटर्स वर्कशाप" में भारती और वांस बूर्जेली से मनपसन्द लेखकों पर बातचीत करते वक्त उषा जी ने इस संकट ग्रस्त स्थिति का उल्लेख किया तो उन लोगों ने हिन्दी में ही लिखने का उपदेश और प्रेरणा दी ।"[1] इस प्रकार अमेरीकी परिवेश में भी वे हिन्दी में लिखने लगीं । स्वयं लेखिका कहती हैं - "इतनी दूर आकर अपने संदर्भ से कटकर भी, मैं लेखन और हिन्दी और भारत से जुडी हुई हूँ कि हिन्दी ही मेरी भाषा है और यदि कुछ वर्थव्हाइल मुझसे लिखा जाएगा - तो हिन्दी में ही ।"[2]

उषा ने रचनाकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रामाणिकता को जिस सहजता के साथ कथा में प्रस्तुत किया है, उसका सबूत "चाँदनी में बर्फ पर", "मछलियाँ", "पिघलती हुई बर्फ", "सागर पार का संगीत," "रुकोगी नहीं राधिका" में है । "वे बिना किसी दावपेंच के कहानी को बडी अलोनी सच्चाई के सामने रख देती हैं । उनमें बनता जैसा कुछ नहीं है । विवेकपूर्ण व्यवहार के साथ गहरी करुणा से मानवीय स्थिति को वे रेखांकित करती हैं ।"[3]

उषा प्रियंवदा "चाँदनी में बर्फ पर" में इस तत्य का उद्घाटन करती हैं कि अपने कर्मों का फल मानव को स्वयं भोगना पडेगा ।[4]

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 6
2. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 5
3. नई कहानी प्रकृति और पाठ - श्री सुरेन्द्र - पृ. 32
4. अस्तित्ववाद और नयी कहानी - डॉ. लालचन्द गुप्त मंगल - पृ. 154

अध्यापक हेम का अपनी प्रेमिका कल्याणी को छोडकर विदेशी युवती मेरी मेलनिक से प्रेम विवाह होता है । शादी के बाद मेरी मीरा हो जाती है और वे दोनों विदेश चले जाते हैं । लेकिन मीरा हेम से दूर होकर पियेर से संबन्ध स्थापित करती है । कल्याणी हेम के परिचित अविनाश से शादी करती है । कल्याणी का सन्तुष्टपूर्ण दाम्पत्य जीवन देखकर हेम को नष्टबोध का एहसास होता है । वह कल्याणी से अकेले मिलना चाहता है । लेकिन कल्याणी इससे सहमत नहीं होती ।

"पिघलती हुई बर्फ" व्यक्ति के खुद को क्षमा कर देने और एक नया जीवन शुरू करने के प्रयत्नों को लेकर है । अध्यापक अक्षय शोध कार्य के लिए विदेश चला जाता है । वहाँ सुधीरा से उसका परिचय होता है और वह उससे प्रेम करता है । लेकिन सुधीरा का प्रेमी है बीरू । अक्षय बीरू और सुधीरा से प्रतिशोध लेने का निश्चय कर लेता है । वह बीरू को खराब ब्रेक से युक्त कार सवारी केलिए देता है । उससे बीरू की मृत्यु होती है और सुधीरा अपाहिज बन जाती है । अक्षय को मालूम नहीं कि कार में सुधीरा भी बीरू के साथ थी । वह अपराध-बोध से पीडित हो जाता है । फिर भी भारत लौटकर वह छबि के साथ जीवन व्यतीत करना चाहता है ।

डेनमार्क से लौटते वक्त लिखी गई कहानी है "कितना बडा झूठ" । यथार्थ जीवन के परिचित व्यक्तियों की समानता को ध्यान में रखकर इसकी सृष्टि हुई है । लेखिका पात्रों के नाम यथार्थ जीवन से नहीं लेती । लेकिन मैक्स और वारिया से

समानता रखनेवाली जोडी की शादी का पता मिलने पर ही उषा प्रियंवदा ने इस कहानी का चयन किया । प्रस्तुत कहानी की किरन, पति और बच्चों के साथ घरेलू जीवन सम्हालने के साथ साथ तीसरे व्यक्ति की खोज में रत है । किरन का प्रेमी मैक्स उसे छोडकर वारिया से शादी करता है । किरन और मैक्स के अवैध सम्बन्ध का पता चलने पर भी विश्वेश्वर पत्नी को नहीं छोडता । लेखिका यहाँ पुरुष व्यक्तित्व पर प्रहार करती हैं । "ट्रिप" तो डेनमार्क में लिखी गई कहानी है । नशीले पदार्थों का उपयोग करके सामाजिक मान्यताओं को तोडना इसका मुख्य कथ्य है । सोनी का पति एक प्रोफेसर है । जीवन की कटुवाहट से बचने के लिए सोनी और उसका पति नशीली चीज़ों का उपयोग करते थे । दोनों का विवाह संबन्ध सुदृढ नहीं है क्योंकि सोनी का पति कभी भी सोनी को समझने का प्रयास नहीं करता । बच्चों को वह बोर्डिंग हाउस में रखता है । "ट्रिप" के नशे से मुक्त होकर सोनी इस पर विचार करती है कि उससे एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत संभव है या नहीं । "ये दोनों कहानियाँ एक बडी ही तच्चाई के मूड में लिखी गईं, इस मायने में कि आत्मकथात्मक न होते हुए भी मैं ऐसे पात्रों से परिचित थी, वह सब भी एक दूसरे से परिचित थे ।"[1]

अवेध संबन्ध की कथा प्रस्तुत करनेवाला "सम्बन्ध" के सर्जन की प्रेरणा उषा प्रियंवदा को पडोसिन डाक्टर से मिली । लेकिन इन दोनों में भिन्नता यह है कि वास्तविक जीवन का डाक्टर

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 8

कानूनी संबन्धों पर विश्वास रखता है जबकि "संबन्ध" का सर्जन भारतीय परंपरा का उल्लंघन करनेवाला व्यक्ति है । प्रस्तुत कहानी में अनुवादिका श्यामला अपने प्रेमी डॉ. सर्जन के साथ रहती है । डॉ. सर्जन विवाहित है और तीन बच्चों का बाप भी है । अविवाहिता श्यामला से वह शादी करना चाहता है । लेकिन श्यामला को मंजूर नहीं । वह सर्जन से एक बन्धु, मित्र और प्रेमी का रिश्ता चाहती है । अबोर्शन के लिए डाक्टर के पास आयी सुनीता, श्यामला की ओर से ज़रूरी सहायता न मिलने से आत्महत्या करती है । बेचारी श्यामला को डाक्टर आश्वासन देने का प्रयत्न करता है । लेखिका मानती हैं कि इस प्रकार कहीं की ईंट, कहीं का रोड़"[1] लेकर रचना करना खतरा ही है । पड़ोसिन डाक्टर को देखकर उसे "संबन्ध" का सर्जन समझकर छात्र लोग मज़ाक में "बीप बीप" कहते सुनकर लेखिका को इसका अनुभव हुआ । क्योंकि दोनों के आकार में साम्य था, स्वभाव एकदम भिन्न । उन्हें "यह भी आशंका थी कि वह कहीं कुछ और न समझ पूरी कहानी को ही सच मान ले ।"[2] यथार्थ और कल्पना का समन्वय करके प्रस्तुत कहानी को पूरा करने में दो साल लगे । "प्रतिध्वनियाँ" भी इसी मूड में लिखी गई कहानी है । उसमें विवाह को एक बेमानी रस्म समझनेवाली नारी की कथा प्रस्तुत है । वसु की शादी अपने उम्र से काफी बड़े व्यक्ति श्यामल से हुई । इसलिए उनका दाम्पत्य संबन्ध सुदृढ नहीं था । पति के साथ विदेश जाने पर वसु को वहाँ का जीवन परिवेश अच्छा लगा । वह अनेक पुरुषों से

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 9
2. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 9

संबन्ध स्थापित करती है जिनमें प्रमुख हैं डॉ॰ जूलियन । वसु और श्यामल का डाइवोर्स होता है । श्यामल स्वदेश लौटता है जबकि वसु जूलियन के साथ वहीं रहती है । पति के अंकुश से निकलकर स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए लडनेवाली नारी का स्वरूप यहाँ द्रष्टव्य है । "टूटे हुए", "मछलियाँ", "प्रतिध्वनियाँ" जैसी कहानियाँ पकने में सालों तक इन्तज़ार करना पडा । दूसरी ओर "ट्रिप", "टूटे हुए", "सुरंग", "पिघलती हुई बर्फ", "स्वीकृति" और हाल में लिखे गये विदेश यात्रा पर लेख, यह सब बहुत कम समय और कुछ ही बैठकों में लिखे गये ।"[1]

"टूटे हुए" कहानी के कथानक का टूटा फूटा रूप मैडिसन की यात्रा के दौरान लेखिका के मन में पडा था। उन्होंने विस्कांसिन प्रदेश का पागलखाना और अस्पताल देखा । रात के समय उनके फ्लैट में अतिथियों से घिरे होने पर भी, वे बाहर पेडों में सिर धुनती हुई हवा का अकेला स्वर सुनती हैं । लेकिन कई बार प्रयत्न करने पर भी उसे कथारूप में ढाल न सकी । लेखिका के असम्बद्ध विचारों को पूर्ण रूप देने का अवसर उनके परिचित व्यक्ति के निवास स्थान से ही उन्हें मिला । लेखिका का कथन है - "पहले जाडों में मैं ने "टूटे हुए" लिखने का कई बार प्रयत्न किया, पर उन असम्बद्ध इमेजेज़ को रूप तब मिला जबकि मैं एक बार एक परिचित से मिलने गई ।"[2] वह पुराना मकान गलियारा धुएं से

---

1. ज्ञानोदय - मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - पृ॰ 42
2. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ॰ 9

काला हो गया था । लेखिका की राय में, "उसमें लहसुन, भुनी हुई प्याज़ और जीरे की महक स्थायी रूप से बसी हुई थी ।"[1] उसी व्यक्ति से प्रेरणा ग्रहण करके लेखिका ने भास्कर पात्र की परिकल्पना की । भास्कर की याद आने पर "टूटे हुए" विचार कहानी में पूरा करने की प्रेरणा मिली । कहानी की नायिका टीटी प्रोफ्तर कृष्णमूर्ति की पत्नी है । पहले सन्तान की शारीरिक अक्षमता की वजह से दूसरे बच्चे को जन्म देने से वह डरती है । प्रोफ्तर भी टीटी की मानसिक अवस्था से चिन्ताग्रस्त था । जीवन की असफलता से बचने के लिए टीटी भास्कर से अवैध संबन्ध स्थापित करती है । भीतर शशिबाला की यादें होने पर भी भास्कर टीटी से प्यार करता है क्योंकि उसके अनुसार टीटी ने जो राह चुनी है, वह गलत नहीं है । "उषा प्रियंवदा के चरित्र स्वाभाविक आकांक्षाओं और आवश्यकताओं वाले लोग हैं, रोज़ के आर्थिक और आपसी संबन्धों के बीच वे जीवन को लेकर कोई बुनियादी सवाल नहीं उठाते । वे ज़्यादोत्तर "टाइप" चरित्रों और परिस्थितियों के द्वारा एक विशेष संवेदना को प्रसार-सा देती लगती हैं ।"[2]

"स्वीकृति", "चाँदनी में बर्फ पर", "संबन्ध" कहानियाँ विस्कांसिन में लिखी गई हैं । लेखिका के पात्र विभिन्न प्रदेश के भी हो सकते हैं, लेकिन सभी कटेपन या अकेलापन की भावना से पूरित हैं । विदेशी परिवेश इस अकेलापन को मुखरित करता है ।[3]

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 9
2. विवेक के रंग - डॉ. देवीशंकर अवस्थी - पृ. 379
3. हिन्दी कहानी - एक नयी दृष्टि - इन्द्रनाथ मदान - पृ. 132

"स्वीकृति" में लेखिका अपने व्यक्तित्व को माननेवाले पुरुष से संबन्ध स्थापित करनेवाली जपा की कथा सामने रखती हैं । जपा और सत्य पति-पत्नी हैं । जपा से सत्य की शादी इसलिए होती है कि लडकी का बाप सत्य को अधिक दहेज देता है । पति के साथ विदेश आने पर जपा का परिचय वाल से होता है । यह, प्रेम में परिणत हो जाता है । वाल भी पूर्ण रूप से जपा का अंगीकार करने को तैयार नहीं । दूसरी ओर जपा और वाल का संबन्ध मानने को सत्य तैयार है । लेकिन जपा वाल को छोडकर सत्य के साथ अपने संबन्धों को निभाने का निश्चय करती है । अवैध संबन्ध की परवाह न करके पत्नी को सत्य स्वीकार करता है । लेखिका यहाँ पुरुष व्यक्तित्व को चोट पहुँचाती हैं ।

उषा प्रियंवदा संकेत देती हैं कि "मेरे लिए चाहे पात्र विदेश में रहते हो, या भारत के किसी छोटे शहर में, चाहे वह समाज द्वारा थोपा गया सुषमा का अकेलापन हो या अपने आप ग्रहण किया हुआ राधिका का अजनबीपन, प्रामाणिक हैं और लेखन के उपयुक्त ।"[1] अकेलापन से पीडित नारियों का चित्र "सागर पार का संगीत", "नींद" जैसी कहानियों में उभरता है । भारतीय संस्कार में पली देवयानी स्वजनों और स्वदेश को छोडकर विदेशी पुरुष औस्कर से शादी करती है और विदेश चली जाती है । विदेशी वातावरण में वह पल भर के लिए रह न सकती । पति की अनुपस्थिति में उसे मानसिक विभ्रान्ति हो जाती है । वह खुदखुशी करना चाहती है ।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 10

सायकियाट्रिस्ट उसे स्वदेश वापस जाने का निर्देश देता है । औस्कर को छोडने में असमर्थ देवयानी स्वदेश नहीं लौटती । एक दिन अकेलापन से बचने के लिए देवयानी औस्कर के चचेरे भाई, यास्पर से अवैध संबन्ध स्थापित करती है । "नींद" में अकेलापन से डरनेवाली नायिका की मानसिक स्थिति खींचने का प्रयत्न हुआ है । पहले प्रेमी की मृत्यु के बाद नायिका मानसिक और शारीरिक रूप से बीमार हो जाती है । उसे रात के अंधेरे से डर है । दूसरे प्रेमी से संबन्ध जोडने पर भी वह संतुष्ट नहीं होती । नींद की गोलियाँ खाकर वह कभी न जागनेवाली नींद का वरण करती है ।

"तुरंग" में भी पारिवारिक सदस्यों का अकेलापन अंकित है । यह रेलवे स्टेशन के परिवेश से जुडी हुई कहानी है । उषा प्रियंवदा इसकी ओर इशारा करती हैं कि "बहुत कुछ "वापसी" की ही परिस्थितियों में लिखी गई कहानी तुरंग है और वातावरण बचपन की उन्हीं स्मृतियों से प्रेरित स्टेशन, रेलगाडियों, सिगनलों के पार क्षितिज, इन सबने एक कैनवास दिया, जिस पर "माँ", "अरुणा" और "बेबी" तीन कटे हुए प्राणी अपने आप, अपनी कहानी लिए हुए उतर हुए ।"[1] अध्यापिका अरुणा घर की बडी बेटी है । उसके घर पर माँ है, छोटी बहन बेबी हैं । भाई की मृत्यु हुई थी । उसके बाद बेटियों की परवाह न करके अरुणा की माँ दैविक कार्यों में श्रद्धालू रहती है । घर की सारी देखभाल बेबी के कन्धों पर पडती है । रात के समय रोनेवाली बेबी से पूछने पर अरुणा को पता

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 8

चलता है कि दीदी के डर से वह रोती है क्योंकि एक बार अरुणा आत्महत्या की कोशिश की चुकी थी । अरुणा समझती है कि एक दूसरे को जानने का प्रयत्न करने पर परिवार-सदस्यों का संबन्ध सुदृढ हो जाता है । रचनाओं में चित्रित इस अकेलापन के पीछे स्वयं लेखिका का मनोभाव द्रष्टव्य है । इसलिए उषा जी कहती हैं -"मैं स्वयं एक बहुत प्राइवेट परसन हूँ और गहरे मित्र बनाने में मुझे समय लगता है, शायद मेरे पात्रों के अकेलापन में मेरी इस दृष्टि और प्रवृत्ति का प्रभाव आ जाता है ।"[1]

नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को अनावृत करने की कोशिश "एक कोई दूसरा", "झूठा दर्पण", "कोई नहीं", "मछलियाँ" जैसी कहानियों में हुई है । "एक कोई दूसरा" की शोध छात्रा नीलांजना अनुपम सौंदर्य से युक्त है । यूनिवेर्सिटी के नये अध्यक्ष डॉ. कुमार के व्यक्तित्व से प्रभावित नीलांजना नये उत्साह से शोध-कार्य में व्यस्त हो जाती है । सिर दर्द से पीडित डॉ. कुमार की नयी पुस्तक का प्रूफ देखने में नीलांजना सहायता देती है । पुरुष मित्रों के साथ समय बर्बाद करने पर डॉ. कुमार उसे डाँटता है । बडे भाई के घर में रहते समय सहेली श्यामा से नीलांजना को पता चलता है कि डॉ. कुमार की मृत्यु हुई । वापस आने पर मिसेज़ कुमार ने नीलांजना को डॉ. कुमार की नयी पुस्तक दी । पुस्तक "टु दैट अदर वन" के लिए समर्पित हो चुकी थी । "झूठा दर्पण" में उषा प्रियंवदा अपनी

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 10

आन्तरिक काममूलक आवश्यकता और सामाजिक नैतिक दबाव की वजह से शादी करने को तैयार होनेवाली नारी के जीवन को कथ्य बनाती हैं । माँ-बाप के पराजयपूर्ण दाम्पत्य जीवन से दु:खी अध्यापिका अमृता निर्दिष्ट वर कुंवर से शादी करने को तैयार नहीं । अमृता सहेली मीरा के साथ रहती है । मीरा का पति यतीन्द्र अमृता से अवैध संबन्ध स्थापित करने का आग्रह करता है । इसलिए एक दिन मीरा अमृता के साथ यतीन्द्र के काममूलक संबन्ध होने का सन्देह प्रकट करती है । इससे क्रुद्ध होकर अमृता कुंवर से शादी करने का निश्चय लेती है ।

उषा प्रियंवदा "कोई नहीं" में नारी के निष्कलंक प्रेम को अनावृत करती हैं । अक्षय और नमिता प्रणय जोडी हैं । नौकरी की तलाश में अक्षय विदेश जाता है और वहाँ की एक आस्ट्रियन युवती से प्यार करता है । लेकिन उसका विवाह एक जनरल की बेटी से होता है । अक्षय के तिरस्कार से दु:खी नमिता वर्षों के बाद भी उसकी स्मृतियों में जीती है । लेकिन बाह्य रूप से यह प्रकट नहीं करती । "मछलियाँ" में उषा प्रियंवदा प्रतिशोध लेनेवाली नारी का स्वरूप प्रस्तुत करती हैं ।[1] विजी मनीश की भगेतर है । मनीश विजी की सहेली मुकी से प्रेम करता है । लेकिन मुकी नटराजन से शादी करना चाहती है । नटराजन मन ही मन विजी से प्यार करता है । इसका पता चलने पर मुकी विजी को नटराजन से अलग करने का प्रयास करती है । मुकी और नटराजन की शादी पक्का होने पर विजी बदला लेने का निश्चय करती है । बैंक अकाउंट से रुपया निकालकर नटराजन विजी को स्वदेश वापस जाने का पैसा देता है ।

विजी मुकी को समझाती है कि नटराजन हमेशा विजी से मिलता रहता और उसने रुपया भी दिया ताकि वह डाक्टर के पास जा सकती और भारत लौट सकती ।

हर लेखक की अपनी प्रिय कहानियों का होना स्वाभाविक बात है । उषा प्रियंवदा की बात भी वैसी ही है । उषा जी के अनुसार "मेरी प्रिय कहानियाँ" वे हैं जोकि एक फ्लैश में जन्मीं, और मैं ने एक या दो दिन में उन्हें लिख डाला । शायद वह कहानियाँ बरसों कहीं दबी पडी रहती हैं और संपादकों के चाबुक फटकारने पर जब मैं हडबडी में यह सोचने लगती हूँ कि क्या लिखूँ, तब मैं पाती हूँ कि मुझे दूर तक नहीं खोजना पडता ।"[1] उषा प्रियंवदा की रचनाएँ केवल घटनात्मक नहीं हैं, वे मनोविज्ञान से आधार ग्रहण करती हैं । "पचपन खंभे लाल दीवारें", "कोई नहीं", जैसी कृतियाँ यह प्रमाणित करती हैं । "उनकी कृतियों में तकनीक गौण है, लेकिन अनुभूत इतना खरा और पैना उतरता है कि तकनीक की बात उठाना ज़रूरी नहीं लगता, बल्कि यह आशंका होती है कि लेखिका से इससे भिन्न कोई आशा करना शायद उसकी संवेदनाओं, ताज़गी और सच्चाई को धुंधला कर दे ।"[2] अंग्रेज़ी में लिखित "मीराबाई", और "सूरदास" कविताएँ उषा प्रियंवदा की कथा-साहित्येतर रचनाएँ हैं ।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 8
2. विवेक के रंग - डॉ. देवीशंकर अवस्थी - पृ. 378

निष्कर्ष

साठोत्तर युग की कहानी-लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा का महत्वपूर्ण स्थान हैं । बदलते स्त्री-पुरुष संबन्ध और नारी मन की आलोचना उनके कथा-साहित्य के कथ्य बन गये हैं । मुख्यत: लेखिका विदेशी परिवेश में लिखित रचनाओं में प्रवासी भारतीय मानसिकता का स्वरूप अनावृत करती हैं ।

उषा प्रियंवदा की रचनाओं की दुनिया आज की जीवन्त दुनिया है । उनकी कृतियों में मुखरित सामाजिक संकट केवल परिवेश के यथार्थ का संकट नहीं, बल्कि मानवीय द्वन्द्वों का संकट है । उन्होंने नारी के स्वाभाविक रूपों का ऐसा विवरण दिया है कि उनके कथापात्र स्मृति कक्ष में सदैव जीवित रहते हैं । बाह्य संसार के उपकरणों के झरोखों से झलकने वाला उषा प्रियंवदा का रचना-संसार सच्चे मानव-अनुभवों के अछूते सौंदर्य से संपन्न है ।

दूसरा अध्याय

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नारी की परिकल्पना

पुरुष और नारी सृष्टि के मूल तत्व हैं, एक दूसरे के पूरक हैं - यह बात सर्वमान्य ही है । जीवन में, समाज में, परिवार में, भारतीय नारी सबसे अधिक दबी हुई थी । पुरुष मेधा समाज की दलित, शासित, अबला, भोग्या वह अधिकारों से वंचित थी । उसका अपना निजी अस्तित्व और पहचान नहीं थी । स्वतन्त्रता के पश्चात् समाज की मान्यताओं एवं धारणाओं में बदलाव आया । नारी स्वतन्त्रता के कई नये द्वार खोले गये । पुरुष के समान उसके भी अस्तित्व और व्यक्तित्व को स्वीकृति मिली । जीवन के हर क्षेत्र में कार्य करने की वह अधिकारिणी बन गयी । शिक्षित नारी के चिन्तन को कई नई दिशायें मिलीं । पश्चिम के उन्मुक्त नारी जीवन से प्रभावित होकर वह कभी टूट जाती है, कभी संघर्ष करती है और कभी नई दिशा अपनाती है । कभी विवश होकर संघर्ष के भार से झुक जाती है । फिर भी वह आगे बढना चाहती है । पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से आकर्षित होकर वह सामाजिक बन्धनों को तोडती है । आज नारी अपना निजी जीवन व्यतीत कर सकती है । अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए अस्तित्व की खोज में आधुनिक नारी कई दिशाओं में भटकती भी है । यह प्रयत्न संघर्षों से मुक्त नहीं । आज नारी से संबन्धित अनेक समस्याएँ हैं जो उसके परिवार और समाज की समस्याएँ हैं । मुख्यत: उसकी भावनाओं और सामाजिक और पारिवारिक परिवेश के बीच उत्पन्न होनेवाला संघर्ष उसे मानसिक द्वन्द्व की स्थिति तक पहुँचाता है ।

हिन्दी कथा साहित्य और नारी

नारी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को अनावृत करने का कार्य भारतेन्दु और उसके परवर्ती साहित्य में संपन्न हुआ । प्रेमचन्द पूर्व के कथाकार हर नारी को देवी का रूप देने को व्यग्र थे । उनकी दृष्टि में नारी त्याग और बलिदान की मूर्ति थी । वे पातिव्रत्य, एकनिष्ठ प्रेम या मातृत्व की प्रतीक हैं । प्रेमचन्द ने नारी की पीडा, घुटन के प्रति अधिक संवेदना व्यक्त की । परिवार में उसके साथ उदार व्यवहार पर बल दिया, उसके अधिकार का समर्थन किया । प्रेमचन्दोत्तर युग में नारी की स्थिति में परिवर्तन आया । पाश्चात्य प्रभाव की वजह से भारतीय नारी ने भी एक क्रान्ति को जन्म दिया । इस समय के कथाकारों ने शिक्षित और आभिजात्य मध्यवर्ग की नारियों को प्रस्तुत किया । कभी ये नारियाँ विवाह संस्था के विरुद्ध हैं, कभी स्वच्छन्द प्रेम और मुक्त भोग की कामना करती हैं । वे अपने विचारों में जागरूक रहती हैं । यशपाल की नारी पूर्व युग की समस्याओं का समाधान बौद्धिकता द्वारा प्रस्तुत करती है । जैनेन्द्र ने नारी की अन्तर्वृत्तियों का विश्लेषण किया । घर और बाहर वह अपने व्यक्तित्व के विकास को समझती है । लेकिन परंपरागत बन्धनों से वह पूर्णत: मुक्त होने का साहस नहीं रखती । जैनेन्द्र ने नारी की दमित काम-वृत्ति का उन्नयन समाज के विकास रूप में दिखाया है । इलाचन्द्र जोशी की नारी वास्तविकता को समझकर, व्यक्ति और समाज के अत्याचारों का सामना करती है । अज्ञेय के नारी पात्र जैनेन्द्र के पात्रों की अपेक्षा, समस्त सामाजिक बन्धनों से विद्रोह करनेवाले हैं,

उनमें साहसिकता है । लेकिन कहीं भी ये पात्र अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित न करके यौन कुंठाओं में भटकते रहते हैं । यह नारी युग जीवन की एक ज्वलन्त समस्या को नहीं लेती, बल्कि युग जीवन के संदर्भ में व्यक्ति के जीवन की मूलभूत समस्या को उठाती है । साठोत्तर कथाकार नारी के संघर्षात्मक जीवन के साक्षी हैं । उन्होंने उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं और अन्तर्मन के भावों को मार्मिक स्वर दिया है ।

बदलते संबन्ध और नारी

उषा प्रियंवदा की रचनाएँ नारी के टूटने बनने की बहुमुखी गाथा हैं । वे स्त्री-पुरुष संबन्ध के अनेक बदलते दृष्टिकोणों को स्पष्ट करती हैं । आधुनिक नारी आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होकर पिता, पति और बच्चों की गुलामी से मुक्त होती है ।[1] पुरुष अपना स्वामित्व प्रकट करना चाहता है तो नारी विवाह संस्था को सिर्फ सेक्स जीवन की माँग की पूर्ति के रूप में नहीं देखती ।[2] बल्कि अपने व्यक्तित्व को वह बनाये रखना चाहती है । ऐसी स्थिति में दोनों के बीच संघर्ष होता है । फलस्वरूप संबन्ध विच्छेद भी होता है । समाज में ऐसी नारी भी होती है जो किसी एक प्रेमी से सन्तुष्ट नहीं हो पाती । सभी कष्टों से जूझती हुई आज की नारी एकाकी जीवन से मुक्त होने के लिए अन्य पुरुष को पाना चाहती है । वह पति के होते हुए भी प्रेमी की बाहों के घेरे में अपने आपको पिस जाने देती है । आधुनिकता से ओतप्रोत यह काममूलक संवेदना का परिचय भी देती है । स्त्री-पुरुष संबन्धों का अंकन साठोत्तर कथा-साहित्य की प्रमुख

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-मूल्य संक्रमण - डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी- पृ. 158
2. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - डॉ. भैरूलाल गर्ग

विशेषता है । प्रस्तुत युग में रिश्ते-नातों और परंपरागत मानवीय संबन्धों का खण्डन होने लगा । उषा प्रियंवदा अपनी रचनाओं में कई स्तरों पर इस संबन्ध को आँकती हैं ।

पिता-बेटी संबन्ध

भारतीय परिवार में पिता और सन्तान का संबन्ध अधिक निर्णायक है । युगीन परिस्थितियों के बदलाव के अनुसार एकला परिवारों का उदय हुआ । परिवार सदस्यों के आपसी संबन्धों में भी परिवर्तन आया । पुरानी और नयी युवा पीढी में अन्तर है । नयी पीढी अपने माँ-बाप की इच्छानुसार जीना नहीं चाहते । वे स्वतन्त्र जीवन बिताना चाहते हैं । विषम परिस्थितियों के अवसर पर वे दूसरों के उपदेश नहीं माँगते, स्वयं निर्णय लेते हैं । बहुत कम ही सन्तान पिता के आदेशों को मानने के लिए तैयार है । ये कठिन संदर्भों में भी परंपरागत मान्यताओं को नहीं छोडते ।

रिश्ते की टूटन

आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने से पहले बेटी का जीवन पिता पर निर्भर है । माँ भी बेटी के जीवन का एक प्रमुख अंग है । लेकिन माँ के अभाव में पिता ही उसका सर्वस्व है । वह पिता को ही अपने जीवन की धुरी मानती है । उषा प्रियंवदा का उपन्यास "रुकोगी नहीं राधिका" की नायिका राधिका की स्थिति ऐसी है ।

माँ की मृत्यु के बाद पापा का सारा समय बेटी के पालन-पोषण में लगने लगा । वर्षों तक यह क्रम इसी प्रकार चलता रहा । पापा उसका अपना है, और किसी का होना वह नहीं चाहती । इसलिए युवती विद्या से पापा का विवाह राधिका पसन्द न करती । पिता से बदला लेने के लिए राधिका कम परिचित विदेशी पत्रकार डैन के साथ अमेरीका चली जाती है । डैन के साथ चले जाने के अवसर पर राधिका पिता की राय नहीं ढूँढती । पिता बेटी के उस गाढे संबन्ध का विच्छेद होता है । स्वार्थ भावना से राधिका यह समझती नहीं कि माँ की अनुपस्थिति में पापा ने अकेला कैसा जीवन जिया । वह साहस करके स्वयं अपना जीवन-पथ प्रशस्त करती है । पापा और विद्या की शादी का परामर्श सुनते ही क्षणांश में राधिका के ऊपर से एक तूफान गुज़र जाता है । विद्या के साथ रहने का सुझाव वह मानती नहीं । इसलिए कुछ तीखे स्वर में वह कह देती है - "मैं अब आप लोगों के साथ नहीं रहूँगी ।"[1] पापा से नाराज़ होने पर राधिका घर छोडकर भाग जाने की धमकी देती है । वह अपनी ही शर्तों पर जीने का दुराग्रह रखती है ।[2] भाई से अपने विवाह का प्रस्ताव सुनकर राधिका को एकदम क्रोध चढ आता । दृढ स्वर में वह उत्तर देती है कि वह विवाह करना नहीं चाहती । पापा आशा करता है कि राधिका उसके साथ रह जाये तो वह जल उठती है और कहती है -"जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यों हो ? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं है ? मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है, पर अब मैं बडी हो चुकी हूँ और मैं

---

1. रूकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 47
2. हिन्दी उपन्यास - उपलब्धियाँ - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ. 124

जो चाहूँगी वही करूँगी ।"[1] राधिका के विदेश जाने के बाद पिता शिथिल हो जाता है । लाडली बेटी के इस धिक्कारपूर्ण व्यवहार से पापा को बडा जबरदस्त नर्वस ब्रेक-डाउन हो जाता है । जाननेवालों को पता है कि इसका कारण राधिका है । पिता-बेटी का तंबन्ध कितना गाढा हैउतना ही वह ढीला हो जाता है । पापा बेटी को पास पाकर आश्वासन पाना चाहता है तो बेटी बदले में उसे दु:ख देती है । राधिका की हालत तो इससे बुरी है । कोई दूसरा आकर पितृप्रेम का भागी बनना, यह सोचने में भी वह असमर्थ है । विमाता के आने पर वही पापा का स्नेहपात्र बनेगी - यह विचार राधिका को पिता से तन मन से इतना दूर कर देता है कि पिता-बेटी संबन्ध एक क्षण टूट जाता है । वह चाहती तो यह पुनीत संबन्ध रख सकती । लेकिन वह कठोर मार्ग चुन लेती है - अपनी वेदना को दबाकर पिता के साथ रहने के लिए वह तैयार नहीं होती । असफल प्रेम की आत्मग्लानि से राधिका पिता से माँफी माँगती है । पुनर्मिलन के संदर्भ में राधिका पापा के एकदम पास पहूँचने से पहले ही ड्राइवर से रोकने को कहती है और गाडी पूरी तरह रुकने के पहले ही उतरती है । मन ही मन वह पापा के साथ रहना चाहती है । लेकिन पापा के स्वर की दूरी और औपचारिकता से राधिका के पूरे शरीर में हताश कम्पन दौड आता है । इसलिए वह अपनी इच्छा प्रकट नहीं करती और प्रसन्नता को अपनी आवाज़ में भरने की चेष्टा करती है । पापा और बेटी के बीच के सन्नाटे की वजह से राधिका के अन्दर रुलाई घुटने लगती है, उसे रोकने के प्रयत्न में भींचे हुए जबड़े दुखने शुरू होती हैं ।

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 5।

स्पष्ट है कि मानवीय संबन्धों में ठण्डापन, औपचारिकता, उदासीनता का प्रवेश होता है । यह आज का घोर सांस्कृतिक संकट है । बेटी के जीवन में बाधा बनना पापा नहीं चाहता । इसलिए भेंट के अवसर पर वह पूछता है - "अभी तो रहोगी ।"[1] पिता का साथ चाहते हुए भी राधिका का जवाब है - "नहीं, कल जाऊँगी ।"[2] पिता जानता है कि उसे रोक लेना उसके वश की बात नहीं । इसलिए वह नहीं रोकता । राधिका परंपरागत मान्यताओं को तोडने का साहस दिखाती है । उसके संदर्भ में परंपरागत दृष्टिकोण ही बदल गया । अहं की गांठ के कारण अपने को छोटा दिखाने के लिए राधिका भी तैयार नहीं । विद्या की मृत्यु के बाद पापा बडे निरीह, कातर, दुखी बन जाता है । वह अपने बारे में कुछ सोचता नहीं और चाहता है कि राधिका पहले की तरह उसके पास ठहर जाये । लेकिन राधिका नहीं मानती । अपनी इच्छा के विरुद्ध पिता के व्यवहार से रूष्ट राधिका उससे दूर रहती है और प्रेम की तलाश में घूमती है ।

रिश्ते की आत्मीयता

राधिका पिता के अधिकार को चुनौती देने का साहस करती है तो "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा पिता के लिए अपने सुखों और इच्छाओं का पूरी तरह से दमन करती है ।

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 56
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 56

सुषमा को प्रेमी नहीं चाहिए । उसे पति की आकांक्षा भी नहीं । लेकिन बीच बीच उसके मन में कितना कडवापन भर आता - इसका अन्दाज़ा नहीं । अपने परिवार का बोझ उठाते सुषमा काँपने लगती है । तब वह चाहती कि दो बाहें उसे सहायता दे दे तो अच्छा होगा । लेकिन माँ-बाप की निस्सहायता वह समझती है । पिता अपनी विवशताओं में उलझ रहे हैं । इसलिए वह भीगेपन युक्त स्वर में कहता है -"मैं तो तुम्हारे लिए कुछ न कर सका ।"[1] सुषमा का कण्ठ भर आया और वह कहती है -"इतना सब तो किया आपने, - पढाया, लिखाया, ...।"[2] इस बोध से वह अपना दायित्व निभाती है । पिताजी के मतानुसार बहिन निस्पमा की शादी के लिए सुषमा प्रोविडेंड फण्ड से चार हज़ार रुपया निकालती है । आगे प्रतिभा बहिन की शादी होगी । इतना सब होने पर भी सुषमा की निष्कृति की कोई संभावना नहीं ।[3] इस प्रकार सुषमा समझती है कि पिता ने कभी न चाहा होगा कि उसकी बेटी अविवाहित रह जाएँ ।

रिश्ते की दरार

"वापसी" कहानी में पिता-बेटी के संबन्धों में फासले या टूटने का वर्णन है । इसका पिता गजाधर बाबू सहनशील है, वात्सल्यपूर्ण है । रिटायरमेंट के बाद परिवार सदस्यों के स्नेह

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 34
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 34
3. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता - डॉ. शशि जैकब - प. 117

और आदर के मध्य जीने वह आता है । पिता, बेटी बसन्ती को शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी देता है तो बसन्ती मुँह लटकाकर बोलती है - "बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है ।" गजाधर बाबू बड़े प्यार से समझाता है -"तुम सुबह पढ़ लिया करो । तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है । तुम हो, तुम्हारी भाभी है, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए ।"[1] क्रुद्ध होकर रात का भोजन बसन्ती जान-बूझकर ऐसा बनाती है कि कौर तक निगला न जा सके । पिता चुपचाप खाकर उठ जाता है । भाई के पूछने पर बसन्ती यह उत्तर देती है -"बाबूजी को बैठे बैठे यही सूझता है ।"[2] पत्नी से गजाधर बाबू को पता चलता है कि बसन्ती सारा समय सहेली के भाईयों के साथ बर्बाद करती है । एक दिन कपड़े बदलकर बसन्ती बाहर आती तो बैठक से गजाधर बाबू टोक देता है, "कहाँ जा रही हो ?" "पड़ोस में, शीला के घर" -बसन्ती कहती है । गजाधर बाबू कड़े स्वर में उसे मना करता है । उस दिन के बाद बसन्ती पिता से बची-बची रहने लगती है । सहेली शीला के घर जाना होता तो घर के पिछवाड़े से जाती है । पिता के निर्देश का वह उल्लंघन करती है । लड़की के इतने मिज़ाज पर गजाधर बाबू को रोष होता है । फिर भी बसन्ती काफी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी पिता कुछ नहीं कहता क्योंकि वह समझता है कि उपदेश देने से कोई फायदा नहीं । आज पिता-बेटी में संबन्ध का घनापन समाप्त होता जा रहा है जो परिवार के विघटित होने का द्योतक है ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 134
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 137

प्रेमी-प्रेमिका संबन्ध

आधुनिक जीवन की व्यस्तता, मँहगाई, मूल्यहीनता की वजह से प्रेमी-प्रेमिका संबन्ध में भी दरारें आ गयी हैं । इन कारणों से नारी अपने स्वाभिमान एवं अधिकारों के प्रति जागरूक है । पुराने ज़माने के समान आधुनिक नारी प्रेमी की पूजा नहीं करती । वह अपने विचारों को मान्यता देनेवाले प्रेमी को चाहती है जो जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका साथ दे । कभी कभी प्रेमी इसको तैयार नहीं होता । ऐसी स्थिति में प्रेम संबन्ध की टूटन होती है ।

बनता-बिगडता प्रेम

"रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका अपने को किसी व्यक्ति से जुडने नहीं देती । डैनियल पीटरसन भारत में शिकागो के एक समाचार-पत्र का संवाददाता बनकर आता है । वह विदेशियों के लिए भारत-दर्शन नाम की एक गाइड-बुक लिख रहा है । पापा की एक पुस्तक के लिए रिसर्च करने राधिका पुरातत्व विभाग की लाइब्रेरी जाती है और वहीं डैन से उसका परिचय होता है । अपनी आयु की हर विद्यार्थी की तरह राधिका का भी विदेश भ्रमण का एक स्वप्न है । राधिका समझती है कि घर की असहनीय स्थिति से उबरने का यह एक अच्छा तरीका है । डैन के व्यक्तित्व से राधिका प्रभावित होती है । आयु में वह उससे उन्नीस-बीस साल बडा है । "गर्म जलवायु में उसका रंग तप कर ताँबई हो गया

था, और उस वर्ण में स्लेटी रंग की आँखों की दृष्टि अत्यन्त बेध देनेवाली लगती थी ।"[1] कुछ समय लायब्रेरी में बैठने के बाद डैन के साथ उसके घर चाय पीने चले जाना राधिका का नियम बनता जा रहा है । डैन से पहले, राधिका के चरित्र का विश्लेषण कभी किसी ने नहीं किया था । डैन के मुँह से अपनी स्वभावगत विशेषताएँ सुनकर राधिका के मन में यह विश्वास दृढ़ होता कि उसे डैन की बात मानकर एक बार विदेश अवश्य जाना चाहिए । डैन उसे शिकागो विश्वविद्यालय में भर्ती कराता है और जीवन निर्वाह के लिए अपने सहायक के रूप में उसकी नियुक्ति कराता है । विदेश में एक साल बीत जाने पर डैन उसे अपनी ज़िन्दगी से मुक्त करता है । डैन की राय में राधिका ने कभी एक क्षण के लिए भी प्यार नहीं किया । वह डैन में अपना पिता ढूँढती है, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए वह डैन के साथ चली आयी थी ।[2] राधिका को यह ग्रहण करने में समय लगता । वास्तव में डैन राधिका में अपना खोया हुआ यौवन ढूँढ रहा है । वह अपनी पत्नी को छोड़कर चले जाने की बदहवास धोना चाहता है । लेकिन दोनों अपने अपने संकल्प में सफल नहीं हुए । डैन के अनुसार राधिका हिमकन्या-सी जमी हुई और संगमरमर की प्रतिमा के समान है । राधिका समझती है कि डैन जो कह रहा है, उसमें सच का एक बहुत बड़ा अंश है । संबन्ध विघटन के पूर्व डैन राधिका से वादा करता है - "मैं तुम्हारे लिए कुछ प्रबन्ध कर जाऊँगा । मेरे मित्र भी देखते - भालते रहेंगे, तुम्हारे प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने से मैं

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 29
2. हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र - डॉ. सुजाता - पृ. 308

भागूँगा नहीं ।"[1] डैन की सहानुभूति स्वीकार करने के लिए राधिका तैयार नहीं । वह स्वयं रहने का प्रबन्ध करती है । स्वदेश लौटने के अवसर पर उसका यह विश्वास है कि पापा उसे अवश्य ही लेने आयेंगे, भले ही विद्या न आये । उसे एयरपोर्ट पर अक्षय मिला । पहली दृष्टि में ही राधिका को वह ठीक लगता । अक्षय की उदारता और शालीनता से राधिका प्रभावित होती है । राधिका यह भी जानती है कि अक्षय कभी क्षुद्रता पर नहीं उतरेगा । दूसरी ओर अक्षय राधिका की असाधारणता से थोडा आकर्षित हो जाता है । ऑफिस में काम करते समय वह सोचता है कि क्या है वह, जो उसे असाधारण बना देता है । अधिकाधिक परिचित होने पर दोनों एक दूसरे से प्यार करते हैं । अक्षय समझता है - "सुन्दर न होते हुए भी उसमें आकर्षण था, मेधावी होने के तेज़, सहज व्यवहार और बेहद आत्मविश्वास का ।"[2] इसलिए वह राधिका को जीवन साथी बनाना चाहता है । लेकिन अक्षय राधिका के विगत जीवन से संतुष्ट नहीं । वह भुला नहीं सकता कि एक वर्ष तक राधिका डैन के साथ उसकी पत्नी बनकर रहती थी और उसके बाद न जाने कितने पुरुषों से उसका संबन्ध हो चुका है । अक्षय के मन में संशय की चिंगारियाँ जलती रहती हैं - यह राधिका जानती है । इसलिए वह अक्षय का प्यार तोडने बाध्य हो जाती है । इतना ही नहीं कि राधिका का रिश्ता-नाता देशी संस्कार के अनुकूल नहीं । ऐसी नारी को कौन स्वीकार करेगा ? डैन

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 35
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 58

के मित्रों में एक लम्बा-सा भारतीय युवक मनीश भी है । डैन उसका परिचय कराता है । उसके बाद राधिका और मनीश का परिचय बढता है । स्वदेश में पुनः उनका मिलन होता है । राधिका की राय में मनीश में कुछ ऐसा आकर्षण है कि अनजाने ही उसका सिर गोद में रख लेने की चाह होती है । युवती नारियों से जल्दी ही ऊबनेवाले मनीश के चरित्र से राधिका परिचित है । इसलिए मनीश पति रूप में स्वीकार करने योग्य नहीं । फिर भी राधिका को पिता से दूर रहना ही है तो विवश होकर मनीश के साथ चलने का निर्णय लेती है ।

असफल प्रेम

"पचपन खंभे लाल दीवारें" के नारी पात्र आधुनिक है, साथ ही परंपरागत भी । सुषमा को नील के निष्कलंक प्यार का तिरस्कार करना पडता है । सुषमा के चारों ओर दीवारें खिंची हुई हैं, दायित्व की, कुंठाओं की, अपने पद की गरिमा और परिवार की ।[1] प्रेमी नील के आचरण का सहज खुलापन सुषमा के मन को छूता है । सुषमा को नील सुन्दर और अच्छा लगता । नील के लिए शायद सुषमा एक आकर्षक युवती है । सुषमा जानती है कि वह आकर्षक है और अपने प्रति, पुरुष दृष्टि में प्रशंसा देखना उसको नया नहीं । लेकिन नील की दृष्टि में वह जो कुछ है उससे सुषमा के अहम् को सन्तुष्टि सी मिलती है । नील के आगमन से उसका जीवन बिलकुल नया और नियमित बन जाता है । "नील ने उसके बँधे जीवन में ऐसी हिलोरें

---

1. हिन्दी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी - डॉ. राजरानी शर्मा - पृ. 297

उत्पन्न की दी थीं कि उनके परिणाम की आशंका से सुषमा विचलित हो उठी थी ।"[1] अगर नील पास होता तो सुषमा का समय भी सहज ही कट जाता । नील की बाहों में सिमटकर वह अपनी परिस्थितियों को भूल जाती है । नील रूपी कवच समस्त आपत्तियों तथा समस्याओं से उसे बचाये रखता है ।[2] लेकिन उस "निधि" को लुटाये बिना स्वीकार करने का साहस उसमें नहीं है । वह अपने को कमज़ोर पाती है । नील सुषमा को समझाता है कि सुषमा की जिम्मेदारियाँ उसकी भी होगी । लेकिन सुषमा अपना यह बोझ नील जैसे भले आदमी के हाथों में छोडना नहीं चाहती । यह नारी स्वावलंबिनी है और स्वाभिमान की रक्षा करनेवाली भी । सुषमा समझती है कि उसका विवाह कभी सफल नहीं होगा क्योंकि वह नील से पाँच वर्ष बडी भी तो है । अतः वह परंपरागत मान्यताओं का पालन करती है । इसलिए सुषमा नील से कहती है - "तुम्हारी अभी आयु ही क्या है । मैं तुमसे उतनी बडी भी तो हूँ नील । हमारा विवाह कभी सफल न होगा । मुझे सदा यह विचार डंसता रहेगा कि कहीं कोई, बहुत छोटी, बहुत सुन्दर लडकी मुझसे तुम्हें न छीन लें ।"[3] दूसरी ओर राधिका इन मान्यताओं को तोडने का साहस दिखाती है । उसके संदर्भ में परंपरागत दृष्टिकोण ही बदल गया ।[4]

"ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" में चित्रित सुबोध और शोभा का प्रेम संबन्ध आत्मीयता के तौर पर है । सुबोध की बेकारी

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 24
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 97
3. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 119
4. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी - डॉ. किरण बाला अरोड़ा- पृ. 165

की वजह से शोभा का पिता उसकी शादी दूसरे से तय करता है । आहत् मन से सुबोध इस निर्णय को स्वीकार करता है क्योंकि वह जान चुका है कि भूख की या पेट की आग प्यार से भी बड़ी है ।

अवैध संबन्ध

"शेष यात्रा" की अनुका पति प्रणव से तलाक के बाद दीपांकर से मिलती रहती है, कभी कभी बाहर भी चले जाते हैं, पर वह औपचारिक रूप से डेट नहीं होती, अमरीकन तरीके की । दीपांकर अनुका की सहेली दिव्या का भाई है । शायद दीपांकर उस तरह किसी लड़की से मिलता-जुलता नहीं जिस तरह अनुका से । कभी कभी अनुका उसके फ्लैट पर होती है । दीपांकर के सहज, सामान्य, कोमल व्यक्तित्व से अनुका प्रभावित होती है । अनुका समझती है कि उसकी ज़िन्दगी एकदम सीधी-सपाट है, जटिलता और दुरूहता से एकदम रिक्त । उसमें एक तापस और साधक की तल्लीनता है ।[1] दीपांकर की आँखें, पूरी भावमुद्रा पुकार-पुकार जो बात कह रही है, उसका सामना करने में असफल अनुका उससे अवैध शारीरिक संबन्ध स्थापित करती है जो भारतीय परंपरागत मान्यता के विरुद्ध है, लेकिन पाश्चिमी सभ्यता के अनुकूल है । एक छोटे से अन्तराल में, अपने सारे अलगाव और निस्संगता को कहीं बहुत दूर, बहुत अंदर ठेलकर अनुका अपने को दीपांकर के अंतरंग सामीप्य के लिए तैयार कर लेती है । अनुका अब प्रणव के नाम की माला नहीं जपती । वह सब गुस्सा, वह कड़वाहट अनुका अपने से अलग कर देती

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ: 119

है । अनुका और दीपांकर का प्रेम संबन्ध आत्मीय रिश्ता होते हुए भी अवैध शारीरिक संबन्ध की वजह से कुछ फीका पड जाता है ।

विवाहित पुरुष से प्रेम

उषा प्रियंवदा की कहानियों के भी नारी पात्र आन्तरिक दुविधाओं और उलझनों से भरे हैं । "पूर्ति" कहानी की तारा ऐसी नारी है । छुट्टियों के दिनों में विवाहित नलिन से उसका परिचय होता है । अधिक अच्छी बात जो तारा को नलिन में लगती वह उसका गांभीर्य और मितभाषिता है । कभी कभी वह सोचती है कि उसे भी नलिन जैसा पति मिल जाता तो जीवन कितना भरा पूरा और सुखी होता । नलिन की आँखें कैसी मुस्कराती हैं, उसकी बाँहें कितनी उजली और कितनी सबल लगती हैं, उसके ओठ .....।" देरी के बिना दोनों के बीच की दूरी और औपचारिकता की दीवारें अनायास ही ढह जाती हैं । तारा जानती है कि वह नलिन के बहुत निकट आती है और एक दिन वह नलिन की भुजाओं में अपने को खिंच जाने देती है । नलिन के प्रेम से ही तारा के जीवन में पूर्णता आती है । उसके स्नेह का नद अब उसके जीवन को सिंचित करता रहेगा - इस याद में अविवाहित होकर भी वह सन्तुष्ट है । नलिन के प्रेम से तारा का जीवन सुरभित हो जाता है ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पूर्ति - उषा प्रियंवदा - पृ. 72

"मोहबन्ध" की अचला का देवेन्द्र से प्रेम संबन्ध है । अचला मन ही मन देवेन्द्र का घर सजाने की योजनाएँ बना लेती है । वह निश्चय कर लेती है कि अगर इन्हीं गर्मियों में देवेन्द्र विवाह करने को कहेगा तो फिर वह फाइनल परीक्षा नहीं करेगी । पहले देवेन्द्र अचला के साथ हर शाम बिताता । अगर कभी वह न आ सका तो फोन अवश्य करता, कहीं शहर से बाहर जाता तो उसे बराबर पत्र लिखता रहता है । नीलू के संपर्क में आने के बाद देवेन्द्र-अचला का प्रेम संबन्ध टूट जाता है । नीलू और देवेन्द्र का संबन्ध टूटने में अधिक देर न हुआ । नीलू का पति राजन अचला से प्यार करता है तो अचला समझती है कि नीलू ने जो कुछ भी उसके साथ किया, उसकी पीडा अचानक मिट जाती है । उसे इसका सन्तोष है कि वह मुक्त हो जाती है उस शाप से, उस कचोट के बन्धन से । कारण यह है कि राजन की आँखें उससे कहती है कि वह सचमुच सुन्दर है ।[1] लेकिन दुबारा प्रेम संबन्ध रखने का साहस उसमें नहीं । वह अनुभव कर लेती है कि इस मोहबन्ध को तोडकर उसे जाना ही है । "दृष्टिदोष" कहानी की अविवाहित मधुर और विवाहित साम्ब के प्रेम संबन्ध को कोई स्थाई भाव नहीं । मधुर साम्ब के व्यक्तित्व से आकर्षित होती है जबकि साम्ब के लिए मधुर एक मित्र मात्र है । इसलिए वह (सांब) साफ साफ कहता है कि वह अपनी पत्नी को बहुत चाहता है । सांब के इन शब्दों से मधुर बिंधकर रह जाती है ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 29

प्रेम में धोखा

"कोई नहीं" कहानी की नमिता का प्रेमी है अक्षय । अक्षय के फॉरिन सर्विस में भर्ती होने पर वह नमिता का तिरस्कार करता है । इस पीडा की कटुता की वजह से नमिता दो-तीन साल ऐसे ही बेजान, सुन्न-सी पडी रही । सारे समवयस्कों की शादी होने पर भी वह अक्षय की यादों में अविवाहित रहती है । नमिता समझती है कि "मुझे अक्षय से कुछ नहीं कहना है । वह पूछे-अनपूछे प्रश्न मेरे ओठों के पीछे निस्पन्द पडे हैं । मैं चाहती हूँ कि मैं चाँदनी में घुलती जाऊँ, घुलती जाऊँ और फिर मैं, मैं न रहूँ - अक्षय के सामीप्य का बोध, दुख दर्द, तलखी, शिकायतें, एक्सप्लेनेशन्स, रिक्तता मेरे व्यक्तित्व के यह सारे तीखे कगार चाँदनी के हाथों द्वारा चिकने कर दिये जायँ और फूल-सा हल्कापन मेरे ऊपर छा जाये ।"[1] "पिघलती हुई बर्फ" में अक्षय सुधीरा से प्रेम करता है । अक्षय सोचता है कि सुधीरा से कोई प्यार कैसे न करे । जब कभी सुधीरा के शरीर का कोई अंग अक्षय से छू जाता तो वह उसके सामीप्य की गरमाई से अभिभूत हो उठता । लेकिन सुधीरा जो पाश्चात्य सभ्यता में पली हुई है, अक्षय को जीवन साथी के रूप में नहीं देखती । उसके लिए अक्षय मित्र मात्र है । इसलिए वह बीरू से शादी करना भी चाहती है । लेकिन अक्षय समझता है कि बीरू से मिलने पर सुधीरा अक्षय को धोखा देती है । दूसरी ओर भारत में छबि और अक्षय की मुलाकात होती है । छबि के नेत्र अक्षय में कुछ वैशिष्ट्य पाते हैं । अक्षय को देखना उसे अच्छा लगता है ।

---

1. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 59

वे नेत्र पुकार-पुकार कर अक्षय को कुछ जताना चाहते हैं । लेकिन अक्षय समझता है कि छबि की चेष्टा में इतना बल नहीं है कि उसे लाँघ सके । विवाहित टीटी और अविवाहित भास्कर का प्रेम संबन्ध "टूटे हुए" में अंकित है । पति के होते हुए भी वह भास्कर से शारीरिक संबन्ध रखती है । दूसरी ओर प्रेमिका के रहते हुए भी भास्कर टीटी की आत्मीयता और निकटता के घेरे में जीना चाहता है । टीटी से मिलने तक के अन्तराल को भास्कर विचित्र-उत्कण्ठा से काटता है स्वप्नलीन व्यक्ति की तरह क्रिया-आलाप में मग्न होकर । पुत्र की अबनार्मल स्थिति की वेदना से मुक्त होने के लिए ही टीटी भास्कर की बाहों में सिमटना चाहती है । टीटी से संबन्ध रखकर भास्कर अपनी प्रेमिका शशिबाला को धोखा देता है ।

"नींद" की नायिका का प्रेम संबन्ध झूठा है । पहले प्रेमी की याद कायम रखने के लिए वह दूसरे प्रेमी से प्रेम करती है । अस्वस्थ मानसिक अवस्था की वजह से वह बोल उठती है -"मैं केवल साथ ढूँढती हूँ, कम्पेनियनशिप, तुम्हें जिलाए रखने के लिए ।"[1] अतः इसके प्रेम संबन्ध में पवित्रता नहीं । बल्कि इस नारी के दूसरे प्रेमी का प्यार सच्चा है । इसलिए वह उसके पास लौट आकर उसे लेने का वादा करता है । "मछलियाँ" में परिवेश के दबाव से प्रेम संबन्धों की टूटन होती है । इसमें दो प्रणय-जोड़ी हैं - विजी-मनीश और मुकी-नटराजन । मनीश प्रेमिका विजी को लगातार पत्र लिखकर भारत से बुलाता है । लेकिन नटराजन के दोस्त मुकी से भेंट होने पर मनीश विजी को छोड़ता है ।

---

1. कितना बड़ा झूठ - नींद - उषा प्रियंवदा - पृ. 70

आहत् मन से विजी सोचती है कि उसके दिल में मनीश से असीम प्रेम है । इसीलिए उसने अपनी माँ के गहने मौसी के द्वारा बिकवाकर विदेश आने का प्रबन्ध किया था । लेकिन मुकी दोनों के संबन्ध विघटन का कारण बन जाती है । मुकी का मनीश से असली प्रेम नहीं है । वह बहुत व्यावहारिक है । इसलिए मनीश से भी धनी नटराजन को जीवन साथी के रूप में चुनती है । विजी को यह दृढ़ विश्वास है कि नटराजन में मुकी निश्चय ही अधिक वेतन व भविष्य की संभावनाओं का ख्याल करती है । लेकिन नटराजन सच्चे दिल से मुकी से प्यार करता है । वह समझता है कि मुकी के व्यक्तित्व में ठहराव है, वह जो कुछ सोचती है उसे आवेष्टित रखती है । विजी के समान मुकी विचलित या खुली हुई नहीं । विजी से नटराजन का परिचय है क्योंकि नटराजन मनीश का मित्र है । विजी समझती है कि मुकी के प्रति नटराजन का असली प्रेम है । वह मुकी से प्रतिशोध लेने का कार्य करती है और अपनी सहेली को धोखा देकर उसे समझाने का प्रयत्न करती है कि नटराजन का विजी से भी प्रेम संबन्ध है । इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में मनीश और विजी दोनों की ओर से प्रेम को कलंकित करने का कार्य होता है ।

उन्मुक्त प्रेम

"संबन्ध" कहानी के सर्जन और श्यामला का प्रेम संबन्ध अवैध है ।[1] विवाहित सर्जन श्यामला के लिए घर-बार, बाल-बच्चे को छोडने के लिए तैयार है । लेकिन श्यामला अविवाहित रहकर ही सर्जन से प्रेम संबन्ध रखना चाहती है । श्यामला सर्जन से बँधना नहीं

---

1. महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रेम का स्वरूप - सरिता सूद -

चाहती । "उसकी शर्त केवल यही है कि वे दोनों एक दूसरे पर प्रतिबन्ध नहीं लगाएँगे, कोई डिमांड नहीं करेंगे, दोनों में से कोई भी एक दूसरे के प्रति ज़िम्मेदार न होगा ।"[1] उसकी राय है कि सर्जन अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहेगा और वह अपनी काटेज में । भटकन की चाह बढ जाने पर वह सर्जन की ज़िन्दगी से चल जाएगी । पाश्चात्य सभ्यता की उन्मुक्तता की साँस लेकर जीने का प्रयत्न "प्रतिध्वनियाँ" की वसु करती है । इस परिवेश के लिए उचित प्रेमी को भी वह ढूँढ निकालती है - डाक्टर जूलियन । इनका प्रेम संबन्ध शारीरिक पावित्रता को महत्व नहीं देता । वसु के लिए यह संबन्ध पति श्यामल की पत्नी के संदर्भ से कटकर यह जानने का मार्ग है कि वह असलियत में क्या है । जूलियन के संपर्क से वह जानती है कि उसने अपने को पा लिया है, वह आकर्षक भी है । अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए वह पति और बच्ची को छोडकर अन्य पुरुष से संबन्ध जोडती है ।

आत्मीयता -गुरु शिष्य संबन्ध में

"एक कोई दूसरा" कहानी में यूनिवर्सिटी का नया अध्यक्ष डॉ. कुमार से पहली भेंट में ही नीलांजना प्रभावित होती है । उसकी समस्त चेतना उस तीखी, गहन तल तक जाती दृष्टि में केन्द्रीभूत होती है । उसके बाद नीलांजना कई अदृश्य तन्तुओं में उलझकर रहती है । डॉ. कुमार के सामने पडकर उसमें बौनेपन की भावना आती है । वह उसकी दृष्टि में ऊँचा उठना चाहती है । नये उत्साह से वह शोध

---

1. कितना बडा झूठ - संबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 15

कार्य में अधिक मग्न हो जाती है । तीव्र ज्वर उतर जाने के बाद की-सी शिथिलता उसके मन पर व्याप्त होती है । वह उसके समक्ष अपने को नगण्य पाती है । लेकिन डॉ॰ कुमार के आचरण की सहजता से उसका कसाव अनायास ही ढीला हो जाता है और उसका आत्म-विश्वास धीरे धीरे लौट आता है । नीलांजना की राय में डॉ॰ कुमार गहरे शान्त जल के समान है और वह पहाड़ी नदी की तरह उद्विग्न, वेगवती है । मित्र लोग डॉ॰ कुमार और नीलांजना के संबन्ध की ओर इशारा करते हैं तो वह एक झटके से उठती है और कहती है -"जो कुछ डाक्टर कुमार से मैं ने सीखा है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि तुम तो जड हो, तुम्हारे अस्तित्व का स्तर कीड़े-मकोड़ों से अधिक ऊँचा नहीं ।"[1] वह क्रोध से काँप उठती और बोलती है -"मैं डाक्टर कुमार को प्यार नहीं करती । यह शब्द बहुत ही संकुचित है । उनके लिए जो कुछ मेरे हृदय में है, वह बहुत अधिक व्यापक, बहुत विस्तृत, बहुत गहरा है ।"[2] पुरुष मित्रों के साथ नीलांजना को देखकर डॉ॰ कुमार नाराज़ हो जाता है । उसकी प्रताडना नीलांजना के मन को आहत् करता है । मिसेज़ कुमार उसे डॉ॰ कुमार की राय समझाती है -"बोले, इतनी इंटेलीजेंट है, पर मन लगाकर पढ़ेगी नहीं । लडकों के साथ घूमेगी । लोग तरह-तरह की बातें करते हैं । मेरे विभाग की किसी लडकी को ऐसा कहा जाये, यह मुझे सह्य नहीं ।"[3] वास्तव में उस पार्टी में नीलांजना के उल्लास का स्रोत पार्टी नहीं,

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ॰ 29
2. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ॰ 29
3. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ॰ 32

बल्कि डॉ. कुमार की यादें हैं । नीलांजना जानती है कि डॉ. कुमार की मुस्कान उसे एक बडी मीठी दासता के पाश में बाँध लेती है । डॉ. कुमार की पुस्तक का समर्पण - पृष्ठ देखकर उसे लगता है कि एक मृदु दृष्टि बार-बार उससे कह रही है - "तुम नीलांजना, तुम ही तो थी वह दूसरी ।"[1]

पति-पत्नी संबन्ध

आधुनिक समाज की व्यस्तता तथा यान्त्रिकता ने पति-पत्नी संबन्धों को भी यान्त्रिक बना दिया है । पति-पत्नी संबन्धों में विघटन लानेवाला एक प्रमुख कारण प्रेम है । पर पुरुष या पर नारी के आगमन से दाम्पत्य जीवन में समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । पति-पत्नी को एक दूसरे की भावनाओं का आदर करना चाहिए । ऐसा न करने पर वैवाहिक बन्धन टूट जाता है । पाश्चात्य प्रभाव और आर्थिक विषमता की वजह से ही दाम्पत्य जीवन में दरारें पड जाती हैं ।

बिगडन

आधुनिक युग में पति-पत्नी अपने दायित्वों से मुँह मोडते हैं और अनेक उलझनों में डूबते रहते हैं । उषा प्रियंवदा की कहानियों में इस सत्य की ओर उल्लेख करने का परिश्रम हुआ है ।

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 35

"झूठा दर्पण", "टूटे हुए", "प्रतिध्वनियाँ" जैसी कहानियाँ यह व्यक्त करती हैं । "झूठा दर्पण" की अमृता के माँ-बाप को एक दूसरे पर विश्वास नहीं । जवान बेटी के होते हुए भी वे एक दूसरे से दूर रहते हैं । इस उम्र में ममी और डैडी के अलग हो जाने से अमृता के दिल पर खरोंच-सी पड जाती है । अमृता के विवाह तक वे वैधानिक रूप से अलग न होंगें । अमृता के कारण ही वे यह निश्चय लेते हैं । जवान डाक्टर पुत्र की मृत्यु के बाद अमृता की माँ टूट-सी जाती है । डैडी आकर्षित होने के नाते हमेशा खूबसूरत सेक्रेटरी रखता है । ममी में भी दोष की कमी नहीं है । माँ-बाप की इस ज़िन्दगी से ऊब कर अमृता अपने को दोषी ठहराती है । दोनों में मतभेद तो सदा होता है, लेकिन उनके अलग हो जाने की कल्पना अमृता न कर सकती । माँ-बाप के पराजयपूर्ण दाम्पत्य जीवन की वजह से बेटी के मन में यह विचार प्रबल हो जाता है कि विवाह बहुत कुछ माँगता है । इसलिए वह सहेली मीरा से कहती है -"ऐसे संबन्धों पर मेरी आस्था नहीं रही मीरा ।"[1] "टूटे हुए" में प्रो. कृष्णमूर्ति और उसकी पत्नी टीटी एक नाममात्र दाम्पत्य जीवन बिताते हैं । नौकरी के क्षेत्र में प्रो. कृष्णमूर्ति ने सफलता हासिल की । इसलिए वह जब भी भारत जाना चाहता है, उसे विदेश में अधिक सुविधाओं की व्यवस्था कर रोक लेता है । लेकिन उनका दाम्पत्य जीवन एक पराजय है क्योंकि पहले सन्तान की शारीरिक अक्षमता के कारण पत्नी अन्य पुरुषों से मिल-जुलकर रहती है । अतः पति से दूर रहने का प्रयास करती है ।

---

1. एक कोई दूसरा - झूठा दर्पण - उषा प्रियंवदा - पृ. 40

प्रेमी भास्कर से स्वयं टीटी यह व्यक्त करती है -"मुझे प्रोफसर के पेपर में कोई रुचि नहीं है । तुम चलोगे तो तुम्हें शहर घुमाने में दो दिन बीत जायेंगे ।"[1] टीटी के अस्वाभाविक आचरण से मुक्त होने के लिए उसे हमेशा अपने को व्यस्त रखना चाहिए । इसलिए पति जानबूझकर उसके अवैध संबन्ध की परवाह नहीं करता । "चाँदनी में बर्फ पर" का हेम और मीरा का प्रेम विवाह होता है । हेम ने मीरा से विवाह क्षणिक आवेश में नहीं किया । पाश्चात्य सभ्यता में पली मीरा पति हेम को छोडकर पियेर से संबन्ध स्थापित करती है । शादी के आरंभिक दिनों में मीरा ऐसी नहीं थी । हेम याद करता है कि मीरा दुखी या नाराज़ होकर झगडा नहीं करती थी । तब हेम चाहता था कि वह अपना क्रोध प्रदर्शित करे । दिनों के बीत जाने पर वह अपने परिवेश के अनुकूल जीने का प्रयत्न करती है । फलतः दोनों के संबन्ध में ठण्डापन आ जाता है । दोनों के बीच सहज आलाप का जो निर्बाध स्रोत बहता था, अचानक चुक जाता है । पति-पत्नी होने के नाते एकसाथ रहते हैं । हेम में इसीलिए एक बेगानापन-सा घर करता जा रहा है । मन ही मन हेम आश्वस्त करने का प्रयास करता है कि मीरा से उसका संबन्ध अब भी उतने ही सहज, मधुर, प्रीतिकर है । हेम अपनी सत्ताईस वर्ष तक जी हुई ज़िन्दगी को मीरा के लिए काटकर, परिवार से दूर होकर विदेश आया था । लेकिन अपनी इच्छा को मीरा प्रथम स्थान देती है । पियेर के साथ स्केटिंग को जाने से पहले वह पति से कहती है - "हेम, हम लोगों के लिए लौटने तक तुम वाइन तैयार रखोगे ?"[2] वह पति को एक नौकर का स्थान देती है ।

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 137
2. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 120

आत्मीयता

"सागर पार का संगीत" के औस्कर और देवयानी का भी प्रेम विवाह हुआ है । अपना देश और अपनी भाषा छोडकर, माता-पिता बडी उमंग से आयोजित विवाह की परवाह न करके, वह औस्कर से शादी करती है । देश के प्रति प्रेम और पति-प्रेम के बीच संघर्ष की स्थिति में वह रहती है । यह मानसिक द्वन्द्व उसमें एक प्रकार की मानसिक विभ्रान्ति पैदा करता है । वह औस्कर के ख्याल में डूबी रहती है क्योंकि औस्कर के बिना वह रह न सकती । औस्कर को उसे छोडकर नौकरी को जाने का मन भी नहीं होता । औस्कर के अभाव में वह अकेली महसूस करने लगती और इससे मुक्त होने के लिए वह औस्कर का चचेरा भाई ग्यास्पर से अवैध संबन्ध रखती है ।

आर्थिक समस्या

दाम्पत्य जीवन की विभिन्न समस्याओं को अनावृत करने का साहस भी उषा प्रियंवदा में है । "पैरम्बुलेटर" में कालिन्दी और परमेश्वरी का दाम्पत्य जीवन सुचारू रूप से आगे बढता है । पहले शिशु की मृत्यु से इसमें दरारें पडती है । बहुत प्रयत्न करने पर भी कालिन्दी पहले-सी नहीं हो पाती । वह उदासीन होती आती । लेकिन माँ बनने के बाद इस स्थिति में बदलाव आता है । बच्चे के आगमन की हिलोरें दोनों के जीवन में भारी परिवर्तन लाते हैं । उनका दाम्पत्य जीवन पहले की तरह शान्त हो जाता है । एक दिन बच्चे को बुखार आता है । बुखार न उतारने पर कालिन्दी परमेश्वरी

से डाक्टर को बुलाने कह देती है । डाक्टर का फीस कालिन्दी देती है । लेकिन इंजेक्शन लेने का पैसा दोनों के हाथ में नहीं । हाथ में नुस्खा लिये खडे हतबुद्धि परमेश्वरी को पालना बेचकर दवा लेने का उपदेश कालिन्दी ही देती है ।

ढीलापन

"मोहबन्ध" में आधुनिक पति-पत्नी की सच्ची तस्वीर अंकित है । राजन और नीलू पति-पत्नी हैं । उसे पति की सेवा-शुश्रूषा करने का समय नहीं । इसलिए राजन व्यंग्य रूप में कहता है -"देखो न, हमारी नीलू कितनी व्यस्त रहती है । कभी क्लब का डिनर है, कभी कल्याण कार्य के लिए किसी पिछड़े हुए गाँव में जाना है, कभी विमेन्त लीग की मीटिंग है । अगर नीलू और इनकी तरह अकर्मण्य साथिनें यह सब न करें तो देश का उद्धार कैसे हो ?"[1] नीलू एक दायरे में बँधकर रहना नहीं चाहती । राजन की रोषभरी मुद्रा को देखकर नीलू कुछ फीकी हँसी हँसते हुए कहती है -"यह चाहते हैं कि मैं घर में रहूँ । कुत्ते पालूँ, बाग देखूँ, और पर चर्चा करूँ जैसे कि सब करते हैं । मुझसे नहीं होता । बेहद ऊब जाती हूँ ।"[2] नीलू इतनी व्यस्त रहने लगी है कि वह अकसर बिलकुल अकेला रह जाता है । उसे लगता ही नहीं कि घर में उसकी पत्नी भी है ।[3] राजन समझता है कि वह उसके जीवन में गौण हो

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 22
2. जिन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 22
3. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया - पृ. 201

गया है । "जाले" के प्रोफेसर राजेश्वरसिंह और कौमुदी देर से दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते हैं । शादी के बाद राजेश्वरसिंह बहुत उदासी हो जाता है । कौमुदी अपनी इच्छानुरूप पति को टालना चाहती है । राजेश्वर के पास जो मेज़ थी, उस पर रखी किताबों को पुरानी कहकर अपनी जगह से कौमुदी हटा देती है । शेल्फ पर रखी पुस्तकों पर कमरे की कलर स्कीम के अनुसार रंग-बिरंगी जिल्दें बँधवा देती हैं । राजेश्वर को लगता है कि वह कहीं नयी जगह आया है । उसे अनुभव होता है कि उसके शरीर के अंग काट डाले जाते हैं । उसकी मेज़, किताबें, कुरसी, बगीचा सब उससे छिन जाते हैं । तन्दुरुस्ती खराब न होने के लिए मनमाना पाइप पीने से भी कौमुदी पति को रोकती है ।[1] उसके शयनकक्ष में भी नये परदे और नया सामान आते हैं । अपने पुराने ढर्रे पर वापस जाने को राजेश्वर छटपटाता रहता है । उसे लगता है कि वह मकडी के जाले में घिरकर रह गया है । "दो अन्धेरे" में पति दिनेश नौकरी पर जाते समय पत्नी कौशल्या को अपने साथ दिल्ली लेता है । उसके पास मात्र एक कमरा था । वह कमरा हमेशा धूप भरी रहती है और जाड़ों में उसमें अँधेरा होता है । फिर भी कौशल्या को वह स्वर्ग का एक कोना है क्योंकि वहाँ उसका दिनेश है । कभी भी कौशल्या कहीं बाहर जाने को नहीं कहती । थका पति का नींदभंग न होने के लिए वह धीरे-धीरे बर्तन धोती थी । खर्च में काट-छाँटकर अपने-आप अधिक से अधिक श्रमकर परदे बनाती और फर्नीचर खरीदती है । फटे कपडे पहनकर खर्च न करती है । एक दिन दिनेश एक साडी खरीदकर अलमारी में

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - जाले - उषा प्रियंवदा - पृ. 43

रखता है । कौशल्या को अच्छा लगा कि दिनेश बिना कहे अपने आप उसके लिए साड़ी लाया है । लेकिन दूसरे दिन पड़ोस की कँवल को वैसी ही साड़ी पहने देखकर कौशल्या को पति के विश्वासाघात का पता चलता है । बाद में दिनेश माफी माँगता है, लेकिन कौशल्या उस आकस्मिक धक्के से न सम्हल सकी । उसे लगता है कि वह एक अपरिचित के साथ रहती है । इसलिए वह बरबस चीख उठती - "तुमने मेरा विश्वास तोड़ दिया दिनेश, तुमने मुझे छला । क्या मैं ने तुम्हें प्यार नहीं दिया, क्या मैं ने तुम्हें अपना शरीर नहीं दिया ? मैं कष्टों में भी मुस्कुराती रही, थोड़े में ही सन्तुष्ट रही, उसका बदला तुमने मुझे इस तरह दिया ।"[1]

"वापसी" का पति-पत्नी संबन्ध पति के रिटायरमेंट के पूर्व तुच्छ था । गजाधर बाबू याद करता है, दोपहर में, गरमी होने पर भी वह दो बजे तक आग जलाये रहती और स्टेशन से उसके वापस आने पर गरम-गरम रोटियाँ सेंकती थी । खाना पूरा करने के बाद मना करने पर भी थोड़ा सा कुछ थाली में परोस देती थी । वह बड़े प्यार से अधिक भोजन खाने का आग्रह करती थी । बाहर से थके-हारे आने पर उसका आहट पाकर पत्नी रसोई के द्वार पर निकल आती है और उसकी सलज्ज आँखें मुस्कुरा उठती थी । लेकिन रिटायर होकर घर लौटने पर सारी स्थिति में बदलाव आता है । पत्नी छोटी सी छोटी बातों पर पति और बच्चों से नाराज़ होती है । पत्नी को देखकर उसे लगता है कि क्या यही है उसकी पत्नी जिसके हाथों

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अँधेरे - उषा प्रियंवदा - पृ. 101

के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उसने संपूर्ण जीवन काट दिया था ? वह समझता है कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गयी और उसके स्थान पर आज जो स्त्री है, वह उसके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता है । पत्नी का शरीर देखकर अब उसे लगता है कि वह बहुत बेडौल और कुरूप है । चेहरा श्रीहीन और रूखा है । पत्नी के व्यवहार में स्नेह और सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका । पत्नी हमेशा पति से शिकायत करती है जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार है । गजाधर बाबू समझता है कि वह पत्नी के लिए धनोपार्जन के निमित्त मात्र है । अब उसकी पत्नी घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उसकी संपूर्ण दुनिया बन गयी है । दूसरी नौकरी को जाने के पहले पति पत्नी को साथ आने को बुलाता है । लेकिन वृद्धावस्था में उसका साथ देने को वह तैयार नहीं होती ।

बेमेल सम्बन्ध

"दृष्टिदोष" के साम्ब और चन्द्रा का दाम्पत्य जीवन प्रारंभ से ही अच्छा नहीं । चन्द्रा की राय में साम्ब से चन्द्रा का विवाह पिता ने इसलिए किया है कि वह आई ए एस है और उसके लिए चन्द्रा अपने पति को माँफ न कर सकी । शादी के बाद चन्द्रा साम्ब को अपने विचारों के अनुरूप ढालना चाहती है । किन्तु साम्ब इसकी ओर ध्यान नहीं देता रहता है । साम्ब के परिवार में वही एकमात्र पढा-लिखा, नौकरी प्राप्त पुत्र था । परिवार के पुराने

विचारों से चन्द्रा मेल न खाती । घर से अलग होकर रहना - साम्ब इसकी कल्पना तक नहीं कर सकता । घर के शोरगुल में उसे तकलीफ़ होती है । इसलिए वह घर छोडकर भैया के साथ रहती है । पुत्र के जन्मोत्सव के अवसर पर नामकरण के सिलसिले में भी दोनों के बीच झगडा होता है । इसी बीच साम्ब का परिचय चन्द्रा की सहेली मधुर से होता है । साम्ब के लिए मधुर एक दोस्त मात्र है जबकि मधुर उसे प्रेमी समझती है । प्रारंभ में चन्द्रा को पता नहीं कि मधुर का नया प्रेमी अपना पति ही है । इसका पता चलने पर चन्द्रा समझती है कि गलती उसकी है क्योंकि दृढ स्वर में ही साम्ब मधुर से कहता है कि वह अपनी पत्नी को बहुत चाहता है ।[1] अतः पत्नी और बच्चा ही साम्ब के लिए सबसे महत्वपूर्ण है ।

आदर्श संबन्ध

"एक कोई दूसरा" का पति-पत्नी संबन्ध "वापसी" से भिन्न है । डॉ. कुमार की पत्नी बडे हँसमुख स्वभाव की है । नीलांजना से बातचीत करते वक्त उसके शब्दों में ममत्व और नैकट्य है । प्रसन्नचित्त, पान खानेवाली मिसेज़ कुमार, डाक्टर कुमार के जीवन का अभिन्न भाग है । दोनों के बीच खुलापन, बरसों से साथ रहते आये व्यक्तियों की तरह एक दूसरे के प्रति पूर्ण स्वीकृति है । मिसेज़ कुमार की ज़िन्दगी में ये सब होते हुए भी एक प्रकार की रिक्तता है क्योंकि पति ने उसके पुत्र को बोर्डिंग में रख दिया है । उसे मन

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 130

लगाने का कोई रास्ता नहीं । पति के स्वास्थ्य के बारे में वह चिन्ताग्रस्त है । इसलिए बड़े प्यार से वह पति को झिड़काती है - "डाक्टर कहते हैं कि आँखों पर ज़ोर न पड़े, पर तुम मानते नहीं हो । मैं किताब उठाकर बन्द कर दूँगी ।"[1] मिसेज़ कुमार के लिए उसके वयस्क पति एक अबोध शिशु की तरह है जिसका हर काम बिना कहे ही संपन्न हो जाता है । "वे दोनों ही जीवन के उस मोड पर पहुँच गये हैं जहाँ पारस्परिक प्रेम का वेग मंथर गति से बहती नदी में बदल गया है । उसमें ठहराव है, यह उसकी गहराई का प्रमाण है ।"[2] मिसेज़ कुमार का जीवन भरा-पूरा है, उसमें द्वेष, स्वार्थ या किसी का अभाव नहीं है ।

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में "रूकोगी नहीं राधिका" की विधा आदर्श पत्नी का स्वरूप प्रस्तुत करती है । राधिका के सताने पर पापा को बड़ा जबरदस्त नर्वस ब्रेक डाउन होता है । दूसरी पत्नी विधा छुट्टी लेकर पति को शहर के बाहर लाकर इलाज करती है । पति द्वारा उसकी भावनाओं की पूर्ति कभी नहीं होती । रात्रि के प्रथम पहर में पापा की स्टडी के समय विधा अपने कमरे में अकेली रहती है । बेटी के विदेश जाने के बाद वह विधा को अकेली छोड़कर गंगा पारवाली कोठी में रहता है । बहुत दिनों बाद पापा की मुलाकात राधिका और विधा से होती है । लेकिन विधा की परवाह वह नहीं करता । इसलिए राधिका से भेंट होने पर वह विधा से कहता है -

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 20
2. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 20

"देखो, ज़रा नाश्ते का प्रबन्ध करवाओ । भवानी अन्दर ही होगा ।"[1] अत: पति विधा की भावनाओं को समझता नहीं । पति के बच्चों की देखभाल वह सन्तोष से निभाती है । "विधा ने अक्षय को इसलिए तैयार किया है कि राधिका का पहला {विदेश से लौटे हुए} दिन अकेले न बीते ।"[2] समझदार होते हुए भी पति और बच्चों की उपेक्षा भाव की वजह से उसके मुख पर हमेशा बड़ा अलगाव रहता, एक जमी हुई भाव-मुद्रा रहती । आत्महत्या करके वह इस संबन्ध से मुक्त हो जाती है । विधा की मृत्यु के बाद प्रत्यक्ष रूप से पापा नहीं रोया । किन्तु वह बड़ा निरीह, कातर, दुखी मर्दित सा लग रहा है क्योंकि विधा से पापा सच्चा प्यार करता था । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा की माँ इससे भिन्न है । पक्षाघात से पीड़ित पति उसे एक बोझ-सा है । पति की दूसरी पत्नी होने पर भी उसकी कोई अरमान पूरी नहीं होती । घर चलाने का उत्तरदायित्व बेटी सुषमा के कन्धों पर है । फिर भी वह सारी खीझ और झुँझलाहट परिवार पर ही निकालती है । कुछ भी करने असमर्थ पति को छोटे बेटे के साथ अकेला छोड़कर माँ सुषमा के पास कुछ दिनों के लिए रहती है । निरुपमा की शादी के विषय में ही वह ऐसा करती है । लेकिन अशक्त पति को अकेला छोड़ना पत्नी-धर्म नहीं है । "शेष यात्रा" की अनुका और प्रणव की अभी अभी शादी हुई है । नया देश और वातावरण होते हुए भी अनुका एक आदर्श पत्नी की तरह पति की पसन्द को मानकर

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 54
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 9

हर चीज़ व्यवस्थित, तरतीबवार रखने का परिश्रम करती है । शाम को कपडे बदलकर प्रणव के लौटने का इंतज़ार करती है और एक नियत मुस्कान से उसका स्वागत करती है । अनु प्रणव के मूड से चलती है । उसकी दुनिया में किसी चीज़ की कमी नहीं है । प्रणव का दोस्त डाक्टर वाटरमैन अनुका जैसी सुन्दर लडकी से संबन्ध रखना चाहता है । लेकिन एक आदर्श भारतीय पत्नी होने के नाते थरथरा आवाज़ में वह कहती है -"मैं अपने पति के साथ बहुत सुखी हूँ । किसी दूसरे पुरुष का ध्यान भी मैं पाप समझती हूँ ।"[1] प्रणव के अवैध संबन्धों का पता वह देता है । लेकिन अनुका विश्वास नहीं करती । इतना ही नहीं उसकी निष्कलंकता की वजह से वह ये सारी बातें प्रणव से कह देती है । किसी सहेली के घर जाकर अकेले क्षणों से बचने का निर्देश स्वयं प्रणव ही अनुका को देता है । लेकिन बाद में वह इस पर नाराज़ हो जाता है और कहता है कि हर किसी का निमन्त्रण मत स्वीकार करो । माँ बनने की अनुका की इच्छा को भी वह तोडता है । चन्द्रिका से शादी करने के लिए प्रणव अनुका से तलाक लेना चाहता है । लेकिन एक आदर्श पत्नी होने के कारण वह संबन्ध विच्छेद करना नहीं चाहती । इसलिए वह गिड़गिडाकर कहती है -"मैं कुछ नहीं माँगूँगी । सच, मैं बिलकुल दिक्कत दिए बिना रह लूँगी । मोटर, बंगला, मुझे कुछ नहीं चाहिए । जो आप देंगे, वह सिर-माथे पर । बस, आप मुझे अपने साथ रख लें । मुझे अलग न करें । कितने लोग यों ही निभाते आये हैं, मैं पैरों पर पडती हूँ ।"[2] लेकिन प्रणव के लिए यह भैरिज बहुत पहले मर चुकी है, केवल एक वैधानिक

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 27
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 63

बंधन बचा है । प्रणव अपना रास्ता चुनता है और चाहता है कि अनुका को भी अपनी ज़िन्दगी अपने आप गढना चाहिए । अनुका अपने पत्नीत्व में डूबी थी, पर शायद प्रणव का एक ही स्त्री से काम नहीं चलता । इस प्रकार इनका दाम्पत्य संबन्ध प्रणव द्वारा टूट जाता है ।

भाई-बहन संबन्ध

आर्थिक स्तर पर स्वावलंबी होने से नारी की सामाजिक स्थिति में जाने-अनजाने परिवर्तन आता है । बेरोज़गार भाइयों को तब उसका व्यवहार अच्छा नहीं लगेगा । "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" में सुबोध की स्थिति ऐसी है । पहले जब सुबोध नौकरी करता था तब सुबोध की दिनचर्या के ही अनुसार घर के काम होते थे । लेकिन अब वह बेकार है । खाना भी बहन वृन्दा की सुविधा के अनुसार बनता है । सुबोध की सारी चीज़ें वृन्दा के कमरे में आती हैं, सबसे पहले पढने की मेज़, फिर घडी, आराम-कुर्सी, कालीन और छोटी मेज़ भी । यद्यपि उसका पुरुष हृदय घर में वृन्दा की सत्ता स्वीकार न कर पाता,[1] फिर भी उसे वृन्दा के अपमानों को सहना पडा क्योंकि धन के लिए परिवार वृन्दा पर आश्रित है । घर का सारा काम एक नौकर की तरह सुबोध करता है । फिर भी वृन्दा को हमेशा शिकायत ही शिकायत है । वह माँ से कहती है -"काम न धन्धा, तब भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लें । तुम कब तक जाड़े में

---

1. हिन्दी कहानी - एक अन्तरंग परिचय - श्री उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ. 128

में बैठेगी, माँ ? उठाकर रख दो, अपने आप खा लेंगे ।"[1] अतः वृन्दा सुबोध से नौकरों-सा बरताव करती है । वृन्दा धोबी को सुबोध के मैले कपड़े धोने नहीं देती क्योंकि ये सब काम उसे स्वयं करना चाहिए । बेकारी के कारण सुबोध को वह मानती नहीं । अतः अर्थाश्रित भाई-बहन संबन्ध का अंकन हुआ है । धन कमाते वक्त यही वृन्दा सुबोध के आगे-पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड़-दौड़कर किया करती थी । "रूकोगी नहीं राधिका" उपन्यास में भाई-बहन संबन्ध का उल्लेख है । भाई विनय से राधिका का दृढ़ रिश्ता नहीं । कारण यह है कि बचपन से ही विनय शिमले के स्कूल में पढ़ता है । राधिका तो पापा के साथ नौकरों और आयाओं से घिरी रहती थी । इसलिए भाई-बहन को मिला-जुलाने का अवसर नहीं मिला । बड़ा होने पर एक धनी व्यक्ति की इकलौती बेटी से विनय शादी करता है और ससुराल के बिज़नेस में इतना लिप्त था कि बहन से उसे लेना-देना ही क्या ? इस व्यावहारिक बुद्धि के वश वह राधिका को राय देता है कि वह एक अच्छी लड़की की तरह घर में पापा और विद्या के साथ रहे । वह तो ससुराल में सारी सुविधाओं के साथ रहता है और अधिक से अधिक धन कमाने की कोशिश में लगा है । बहन की याद करने के लिए उसे समय नहीं । फिर भी विदेश से लौट आने पर वह राधिका से मिलने आता है । भेंट होने पर दोनों के बीच कुछ कहने को नहीं । भाई के आने पर राधिका समझती है कि संस्कारगत पारिवारिक भावनाएँ अभी पूरी तरह मृत नहीं हुई है । फिर भी दोनों के बीच छुटपुट औपचारिक बातें ही

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 148

होती हैं । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की तुषमा और उसके भाइयों के बीच का संबन्ध सचमुच आत्मीय संबन्ध ही है । तुषमा को लेने उसके दोनों भाई स्टेशन आते हैं और घर पहुँचकर उसका बक्स खुलने की प्रतीक्षा में इधर-उधर मँडराने लगते हैं । संजय को लेदर जैकेट और विनय को तिली हुई कमीजें तुषमा देती है । भाइयों की छोटी-सी छोटी बातों पर वह ध्यान देती है । इसलिए कॉलेज के मकान में रहते वक्त वह अपने को स्नेही भाइयों से विलग होकर बेसहारा पाने लगी । अपनी कॉटेज उसे कारागार-सी प्रतीत होने लगी । वहाँ सुख सुविधा के बावजूद, सहज स्नेह की उष्णता नहीं ।

स्त्री-पुरुष संबन्ध में तीसरा व्यक्ति

तीसरे व्यक्ति के आगमन से पति-पत्नी के बीच के उलझनें सजीव रूप धारण करती हैं । किन्तु इन उलझनों से उत्पन्न संघर्षों को हटाकर दाम्पत्य जीवन को लेखिका नया रूप प्रदान करती हैं । पवित्र वैवाहिक संबन्ध में तीसरे का प्रवेश हमारी परंपरागत मान्यताओं के विरुद्ध है, लेकिन पाश्चात्य सभ्यता के अनुकूल है । मुख्य रूप से उषा प्रियंवदा की कहानियों में इस तरह के अवैध संबन्ध देख सकते ।

पारिवारिक जीवन में तीसरा व्यक्ति

"संबन्ध" कहानी की श्यामला तीसरे व्यक्ति का रूप प्रस्तुत करती है । सर्जन की पत्नी को वह तीसरा व्यक्ति ही है । किन्तु वह उस संबन्ध के बीच बाधा बनना नहीं चाहती ।

इसलिए वह सर्जन से कहती है -"क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते, प्रेमी, मित्र, बंधु । क्या वह सब छोडना ज़रूरी है ? मैं तो कुछ नहीं माँगती ।"[1] इतना ही नहीं वह हमेशा के लिए "तीसरा व्यक्ति" का रूप धारण करने को तैयार नहीं । सर्जन से ऊब हो जाने पर वह उसकी ज़िन्दगी से चली जाएगी । अतः इसका रूप एक संबन्ध विच्छेदक का नहीं । विवाह को एक बेमानी रस्म माननेवाली "प्रतिध्वनियाँ" की वसु का दाम्पत्य संबन्ध तीसरे व्यक्ति के आगमन से टूट जाता है । उसके जीवन में कई "तीसरे व्यक्तियों" का प्रवेश होता है जैसे नलिन, पटनायक, विंस, डॉ॰ जूलियन । अन्त में एक "तीसरे व्यक्ति" डॉ॰ जूलियन से संबन्ध कायम रखने पर भी वह मिसफिट की स्थिति से बचती नहीं । इसमें डॉ॰ जूलियन का भाग खलनायक का नहीं । तीसरा व्यक्ति होने पर भी वह हमेशा वसु से पूछता है कि उसे कभी अपने पति के पास लौटने का ख्याल नहीं आता । वसु की गलतफहमी है कि श्यामल उसे स्वीकार नहीं करेगा । डॉ॰ जूलियन से वह यह भी कह देती है तो डॉ॰ जूलियन वादा करता है कि वह उसे नया संसार गढना सिखायेगा । श्यामल वसु की उपेक्षा नहीं करता, वसु ही बच्ची और पति को छोडकर चली जाती है । ऐसी नारी को स्वीकार करने पर तीसरा व्यक्ति का व्यक्तित्व फीका पडता है । अतः लेखिका तीसरा व्यक्ति डॉ॰ जूलियन के पुरुषत्व पर प्रहार करती है । "कितना बडा झूठ" में विवाहित और दो बच्चों की माँ होते हुए भी किरन तीसरा व्यक्ति मैक्स से मानसिक और शारीरिक संबन्ध रखती है । लेकिन मैक्स और किरन के बीच दूसरा "तीसरा व्यक्ति" वारिया का प्रवेश होता है और मैक्स वारिया

---

1. कितना बडा झूठ - संबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ॰ 15

से विवाह करता है । इससे किरन हतप्रभ हो जाती है । इस कहानी में लेखिका तीसरे व्यक्ति की दोहरी भूमिका प्रस्तुत करती हैं । "ट्रिप" कहानी में सोनी का पति के साथ सोनी का संबन्ध बडे काम्पलिकेटेड है । पत्नी, पति में रोमांस की कमी की शिकायत करती है । घर की सारी देखभाल करने में वह समर्थ है । किन्तु पत्नी से वह कोई आत्मीय या शारीरिक संबन्ध नहीं रखता । वह अपनी "रेस्टलेस" पत्नी को समझने की कोशिश नहीं करता । दो शर्तों पर वह पत्नी को तीसरे व्यक्ति से जुडने की अनुमति देता है । ये दो बातें हैं - पहला, उसे अपने अफेयर चुपचाप कन्डक्ट करना चाहिए । दूसरा, इस उम्र में वह नए बच्चे की जिम्मेदारी नहीं लेंगे, इसका उसे ध्यान रखना चाहिए । बस सोनी के पति और कुछ नहीं माँगता ।[1] "स्वीकृति" में जया और सत्य के दाम्पत्य जीवन में वाल नामक "तीसरा व्यक्ति" का आगमन होता है । सत्य से जया की शादी हबड-तबड में होती है । सत्य की केवल दो माँगें थीं - पत्नी पढी लिखी होना चाहिए और दहेज में मिले धन से विदेश जाने को दो टिकटों का प्रबन्ध हो सके । विदेश में जया नौकरी करना नहीं चाहती । उसे सत्य के पास रहकर सारी गर्मियाँ मनचाही रीति से बिताने की इच्छा है । लेकिन सत्य की इच्छानुरूप उसे निशिगन सागर के किनारेवाले नगर में हिन्दी पढानी पडी । पहले वह इसका विरोध करती है, किन्तु बाद में अपने को संयत करके सत्य से जाने का वादा करती है । वहाँ रहते समय उसकी मुलाकात वाल से होती है । वाल उसे थोडा-सा अच्छा लगता है । सत्य को

---

1. कितना बडा झूठ - ट्रिप - उषा प्रियंवदा - पृ. 61

जपा अपनी आकांक्षाओं की मूक श्रोता, अपनी उन्नति की सहायक मात्र थी । लेकिन वाल को देखकर जपा के मन में नन्हा-सा कौतूहल जन्म लेता है कि वाल नाम का व्यक्ति सचमुच कैसा है ? इसलिए वाल से जपा का प्रेम संबन्ध होता है । जपा को एक ऐसा व्यक्तित्व चाहिए जिसके सामने वह अपनी भावनाओं, विचारों और अपने आचरण पर पड़े सभी आवरणों को एक झटके से उतारकर फेंका जा सके । बाद में लाल रंग की साडी वाल जपा को देते समय वह समझती है कि वाल भी उसे अपनी इच्छाओं की पूर्ति का माध्यम बनाता है क्योंकि वाल यह नहीं पूछता कि उसे किस रंग की साडी चाहिए । "तीसरा व्यक्ति" के असलियत का पता चलने के बाद भी वह अपने पति के साथ रहकर कर्त्तव्यों को निभाना चाहती है । "पूर्ति" में विवाहित नलिन और उसकी पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति के रूप में तारा आती है । तारा संबन्ध विघटन का कार्य नहीं करती । उसे बस नलिन का प्यार चाहिए । उस प्यार की याद में अपनी ज़िन्दगी काटने को वह तैयार है । वह जानती है कि "अब वह कभी अपने को अकेली महसूस नहीं करेगी क्योंकि वह परिपूर्ण है, उसके स्नेह का नद अब उसी के जीवन को सिंचित करता रहेगा क्योंकि इसी दुनिया में, किसी जगह नलिन भी है जिसने उसे अछूता फूल समझकर मुँह नहीं फेर लिया बल्कि लेकर सिर माथे चढा लिया । और उसी स्पर्श ने उसमें इतनी सुगन्ध भर दी है कि तारा का जीवन सदैव सुरभित रहेगा ।"[1] "दो अंधेरे" में दिनेश और कौशल्या के दाम्पत्य जीवन में कंवल नामक तीसरा व्यक्ति आता है । बाह्य रूप

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पूर्ति - उषा प्रियंवदा - पृ. 82

से कंवल की वजह से दोनों का संबन्ध टूटता नहीं, लेकिन आन्तरिक रूप से इनका संबन्ध विच्छेद हो जाता है । "दृष्टिदोष" में सांब और चन्द्रा के दाम्पत्य संबन्ध में तीसरे व्यक्ति के रूप में आने का प्रयत्न मधुर करती है । लेकिन वह निष्फल हो जाती है । अतः तीसरे का आगमन सांब रोकता है । "एक कोई दूसरा" में डॉ. कुमार और उसकी पत्नी के बीच नीलांजना तीसरा व्यक्ति ही है, किन्तु वह संबन्ध विघटन का हेतु नहीं बनती । तीसरा व्यक्ति होने के नाते वह दोनों के संबन्ध में कुछ कमी देखती है और सोच उठती है -"वह क्या अपने गंभीर, चिन्तनशील, प्रखर बुद्धिवाले पति को पूर्ण रूप से संतुष्ट कर सकी होगी ? क्या उस मन का एक कोना अछूता ही न रह गया होगा ?"[1] "झूठा दर्पण" में मीरा और यति के जीवन में अमृता को मीरा तीसरा व्यक्ति मानती है । वास्तव में अमृता स्वप्न में भी इनका संबन्ध टूटने की कल्पना तक नहीं करती । बल्कि उसे आग्रह है कि अगर यति-सा कोई पुरुष उसे मिले तो वह झट से उससे शादी करेगी - यह अमृता मीरा से साफ साफ कहती है । स्वाभाविक रूप से इसीलिए मीरा अमृता को तीसरा व्यक्ति मानती है । अमृता की गोद में अपना मुख छिपाकर लेटनेवाला यति का स्पर्श अमृता के लिए पुरुष का स्पर्श नहीं था । वह एक प्रेमी का भी स्पर्श नहीं । अमृता उस स्पर्श को सान्त्वना पाने की इच्छुक आहत बिबिया या गिरकर रोते हुए बेबी का स्पर्श मानती है । अतः वह तीसरा व्यक्ति बनना नहीं चाहती । "टूटे हुए" की टीटी की ज़िन्दगी के

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 19

एक अनिवार्य अंग के रूप में तीसरे व्यक्ति भास्कर को लेखिका चित्रित करती हैं । टीटी के पति को इस अवैध संबन्ध का पता भी है । फिर भी वह भास्कर को दोषी नहीं मानता क्योंकि उसे मालूम है कि पत्नी का शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहने के लिए ऐसे संबन्धों की ज़ख्त ज़रूरत है । इसलिए प्रो. कृष्णमूर्ति भास्कर से कहता है -"मैं उसे लेकर आजकल बहुत चिन्तित हूँ । उसका आचरण बहुत अस्वाभाविक होता जा रहा है । लंबी चुप्पियाँ, उदासी के लंबे-लंबे दौर । उसे अपने को व्यस्त रखना चाहिए, पर उसका हर चीज़ से मन ऊब-सा गया है ।"[1] भास्कर भी यह मानता है कि टीटी को जो कुछ चुनना था, वह चुन चुकी है । अपनी वेदना दबाने के लिए ही वह इस अवैध संबन्ध को कायम रखती है ।

प्रेम संबन्ध में तीसरा व्यक्ति

प्रेमी-प्रेमिका संबन्ध में भी कभी-कभी "तीसरा व्यक्ति" का प्रवेश होता है । "मछलियाँ" की विजी तीसरे व्यक्ति से प्रतिशोध लेने के लिए स्वयं तीसरे व्यक्ति की भूमिका में उतरती है । मनीश-विजी का प्रेम संबन्ध मुकी नामक तीसरे व्यक्ति से टूट जाता है तो मुकी और नटराजन के संबन्ध को तोडने के लिए विजी तीसरे व्यक्ति का रूप धारण करती है । वह मुकी को समझाने का प्रयास करती है कि उसे नटराजन ने डाक्टर के पास जाने और इंडिया लौट जाने के लिए पन्द्रह सौ डालर दिए हैं । यहाँ, नटराजन और मुकी के प्रेम को तोडने में तीसरा व्यक्ति सफल होता है । "मछलियाँ" कहानी

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 147

की तरह "मोहबन्ध" की अचला और देवेन्द्र का प्रेम भी नीलू नामक तीसरे व्यक्ति से शिथिल होता है । लेकिन अवसर मिलने पर भी अचला नीलू और राजन के बीच तीसरे व्यक्ति के रूप में नहीं उतरती । विवाहित व्यक्तियों से प्रेम करके उससे शारीरिक संबन्ध रखने में तुष्ट "चाँद चलता रहा" की रोहिनी उन व्यक्तियों की ज़िन्दगी में तीसरा व्यक्ति ही है । रोहिनी शादी के पहले भगेतर अरविन्द से शारीरिक संबन्ध रखना नहीं चाहती । इसलिए वह अरविन्द को डिनाइ करती है । अरविन्द की मृत्यु होने पर वह अपने से बदला लेती है । अपनी पवित्रता को इसीलिए वह नष्ट करती है और कर्नल शर्मा, विनय जैसे व्यक्तियों की ज़िन्दगी में तीसरा व्यक्ति बनकर आ जाती है । उषा प्रियंवदा "कोई नहीं" में एक से अधिक "तीसरा व्यक्ति" को प्रस्तुत करती हैं । विदेश में मिली आस्ट्रियन युवती से शादी करने की इच्छा से अक्षय नमिता से प्रेम संबन्ध तोडता है । अतः आस्ट्रियन युवती अक्षय-नमिता के बीच तीसरा व्यक्ति है । फॉरेन सर्विस के नियम बताकर अक्षय आस्ट्रियन युवती को छोडकर एक स्विस युवती से शादी करता है । यहाँ स्विस लडकी अक्षय और आस्ट्रियन युवती के प्रेम को तोडनेवाला तीसरा व्यक्ति है । नमिता को आस्ट्रियन और स्विस युवतियाँ दोनों तीसरे व्यक्ति हैं । उनके प्रति नमिता को कोई द्वेष नहीं । बल्कि पहले तीसरे व्यक्ति से उसे सहानुभूति है क्योंकि वह स्विस युवती द्वारा पराजित होती है । देवयानी और उसका भगेतर प्रकाश के बीच तीसरे व्यक्ति के रूप में औस्कर आता है और संबन्ध विघटन करके वह देवयानी से विवाह करता है । "सागर पार का संगीत" में इसका उल्लेख मिलता है कि "अपने नाम दो खत पाकर वह चिहूँक-सी उठी । एक खत पिता का था, दूसरा प्रकाश का । वह लिफाफा कुछ देर उलटती-पलटती रही और फिर बिना खोले

ही मेज़ पर डाल दिया जैसे कितनी निर्मम हो आई, एक झटके से सारे बन्धन तोड डाले ।"[1] "पिघलती हुई बर्फ" का अक्षय अपने और प्रेमिका तुधीरा के बीच बीरू को तीसरा व्यक्ति मानता है । तुधीरा को अक्षय एक मित्र है, बीरू ही उसका प्रेमी है । किन्तु अक्षय यह समझता नहीं । अपने जीवन से तीसरे व्यक्ति को हटाने के प्रयत्न में वह तुधीरा को अपाहिज बनाता है और बीरू को मृत्यु के हाथों में भेज देता है । "चाँदनी में बर्फ पर" में तीसरे व्यक्ति की स्थिति कुछ जटिल है । हेम-कल्याणी के प्रेम संबन्ध में मेरी तीसरे व्यक्ति के रूप में प्रवेश करती है और मीरा नाम लेकर हेम से शादी करती है । विदेशी सभ्यता में पली मीरा पियेर नामक विदेशी पुरुष से संबन्ध स्थापित करती है । हेम-मीरा के दाम्पत्य जीवन में पियेर का स्थान "तीसरा व्यक्ति" का है । हेम की पहली प्रेमिका कल्याणी का विवाह हेम के दोस्त अविनाश से होता है । अविनाश पत्नी समेत विदेश आता है और हेम की मुलाकात कल्याणी से होती है । मीरा से ऊब होकर हेम कल्याणी से संबन्ध रखना चाहता है । तो अविनाश और कल्याणी के बीच हेम "तीसरा व्यक्ति" का रूप धारण करता है । इस प्रकार लेखिका कहानी में तीन व्यक्तियों को 'तीसरे' का स्थान देती हैं । इनमें हेम के प्रति करुणा उत्पन्न होता है क्योंकि उसे मीरा और कल्याणी से तिरस्कार का अनुभव मिलता है । प्रथम प्रेमी की मृत्यु से, उत्पन्न वेदना से मुक्त होने के लिए "नींद" की नायिका "तीसरा व्यक्ति" से प्रेम करती है । स्वयं नायिका इसका संकेत देती है -"तुम, मैं, वह - और न जाने कितने चेहरों की पाँत ।"[2]

---

1. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा-पृ. 66
2. कितना बडा झूठ - नींद - उषा प्रियंवदा - पृ. 70

रूढिमुक्त और आधुनिकता से संपृक्त नारी

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में आधुनिकता से युक्त रूढिमुक्त व्यक्तित्व संपन्न नारियों का उल्लेख मिलता है । वर्तमान को सजग रूप से भोगने और उस भोग से नये संदर्भ में देखने और जीने की क्षमता को आधुनिकता कहते हैं । आधुनिकता एक प्रकार की प्रगतिशील जीवनदृष्टि है । बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप नारी की चिन्ताधाराओं में परिवर्तन लाने का प्रयत्न उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषता है ।

"पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा प्रकट रूप से आधुनिकता नहीं दिखाती । लेकिन मन ही मन वह प्रगतिशील दृष्टि की नारी है । सुषमा जानती है कि वह एक जिम्मेदारी के पद पर है और उसे अपनी छात्राओं के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए । फिर भी वह नील के प्यार को ठुकरा नहीं कर सकती । वह नील के साथ घूमने जाती है, पिक्चर देखने और रेस्त्राँ में जाती है । इतना ही नहीं सुषमा के घर में नील कई घण्टों तक बातचीत करके रह जाता है । कॉलेज में इन पर चर्चा होती हैं कि सुषमा कब जाती हो, कब उसके पास कौन आता है, किसने उसे सिनेमा घर में देखा, किसने क्लब में । होस्टल की लडकियों में, स्टॉफ रूम में, नौकरों में, हर जगह आजकल उसकी ही चर्चा है । मीनाक्षी से यह सुनकर सुषमा भिंचे कण्ठ से कहती है -"मैं किसी की परवाह नहीं करती ।"[1] मीनाक्षी की राय में उसका दायरा ही ऐसा है ।

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 108

कॉलेज की चहारदीवारी के अन्दर जो भी होता है उसमें सभी रुचि लेते हैं । सुषमा कब आयी कब गयी इसका लेख सबके पास है । सुषमा इससे नाराज़ होकर पूछती है -"मेरे व्यक्तिगत जीवन में किसी को दखल देने का क्या हक है ।"[1] इसप्रकार नील के साथ घूमने-फिरने में वह आधुनिकता का प्रदर्शन करती है । "रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका सुषमा से भी अधिक आधुनिक है । राधिका अपने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के लिए लडती है । वह कभी लीक पकडकर नहीं चलती । पिता से प्रतिशोध लेने कम परिचित विदेशी पुरुष के साथ जाने में रूढिमुक्त नारी की झलक मिलती है । डैन से राधिका के संबन्ध पर पूछताछ करने के अवसर पर राधिका रज्जू मामा से सपाट स्वर में कहती है कि शादी का सवाल ही नहीं उठता । डैन ने उसे विदेश जाने में सहायता दी । राधिका की राय में इससे बढकर उसका डैन से कोई संबन्ध नहीं, जबकि वास्तविकता यह है कि दोनों एक दूसरे से प्यार करते थे । एक वर्ष के बाद डैन उसे रिजक्ट करता है तो स्वयं राधिका मिसेज़ होमर के घर में रहने का प्रबन्ध करती है और एक अपरिचित देश में अकेली जीती है । डैन के घर से चले जाने में राधिका के मन में यह भाव था कि वह ही उसे छोडकर जाती है । वह अपने ऊपर व्यक्ति, परिवार और समाज का दबाव महसूस नहीं करती । राधिका जानती है कि उसके अतीत को लेकर अक्षय के मन को कुछ निरन्तर काटता रहता है । विवाह प्रस्ताव के समय इसलिए वह अक्षय से कहती है -"मैं नहीं चाहती कि जल्दबाज़ी में तुम अपने को कमिट करो अक्षय ।"[2] किसी के सामने सिर झुकाने वह

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 54
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

तैयार नहीं । अक्षय को छोडकर मनीश को प्रेमी के रूप में स्वीकार करके वह आधुनिक नारी का स्वरूप प्रस्तुत करती है । यद्यपि उसे मालूम है कि किसी एक युवती से बँधकर रहना मनीश का स्वभाव नहीं । इतना ही नहीं वह पिता से साफ साफ कह देती है कि वह किसी अनजान पुरुष से सप्तपदी का रस्म पूरी करवाकर उसकी पत्नी बनना नहीं चाहती ।[1] अतः वह जो ठान लेती है, वही करती है । "शेष यात्रा" की अनुका को उसका टूटा हुआ दाम्पत्य जीवन आधुनिक और रूढिमुक्त बनाता है । प्रणव के द्वारा छोड जाने पर अनुका को अपने पर, प्रणव पर, दोस्तों पर बहुत गुस्सा था । यह बात उसे हर वक्त कचोटती थी कि वह एक व्यक्ति की हैसियत से कुछ भी नहीं, जो कुछ थी, वह सब श्रीमती कुमार की हैसियत से । उसे बार बार लगता कि उसने वह साल क्यों खो दिया, बिरियानी और कबाब बनाने में ? कुछ किया क्यों नहीं ? उसने अपने को कुछ आगे क्यों नहीं बनाया । इसी मानसिक तनाव में वह सोचती है कि अभी तो सारी उमर पडी है । वह कुछ बनने की कोशिश कर लेती है । उसका विचार है कि क्या वह भी डाक्टर प्रणवकुमार बन सकती ? उसे इत्तफाक से मेडिकल कालेज में एडमिशन मिलता है और नौकरी करके डाक्टर बनने का स्वप्न सजा लेती है । किसी न किसी तरह वह पेट के बल रेंगते हुए सैनिक की तरह यह पुल पार करती है । हमारी परंपरा के अनुसार तलाक या वैधव्य के बाद नारी को जीने का हक नहीं । उसे खुदखुशी करनी चाहिए । लेकिन अनुका इस अन्धविश्वास को सुधारती है । डाक्टर बनने के बाद वह मनपसन्द पुरुष से शादी करके एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करती है ।

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 36

"एक कोई दूसरा" कहानी की नीलांजना अधिक आधुनिक है । पुरुषों की चाह भरी दृष्टि की मदिरा उसे सदा गुदगुदा जाती है । इसलिए धीरेन्द्र, दीक्षित और स्टड जैसे पुरुष मित्रों के साथ घूमने फिरने से वह हिचकती नहीं । उसके अन्दर बड़ा गहरा सन्तोष है कि उसका रूप, उसका चापल्य, उसकी हँसी किसी पुरुष के रिक्त जीवन का थोड़ा-सा कोना तो भर सकी । अपनी इच्छा को प्रथम स्थान देने की वजह से भैया और भाभी के विवाह प्रस्ताव को वह मानती नहीं । भाभी उसे समझाती है कि किसलिए वह अपने को मिटाती है । उसका रूप और रंग धीरे-धीरे खो जाएगा । हर चीज़ की अपनी ऋत होती है । हरे पत्ते नोंचकर फेंक देने से पतझड़ नहीं आता । भाभी के उपदेश को कोई महत्व न देकर नीलांजना कहती है -"पतझड़ कहाँ ? मेरे ऊपर तो चिर वसन्त है । मैं मुस्कुराती हूँ, मैं सच ही वासन्ती बयार हूँ, जहाँ जाती हूँ घर-प्रांगण सुगन्धित कर देती हूँ ।"[1] वह अपने आप पर अधिक विश्वास रखती है और स्थापित करने का प्रयत्न करती है कि शादी किये बिना भी वह जी सकती । वह समर्थन करती है कि पति के घर उसे ऐसा सुख नहीं मिलेगा जो अपने घर में है । इसलिए वह भाभी से कहती है - "मैं सुखी नहीं हूँ, यह तुम कैसे कहती हो, भाभी ? देखो, कितने आराम से तुम रखती हो, मँझले भैया ने मोटर खरीद दी है, जहाँ चाहूँ जाऊँ । मेरे नाम इतना रुपया बैंक में है । क्या यह सुख नहीं ? रंगवाले के यहाँ मुझे इससे अधिक क्या मिलेगा ?"[2] "सागर पार का संगीत" की देवयानी

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 9
2. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 9

शादी पक्की होने के बाद प्रेमी औस्कर के साथ स्वदेश और स्वजनों को छोडकर भाग जाने का साहस दिखाती है । यह उसकी आधुनिक विचार का प्रमाण है । कहानी में इसका उल्लेख है कि अपने नाम पिता का और प्रकाश का खत पाकर वह चिहूँक-सी उठती है और उन्हें बिना खोले ही मेज़ पर डाल देती है जैसे कितनी निर्मम होकर, एक झटके-से सारा बन्धन तोड डालती है । "संबन्ध" की श्यामला विवाहित सर्जन के साथ रहने में कोई गलती नहीं देखती । अविवाहिता नारी का विवाहित पुरुष के साथ रहना सामाजिक रीति-रिवाज़ों के विरुद्ध है । अधिकतर, सर्जन रात में उसके काटेज आता है, कोई निश्चित समय नहीं, ग्यारह से लेकर ढाई बजे के बीच कभी भी । यह समाज की दृष्टि में गलत ही है । श्यामला परंपरागत रूढियों से मुक्त करने का कार्य करती है । सर्जन के आने तक श्यामला नहा लेती है, बाल सँवार लेती है और धुले साफ कपडे पहनकर वह सर्जन की प्रतीक्षा करती है । श्यामला का अकेलापन भरे-पुरे परिवारवाले, संपन्न, सफल सर्जन की आँखों में अपना प्रतिबिंब पाता है । उसके अकेली, उजाड, फटेहाल-सी काटेज में सर्जन के साथ रहने से उसे कुछ समय के लिए राहत-सी मिलती है । सचमुच श्यामला आधुनिकता से संपृक्त नारी ही है ।

काममूलक संवेदना

उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में काममूलक संवेदना कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती । बल्कि इसकी कमनीय अभिव्यक्ति हुई है । यह प्रकृति नियम है कि नर-नारी एक दूसरे के

प्रति आकर्षित है । तृप्ति इस आकर्षण का प्रयोजन है । स्थूल भोग से मानव का मन तृप्ति चाहता है । उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में यह काममूलक संवेदना झलकती है । लेखिका "पचपन खंभे लाल दीवारें" में इसके लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करती हैं । शरद पूर्णिमा के दो दिन बाकी हैं और सुषमा के घर के चारों ओर उज्ज्वल चाँदनी बरसती है । नील की दृष्टि चारों ओर घूमकर फिर सुषमा पर टिक जाती है । सुषमा ने नील की ओर से पीठ फेरकर अलमारी बन्द करते हुए पूछा, "कैसी बातें करते हैं ?" नील उसके पास आ गया और पीछे से उसके कंधे पकड़ता हुआ बोला, "सच ?" एक लघु पल में सुषमा के सामने अनेक चित्र बनते हैं और बिगड़ते हैं । सुषमा समझती है कि उसे अलमारी के आगे खड़े-खड़े एक युग बीत जाता है । अब तक पढ़ी अनेक किताबों के पृष्ठ उसके सामने फड़फड़ा उठते हैं, शब्द बोलने लगते हैं । लेकिन यह जीवन का स्पंदित क्षण है, अतीत और भविष्य के बीच का सेतु, उसे अपना शरीर फूल-सा हलका लगता है और उस पर मधुर अलसता-सी छाने लगती है । छुट्टियों के दिनों में होस्टल खाली होती है और सुषमा के घर नील आता है । नील सुषमा की ओर हाथ बढ़ाता है और सुषमा अपनी पीठ पर नील के दिल की धड़कन महसूस करती है । नील की उँगलियाँ उसकी अनावृत बाँहों को छूती हैं । सुषमा उसी तरह बिना हिले बैठी रही । उसे पता है कि कहीं कोई नहीं है, रात को चौकीदार भी छुट्टी पर है सारी रात वे दोनों ऐसे ही बैठे रहते तो भी किसी को पता नहीं मिलेगा ।

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 47

नील उसकी बाँहों को हल्के-हल्के छूता रहता है । उसके केशों की सुगन्ध में डूबता रहता है । दूसरी ओर "रूकोगी नहीं राधिका" में शारीरिक संबन्ध का उल्लेख नहीं, स्थूल भोग को चित्रित करती हैं । इसमें, डैन अपना खोया हुआ यौवन राधिका में ढूँढता है और अपनी पत्नी के छोडकर चले जाने की कटुवाहट धोना चाहता है । एयरपोर्ट में अक्षय कुछ घंटों में राधिका के संपर्क में आता है और उसे वह अच्छी लगती है । सुन्दर न होते हुए भी उसमें आकर्षण है । मेधावी होने का तेज़ और आत्मविश्वास भी है । उसका शील, नम्रता, व्यक्तित्व जनित है, उसमें कृत्रिमता नहीं है, इन सब कारणों से वह अक्षय को आकर्षित करती है । अक्षय को परस्पर आकर्षण की परिणति विवाह है । अक्षय के दिल में ज़रूर राधिका से प्रेम है । इसलिए अकेले सन्नाटे में रहने का आग्रह प्रकट करने पर अक्षय राधिका से पूछता है -"आखिर ऐसा ही बनवास लेने की आपको क्या ज़रूरत है ।"[1] अक्षय इसकी ओर भी आकर्षित होता है कि राधिका जो कुछ पहनती है, उसी में अच्छी लगती है । राधिका के बालों का रंग, केश-विन्यास भी अक्षय को उसके प्रति काममूलक संवेदना प्रदान करते हैं । शाम का हल्का, स्निग्ध उजाले में राधिका के चेहरे की रेखाएँ जैसे घुलकर मृदु हो आती है और उसके लंबे कृश तन पर दक्षिणी साड़ी, ये सब पुरानी होते हुए भी खूब सजाकर रहती है । अक्षय इस संदर्भ में अपने को बड़े नियन्त्रण में रखने का प्रयास करता है । अक्षय उसमें बँधना चाहता है, एक बार अनुभव में आकण्ठ डूबना चाहता है, किन्तु उसकी लज्जालू प्रवृत्ति बाधा बन जाती है । अक्षय समझता है कि राधिका के संपर्क में आ सकता तो

---

1. रूकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 65

वह अपने को दमित नहीं करता । अगर एक उमडती हुई लहर उसे बहा ले जाती तो उससे उबरने के लिए हाथ-पैर नहीं मारता । राधिका की राय में अक्षय के स्पर्श से कभी भी उसकी धमनियों में रक्त के प्रवाह की गति तीव्र नहीं होती । बल्कि मनीश में कुछ ऐसा आकर्षण है कि उसकी बाँहों में सिमटने का मन होता है । मनीश से मुलाकात होने पर वह राधिका के अतीत के बारे में पूछताछ करता है । सब सुनने के बाद वह क्षमा याचन करता है -"मैं ने तुम्हें दुःखद प्रसंगों की याद दिला दी ।"[1] मनीश का दायाँ हाथ राधिका के कन्धे पर हल्के से आ टिकता है । अतः मनीश के दिल में राधिका से शारीरिक आकर्षण होता है । मनीश द्वारा आयोजित डिनर-पार्टी में वह राधिका के दोनों हाथ बडी आत्मीयता से पकडता है । राधिका को मालूम है कि मनीश के पास होने पर उसकी उपस्थिति का ऐसा ही बोध होता है जैसा कि उत्तेजित अवस्था में अपने हृदय की धडकन का । वहाँ मनीश राधिका को कोमलता से बाँहों में भर लेता है । उस क्षण में राधिका के मन में कौंध जाता है कि जाने-अनजाने वह ऐसी ही स्थिति की आकांक्षा करती थी । वाँछित पुरुष-स्पर्श राधिका को धीरे-से सुलगा देता है, लेकिन अन्दर से आया सम्मिलित ठहाकों का स्वर और मेंहदी की सुगन्ध को दबाकर राधिका उसकी बाँहों को अलग करती है । राधिका से मिलने-जुलने का अवसर पाने पर मनीश उसे छोड़ने नहीं देता । इसलिए दायीं बाँह से राधिका का कन्धा घेरकर उसका मुँह अपनी ओर करके वह पूछता है -"क्यों राधिका, बताया नहीं, तुम्हें क्या परेशान किया करता है ?"[2] अक्षय भी राधिका

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 84
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 102

की कामना करता है । इसलिए राधिका की साडी का नरम, स्निग्ध रेशम अक्षय को छूने पर वह बिना सोचे उसे मुट्ठी में भींच लेता है । लेकिन राधिका अक्षय की मुट्ठी ढीली कर अपनी साडी छुडा लेती है । "शेष यात्रा" में अनुका का पति प्रणवकुमार एक बार काममूलक संवेदना दिखाता है । उस संदर्भ में अनुका अपने को प्रणव की कसी पकड में घिर जाने देती है । अनुका समझती है कि प्रणव के होंठ क्रूर है । वह एक हिंसक आक्रोश में अनुका को झकझोरता है, प्यार में नहीं । एक पुरुष का अव्यक्त रोष और ऐंठती हुई ताकत उसमें विद्यमान है । प्रणव के इस व्यवहार के कारण अनुका देर तक कुचली, टूटी, झुकी हुई पडती है । बाद में अनुका का प्रेमी दीपांकर की काममूलक चेष्टाओं का विशद वर्णन है । वह अनुका को बाँहों में भरकर अपने सीने से लगाता है । अनुका भी अलग होने की कोशिश नहीं करती । दीपांकर एक आवेग में अनुका का माथा, पलक, होंठ, ठोढी, गले को बार-बार चूमता है । अनुका अपने अन्दर एक ठंडापन, एक दूरी महसूस करती है और वह क्षण बीताने के लिए गिलास उठाकर दीपांकर के होंठों से लगा देती है । दूसरी ओर अनुका अपने को दीपांकर के अंतरंग सामीप्य के लिए तैयार करती है । वह दीपांकर की टाई खोलकर काउच के हत्थे पर डालती है और बहुत हल्के-हल्के उसकी कमीज़ के बटन खोलती है । दीपांकर की शर्मीली उँगलियाँ अनुका के कपडों से उलझती हैं । प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका स्थूल भोग को विस्तार से अंकित करती हैं । साथ ही पुरुष की शंकाग्रस्त मनस्थिति को व्यक्त करती हैं । इसीलिए दीपांकर की आवाज़ उभरती है - "एक बात पूछूँ - बुरा तो नहीं मानोगी ? प्रणवकुमार के बाद - मैं पहला नहीं हूँ न ?"[1]

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 123

कहानियों के अन्तर्गत "जाले" में उषा प्रियंवदा प्रो. राजेश्वरसिंह की काममूलक संवेदना की अभिव्यक्ति करती हैं। कौमुदी के आकर्षण के आगे वह अपने को अत्यन्त अशक्त पाता है। कौमुदी की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं। उसकी आँखों पर प्रोफेसर के सामीप्य से प्रकाश की किरणें चमक उठती हैं। एक दिन जब कौमुदी पास बैठती तो उसकी पतली लंबी और उजली गरदन के नीचे जहाँ ब्लाउज़ का गला आरंभ होता है उसके ऊपर के कोमल भाग पर अपने ओठ रख देने की एक अदम्य लालसा प्रोफेसर को अभिभूत कर देता है। "पूर्ति" कहानी में तारा को नलिन से आकर्षण होता है। इसलिए वह सोचती है -"पर नलिन - अगर उस-जैसा पति मिलता तो उसकी आँखें कैसी मुस्कुराती हैं, उसकी बाँहें कितनी उजली और कितनी सबल लगती हैं, उसके ओंठ .....।"[1] नलिन के साथ कॉफी पीते वक्त तारा को लगता है कि यह क्षण एक लंबी श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है। इस श्रृंखला में अतीत और भविष्य गूँथे हुए हैं। तारा की दृष्टि नलिन की आँखों से मिलने पर तारा अपनी आँखें झुका लेती है कि कहीं उसकी चाहना नलिन न देख लेता। तारा सोचती है कि नलिन के हाथों का स्पर्श मृदु भी हो सकता और सशक्त भी ! उसके हाथों को अपनी हथेलियों में लेकर अपने स्पर्श से नलिन के चोट की पीड़ा वह हर लेना चाहती है। नलिन भी तारा से आकर्षित हो जाता है। इसलिए अवसर मिलने पर नलिन के हाथ तारा को छूते हैं। तो तारा अपने को नलिन की भुजाओं में खिंच जाने देती है। नलिन उसे बाँहों में लिपटता है, नलिन के उष्ण, पिपासु ओठ

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पूर्ति - उषा प्रियंवदा - पृ. 72

उसके ओठों को चूमता है । इसके बाद तारा के अन्तर्मन में एक गहरा सुख होता है क्योंकि जाने-अनजाने वह कुछ ऐसी ही कामना करती थी । पुन: दोनों की मुलाकात होने पर नलिन बाँहें फैला देती और तारा उनमें कुछ ऐसे आ जाती है जैसे दिन-भर का भटका पक्षी, संध्या को अपने नीड़ में आ जाये । "चाँद चलता रहा" कहानी में अरविन्द की काममूलक संवेदना का उल्लेख मिलता है । उसकी बहिन शैला बी. ए में पास होती है । वे लोग बहुत बडी पार्टी देते हैं । पार्टी में अरविन्द की मंगेतर रोहिनी भी शामिल होती है । काफी रात हो जाने पर अरविन्द उसे घर लेता है । बँगला का आधा चक्कर लगाकर वह गाडी पीछे की ओर रोक देता है । वह रोहिनी को उसके कमरे में ले जाता है और दरवाज़ा बन्द करता है । दूसरे ही क्षण वह उसे बाँहों में भर लेता है । रुँधे गले से रोहिनी उसे छोड देने को कहती है । तो अरविन्द का कथन है - "तुम सौदा करोगी रोहिनी, मैं तुम्हारी माँग में सिन्दूर डालूँगा, उसके बदले में तुम मुझे शरीर दोगी । आओ रोहिनी, हम दोनों केवल प्रेमी रहे, बन्धनों से मुक्त ।"[1] कामवासना से अभिभूत अरविन्द रोहिनी के पास जाकर उसके दोनों कन्धों पर हाथ रखता है । उसकी उँगलियाँ रोहिनी के कन्धों में गड़ने लगीं । अरविन्द की आँखों में कामना है, नग्न, अदम्य कामना और उस दृष्टि के सम्मुख रोहिनी निरावरण-सी महसूस करती है ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - चाँद चलता रहा - उषा प्रियंवदा- पृ. 114

"कोई नहीं" की नमिता भी प्रेमी अक्षय के प्रति काममूलक संवेदना रखती है । शादीशुदा होने के बाद भी अक्षय के प्रति नमिता आकर्षित होती है । इसलिए कई सालों के बाद वह बिन्दी लगाती है, हाथों में चूडियाँ डालती हैं । उसके मन में यह भाव गाढा होता है कि वह अच्छी लग रही होगी । अब उसके माथे पर लाल बिन्दी है और बालों में कुन्द का फूल । यदि वह हाथ बढाती तो घने रोओं से ढकी अक्षय की बाँहें छू सकती ।[1] दूसरी ओर अक्षय अचानक उसकी दाहिनी हथेली पकडता है । लेकिन नमिता अपना हाथ छुडा लेती है । उसे इस बात का एहसास है कि वह एक कगार पर खडी है और तनिक-सा भी झटका उसे नीचे अथाह जल में गिरा देगा और फिर कभी वह उससे उबर नहीं पाएगी । अतः अक्षय के स्पर्श से ही नमिता आत्मसमर्पण की स्थिति में आती है । "पिघलती हुई बर्फ" का अक्षय प्रेमिका छबि के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । अक्षय पास चलती छबि को देखता है, लपेटी हुई साडी में उसका पूर्ण यौवन और उन रेखाओं की कमनीयता छिपी नहीं है । अक्षय समझता है कि उसकी त्वचा अत्यन्त कोमल, स्निग्ध और उष्ण है । छबि का चेहरा लंबा है, आँखें शान्त, लेकिन ओंठ अजन्ता के चित्रों की भाँति भरे रहते हैं । छबि में अपना एक विशिष्ट चार्म है । कई सालों के बाद एकाएक अक्षय के अन्दर एक इच्छा जागती है । वह है छबि के उष्ण, स्वर्णिम शरीर को बाँहों में जकडने की तीव्र इच्छा । अक्षय की काममूलक संवेदना की तीव्रता यहाँ द्रष्टव्य है ।[2] पुनर्मिलन के अवसर पर प्रेमिका

---

1. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 56
2. आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काममूलक संवेदना - डॉ. श्रीराम बा. महाजन - पृ. 160

से शारीरिक संबन्ध रखने का आग्रह "चाँदनी में बर्फ पर" का हेम दिखाता है । विवाहित हेम कल्याणी के हाथों को अपने हाथों में लेना चाहता है । पुराना सब कुछ हेम के मन में उमड़ता है और वह कल्याणी को अकेले में पाने के लिए छटपटा उठता है । वह कल्याणी के पास जाता है और उसका हाथ छूता है । लेकिन कल्याणी झिझक जाती है । "टूटे हुए" के भास्कर भी इस काममूलक संवेदना से मुक्त नहीं । इसलिए वह प्रोफेसर कृष्णमूर्ति की पत्नी टीटी के शारीरिक सौंदर्य पर मुग्ध होता है और वह हल्के से झटके से पाता है कि उसकी ब्लाउज़ का गला पीछे से इतना खुला है कि उसके दाहिने कन्धे की उभरी हड्डी तक अनावृत है । भास्कर हमेशा टीटी की उपस्थिति से सजग रहता है । इसलिए उसे अनुभव होता है कि उसकी जीभ की नोक पर टीटी की त्वचा का खरापन जीवित है । टीटी की नौकरानी इलेन के फार्म के मकान में भास्कर टीटी से संभोग करता है । उसके बाद भास्कर उस दिन की प्रतीक्षा में रहता है जिस दिन दोनों का शारीरिक संबन्ध हो जाये । एक शुक्रवार से दूसरे शुक्रवार तक के अन्तराल को भास्कर विचित्र उत्कण्ठा से काटता है स्वप्नलीन व्यक्ति की तरह क्रिया-आलाप में मग्न होकर । प्रतिदिन के सब काम करते हुए भास्कर के अन्दर असीम सुख की, गहन तुष्टि की मन्द-मन्द आँच बलती रहती है और उसी से लिपटी एक अनुभूत खालीपन, शून्य की भावना भी ।[1] यदि वह टीटी को छू नहीं सकता, पकड़ नहीं पाता तो वह उदास हो जाता है । इस प्रकार इलेन के छोटा-सा अतिथि-

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 144

रूम में भास्कर संपूर्णता से टीटी को पाता है । पति और बच्चों के होते हुए भी "कितना बड़ा झूठ" की किरन, मैक्स से आकर्षित हो जाती है । छुट्टी के बाद घर लौटते वक्त किरण की पहली अनुभूति केवल गहरी निराशा की है, मैक्स के स्पर्श से वंचित रह जाने की । तीन-चार दिन से किरन का शरीर तप रहा है । यात्रा-भर बैठी-बैठी किरन उन आनेवाले घंटों ~~[illegible]~~ के बारे में सोचती है । उसके होंठों के कोने बार-बार मुस्कुराहट से काँपते हैं । अतः कुछ दिन मैक्स से शारीरिक संबन्ध रख न सकने के कारण उसकी कामेच्छा अतृप्त रहती है ।

निष्कर्ष

स्वतन्त्रता-पूर्व समाज में नारी की स्थिति अधिक शोचनीय थी । लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से सामाजिक मान्यताओं में बदलाव आया । फलतः नारी के अस्तित्व और व्यक्तित्व को स्वीकृति मिली । हिन्दी के कथाकारों ने सामाजिक और पारिवारिक परिवेशों में नारी मन के विभिन्न पहलुओं और अन्तर्मन के भावों का अंकन किया । उषा प्रियंवदा ने अपने कथा साहित्य में स्त्री पुरुष-संबन्ध के बदलते दृष्टिकोणों पर प्रकाश डाला है ।

तीसरा अध्याय

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिकता का स्वरूप

आधुनिक युग नैतिक संक्रमण का काल है । प्रगति के पथ पर अग्रसर होनेवाले इस युग में पुराने जीवनदर्शों और जीवन-रीति के स्थान पर नये नये आदर्शों और जीवन-प्रणाली का विकास हुआ है । तर्क और बुद्धिवाद के आधार पर नैतिकता को परखने का प्रयास वर्तमान युग की विशेषता है । इसलिए पुराने नैतिक विश्वासों में धीरे-धीरे परिवर्तन होता है । परंपरा का विरोध एवं बदलते सामाजिक मूल्य जीवन में एक नयी नैतिकता लाये हैं । मानव के नैतिक विकास में क्रमबद्धता नहीं है । कभी कभी अनैतिकता को स्वीकार करने के लिए वह बाध्य हो जाता है । इस स्वीकृति के पीछे उसकी व्याकुलता ही काम करती है । याने मानवीय व्याकुलता के फलस्वरूप आधुनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिकता का आग्रह बढता रहता है । इन बदलते जीवन मूल्यों को स्वतन्त्रता परवर्ती साहित्य में देख सकते हैं । साहित्य जगत् में भी नयी नयी प्रवृत्तियों और प्रयोगों का आविर्भाव हुआ । हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है ।

नैतिकता के विभिन्न रूप

जिस नैतिकता को समस्त मानव के हित की चिन्ता है, वह सार्वभौम नैतिकता है, मूल नैतिकता है । संसार भर के सभी जीवनादर्श इस मूल नैतिकता के अन्दर समाहित होते हैं । यही नैतिकता दूसरों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना, सेवा करना और दूसरों के कल्याण के लिए अपने क्षुद्र स्वार्थों का बलिदान करना आदि सिखाती है । परवर्ती

पीढ़ी भी इसी जीवनादर्श से प्रेरित होती है । इसके अन्दर सच्चाई, क्षतिपूर्ति, कृतज्ञता, उदारता, अहिंसा और आत्मोन्नति आती हैं । ये मूल नैतिकता के आधार हैं । सामाजिक नैतिकता का उद्देश्य सामाजिक जीवन को सुदृढ़ बनाना है । मूल नैतिकता परिस्थिति निरपेक्ष है और सामाजिक नैतिकता परिस्थिति सापेक्ष है । सामाजिक नैतिकता के दबाव से व्यक्ति समाज में व्यवहृत नियमों का पालन करने के लिए बाध्य हो जाता है । सामाजिक नैतिकता समाज की प्राणियों की इच्छाओं, संवेदनाओं, आवश्यकताओं और अभिरुचियों को प्रभावित करती है । समाज को सुदृढ़ बनाने के लिए इसके हर व्यक्ति के मन में नैतिकता होनी चाहिए । यह व्यक्ति का अपना जीवन-दर्शन कहा जा सकता है । यही वैयक्तिक नैतिकता है । "जब व्यक्ति सामाजिक रीति का दास होने के बजाय स्वयं प्रेरणा से तथा भले बुरे का स्वयं निर्णय कर आचरण करने लगता है तब उसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास की झलक दिखाई देती है ।"[1] वैयक्तिक नैतिकता इस स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास पर आधारित है । इसलिए वह अपनी सुविधानुसार सामाजिक आचार पद्धतियों में परिवर्तन लाता है । तब सामाजिक नैतिकता और वैयक्तिक नैतिकता के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है । समाज की व्यवस्था के लिए व्यक्ति और समाज के संबन्धों का सही निर्देशन होना चाहिए ।

साहित्य और नैतिकता

नैतिकता का लक्ष्य मानव जीवन में सामंजस्य स्थापित करना है । साहित्य मानव की सद् भावनाओं को जगाकर उसे ठीक

---

1. Society an Introductory Analysis - R.M.Maciver, Charles H. Page - p.50.

रास्ते पर आगे बढाने की प्रेरणा देता है । मानव-चेतना का विकास तथा मानव की सहानुभूति का विस्तार साहित्य का सर्वोपरि गुण है ।[1] मनुष्य जीवन के खास पहलुओं को चित्रित करते समय साहित्यकार के नैतिक चिन्तन के साथ सामाजिक जीवन मूल्यों का गहरा संबन्ध होगा । लेकिन सामाजिक मूल्यों का यथावत् पूर्णतः पालन सर्वदा संभव नहीं क्योंकि ये युगीन परिस्थितियों द्वारा संचालित है । फलतः प्रत्येक युग के जीवन दर्शन और जीवन मूल्यों में भिन्नता आ जाती है । व्यक्ति के स्वार्थ या व्यक्तिवादिता की वजह से आज मूल्य संकट उपस्थित होता है । साहित्य इस मूल्य-संकट को ग्रहण करता है और नवीन मूल्यों के ज़रिए समाज को गतिमान बनाता है । इसके लिए साहित्य परंपरा के प्रति विद्रोह करता है । आधुनिक युग विघटन का युग बन गया है । इस युग का व्यक्ति, परिवार और समाज नयी शिक्षा, नये दबाव से टूट जाता है । यान्त्रिकता से युक्त समाज ही उसका सर्वस्व बनता है । इसलिए डॉ. विद्यानिवास मिश्र कहते हैं - "आज का वास्तविक संकट यंत्र के आविष्कार की तेजी का संकट नहीं बल्कि मनुष्य के विवेक के पराभव का संकट है । मनुष्य जब यह नहीं सोच पाता कि नया यंत्र क्यों और किसके लिए बनाया जा सकता है, तो उसके सामने यंत्र साधन न रहकर साध्य बन जाता है और यंत्र के साध्य होते ही मनुष्य "स्व" से एकदम कटने लगता है । धीरे धीरे ऐसी स्थिति आ जाती है कि आदमी यंत्र जगत् को ही अपना "स्व" मानने लगता है ।"[2] इस युग में व्यक्ति न तो मूल्यों को पूरी तरह से छोड देता है, न पूर्ण रूप से स्वीकार करता है । आधुनिक युग के

---

1. **Literature and Life - Maxim Gorkey - P.91.**
2. परंपरा बंधन नहीं - डॉ. विद्यानिवास मिश्र - पृ. 69

साहित्य की स्थिति भी यही है । व्यक्ति की इस हालत का प्रमुख कारण बदलता परिवेश ही है । उसे अपने जीवन की क्षणिकता, अस्तित्व का बोध और निरर्थकता का एहसास हुआ । धर्मवीर भारती की राय में "मनुष्य पहले जिन धर्मग्रंथों में प्रणीत नियमों या आचार विधानों को अंतरात्मा की आधार-भूमि मानता था, वे धीरे-धीरे निरर्थक सिद्ध हो चुके थे । मानवतावाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अधिनायक न मानकर मनुष्यों को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी ।"[1]

मूल्य-संकट के अवसर पर साहित्यकार का दायित्व बढ जाता है । ऐसी स्थिति में उसे अधिक जागरूक रहना चाहिए । उसे समन्वय की नीति को अपनाना चाहिए । साथ ही जनता को नये विचार, नये चिन्तन और नये भाव से जोड देना चाहिए ।[2] साहित्य में वह आदर्श मूल्यों के साथ साथ भौतिक मूल्यों की आवश्यकता पर भी बल देता है । जब आदर्श और भौतिक मूल्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है तब यथार्थ रूप का जन्म होता है । यथार्थ मूल्यों का अंकन करके मानव-मूल्यों की स्थापना करने में ही साहित्यकार की श्रेष्ठता छिपी हुई है । मुक्तिबोध के शब्दों में "जीवन में जो कुछ अर्जित है - जो कुछ संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना के रूप में प्राप्त है अर्थात् जो कुछ विशिष्ट अनुभव है और जीवन और जगत् संबन्धी जो

---

1. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - पृ. 20-21
2. साठोत्तर हिन्दी कहानी - डॉ. वासुदेव शर्मा - पृ. 10

कुछ आत्मकृत सामान्यीकरण है, जो भी जीवन-मूल्य आत्मसात किये हैं और जिनके लिए संघर्ष किया है, जो संस्कार, जो आदर्श, जो यथार्थ हृदय का अनन्य अंग बन गया है, यह सबका सब स्थिर रूप में व्यक्तित्व का अंग होता है ।"[1] अतः मूल्य सामाजिक अनुभूति पर आधारित मान्यताओं के साथ साथ साहित्यकार के भीतर विद्यमान संस्कारों की परंपरा भी है । देश की बढ़ती जनसंख्या, शिक्षा और औद्योगिक विकास की वजह से मूल्य-संक्रान्ति और भी बढ़ जाती है । मात्र सामाजिक मूल्यों में नहीं, बल्कि वैयक्तिक मूल्यों में भी परिवर्तन होता है । "बदले हुए सामाजिक संबन्धों के फलस्वरूप जब विराट जनता में नये जीवन मान और जीवनादर्शों को स्थापित करने की उद्विग्नता होती है और जब उन्हीं के प्रतिनिधि स्वरूप मानवतावादी दार्शनिक, कलाकार, धर्मगुरु या अन्वेषक समाज के उपेक्षित अथवा नये तत्वों की ओर ध्यान देते हैं और मानव समाज की आवश्यकताओं को समझते हैं तो नये मूल्यों की सृष्टि होती है ।"[2]

हिन्दी कथा-साहित्य और नैतिकता

स्वातन्त्र्योत्तर युग में टूटते परिवेश और टूटते मानव मन को अनावृत करने का प्रयत्न हुआ है । यह कार्य आदर्श की सीमा नहीं तोड़ता । साठोत्तर युग के कथा-साहित्य में जीवन के नये आयाम प्राप्त होते हैं । आदर्श की सीमा तोड़कर आज के कथा-साहित्य में यथार्थ जीवन का अंकन होता है । आधुनिक मानव वैयक्तिक दृष्टिकोण और

---

1. आलोचना - अप्रैल - जून, 1968, पृ. 6-7
2. सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन - डॉ. रमेश कुन्तल मेघ - पृ. 34

अस्तित्व की खोज करता है । नये संबन्धों और वैयक्तिक मूल्यों का अंकन राजेन्द्र यादव के कथासाहित्य की विशेषताएँ हैं । उन्होंने वैयक्तिक प्रेम के साथ ही नारी-पुरुष के नये संबन्ध, अकेलापन, संत्रास, भय, मृत्यु, परिवार-सदस्यों के बीच उपजती विद्रूपताओं को व्यक्त किया है । परंपरा को इस प्रकार नकारना केवल समयगत बदलाव नहीं बल्कि एक मूल्य है । "आज के युग में जीवन बदला है जैसे अनेक कालों में बदलता आया है किन्तु आज के जीवन का आधुनिक होना केवल नयी परिस्थितियों और वातावरण में नया होना नहीं है, वरन् अनिवार्य भाव से उन अनेक विश्वासों, मूल्यों और भाव-बोधों को छोडना है जो सामन्तवाद या मध्यकाल की उपज थे और उस चेतना की स्वीकृति हैं जो विज्ञान काल की देन हैं ।"[1] कमलेश्वर के कथा साहित्य में भी वैयक्तिकता की प्रधानता है । इनके कथा साहित्य में अंकित व्यक्ति कभी कभी टूट जाता है, आर्थिक संकट से ग्रस्त होता है । दिशाभ्रमित यह व्यक्ति अस्मिता की खोज करता है । वह नई दिशा ढूँढता है । कमलेश्वर ने प्रेम विवाह, नये संबन्धों की खोज और वैयक्तिक प्रेम को स्वीकार किया है । वैयक्तिक जीवन के आधार पर नये संदर्भों की तलाश मोहन राकेश के कथासाहित्य की विशेषता है । इनमें अन्तर्द्वन्द्व है, मन-मुटाव का अंकन है । साथ ही पति-पत्नी संबन्धों में नवीन स्वर को भी उन्होंने वाणी दी है । यह संबन्ध अधिक तीव्र और विस्फोटक रूप में मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में उपलब्ध है । व्यक्ति चेतना की वजह से आधुनिक मानव में अहं की भावना पैदा होती है । वह पुरानी भावभूमि से हटकर जीने का प्रयत्न करता है । आज का बुद्धिजीवि व्यक्ति अपने विश्वासों और क्रिया-कलापों में अधिक

---

1. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि - डॉ. रामदरश मिश्र - पृ. 164

जिज्ञासु है । ठोस आधार के बिना वह किसी तत्व को स्वीकार नहीं करता । अनुसन्धान के बिना सामाजिक धारणाओं को वह मानता नहीं । व्यक्ति की इस बौद्धिकता की वजह से आज अजनबीपन, अलगाव, अपरिचय बढता जा रहा है । टूटते व्यक्ति मन को मन्नू भण्डारी, सुरेश सिन्हा, धर्मवीर भारती, जैसे कथाकारों ने रेखांकित किया है । पारिवारिक टूटन और अजनबीपन को कृष्णा सोबती ने वाणी दी है । उपर्युक्त कथाकारों ने सामाजिक संदर्भों में इस परिवर्तन को उभारा है । "सामाजिक संदर्भ में टूटकर अलग होने की प्रक्रिया और उसके स्थान पर नवीन चेतना से प्रस्थापित होने के संघर्ष की इन्हीं दोहरी स्थितियों में कथाकार ने अपना वस्तुतत्य खोजा और कहा है ।"[1] साठोत्तर युग में नारी का सशक्त व्यक्तित्व नैतिक बन्धनों को तोडता है । वह शील, पतिव्रत, शारीरिक पवित्रता के बन्धन को दकियानूसी का नाम देती है । परिवार से दूर होने की तीव्र कामना ने उसे अजनबी बनाया है । जीवन मूल्यों और आदर्शों के प्रति अनास्था भाव को निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी, मोहन राकेश ने कथा का विषय बनाया है । इस समय की "कहानी की अनुभूति और समय का क्षेत्र सिमट गया है और दोनों जगहों पर वह वर्तमान और केवल वर्तमान की कहानी रह गयी है ।"[2] विदेशी सभ्यता से प्रभावित जीवन को निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव वैद, रामकुमार ने महत्व दिया है । नये परिवेश का अंग बनने का प्रयत्न करने पर भी निर्मल वर्मा और कृष्णबलदेव वैद के पात्र प्रवासी भारतीय मानसिकता से ओतप्रोत है । इन पात्रों की नस नस में भारतीयता व्याप्त है । उसे वे फेंक न सकते ।

---

1. सामाजिक गतिशीलता और आधुनिक कहानी - कपिल कुमार तिवारी - कल्पना - दिसंबर 76 - पृ. 53
2. एक दुनिया समानान्तर - राजेन्द्र यादव - पृ. 63

इसलिए इन पात्रों के मन में एक घुटन पैदा होता है । समाज में एक से अधिक पुरुषों के साथ यौन संबन्ध हमारी नैतिकता को चोट पहुँचाता है । मन्नू भण्डारी इसकी ओर संकेत देती हैं । पति-पत्नी के बीच से मूल्य संक्रमण की स्थिति गुज़रती है । यह महानगर के पारिवारिक जीवन की स्थिति नहीं, कस्बे और गाँव के परिवार भी इसकी चपेट से मुक्त नहीं । आधुनिक युग में नारी को सेक्स संबन्धी अधिक सुरक्षा मिली । फलतः नैतिकता की मान्यताओं की टूटन अधिक तेज़ी से होती है । नये युग के नैतिक प्रतिमान सामाजिक नहीं रह गये हैं बल्कि व्यक्तिगत हैं । वह स्वहित और कल्याण को प्रथम स्थान देता है । वह परहित, समाज सेवा, मित्रता, बन्धुत्व, मानवता जैसे मूल्यों के बारे में सोचने का प्रयत्न नहीं करता । आत्मपरक होने पर परिवार और समाज के आदर्शों को चोट लगती । इतना ही नहीं, व्यक्ति अपने आपको खो बैठता है । समाज और परिवार जनित नैतिक मूल्य, नये दृष्टिकोण, नयी धारणाओं के पीछे व्यक्ति चेतना ही काम करती है ।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में अंकित नैतिक समस्याएँ

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद समाज में उत्पन्न नैतिक मूल्य-परिवर्तन ने साठोत्तर युग तक सजीव रूप धारण कर लिया । कारण यह है कि आधुनिक युग का यान्त्रिक जीवन मनुष्य को विद्रोहात्मकता की भावना देता है । इसलिए सारी परंपराओं और कुरीतियों के आगे प्रश्नचिह्न लगाने के लिए मानव तैयार होकर खडा है । उषा प्रियंवदा अपनी रचनाओं में यह कार्य बदलते परिवेश में नारी जीवन के बहुमुखी संदर्भों में कराती हैं ।

संयुक्त परिवार विघटन

आधुनिक युग की शिक्षित नारी व्यक्तित्व-स्वातन्त्र्य के लिए लडती रहती है । इस लडाई में समाज द्वारा अंगीकृत नैतिकता उसको स्वीकार्य नहीं । इसलिए व्यवहृत नैतिक मूल्यों की श्रृंखला तोडने के लिए वह तैयार हो जाती है । इस तरह की समस्याओं में मुख्य है संयुक्त परिवार विघटन । "रुकोगी नहीं राधिका" का परिवार-विघटन परस्पर संबन्धों के तनाव और भावात्मक एकता के अभाव की परिणति है । इस दूरी की वजह से विदेश से लौटते वक्त राधिका सोचती है कि "अपने भावों का औरों के सम्मुख प्रदर्शन करने में पूरे परिवार को ही झिझक है । इसलिए शायद राधिका को गले से लगाकर कोई न भींचे ।"[1] जवान होने पर राधिका का भाई शादी करके ससुराल रहता है । पिता और बहन से मिल-जुलकर रहने के लिए वह तैयार नहीं । सौतेली माँ विद्या के आगमन से परिवार विघटन पूर्ण हो जाता है । पिता से प्रतिशोध लेने के लिए राधिका भी घर छोडकर चली जाती है । पुराने ज़माने में बेटी पिता की आज्ञाओं का पालन करती थी और सौतेली माँ की पीडाओं को सहन करती थी । लेकिन नये युग में इन आचार-पद्धतियों में बदलाव आया । बेटी से याचना करने पर भी पिता के साथ रहने को वह तैयार नहीं । "पापा से जब भी वह नाराज़ होती, राधिका घर छोडकर भाग जाने की धमकी देती । वह मौसी के पास चली जायेगी, बड दा के होस्टल, पर वह कभी कभी पापा के पास नहीं रहेगी । अलमारी के नीचे से वह अपनी अटैची निकालती और उसे

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 11

पैक करने लगती ।"[1] नये जीवन मूल्य उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व, अहं के भाव का पोषण करते हैं । वह जीवन में बनते बिगड़ते संबन्धों का आकलन करके नैतिक मान्यताओं को चुनौती देती है । आदर्श और स्नेही माँ का स्वरूप प्रस्तुत करने पर भी राधिका विधा से नफरत करती है । विधा के साथ रहने का निर्देश राधिका स्वीकार नहीं करती और विधा से खीज और रुलाई भरे स्वर में कहती है -"आप बेकार ही अपना समय बर्बाद कर रही है ।"[2] आधुनिक युग में अपने सगे-संबन्धियों से दूर अकेला जीवन व्यतीत करने के लिए मानव उत्सुक है । फलस्वरूप एकला परिवारों का उदय हुआ । इतना ही नहीं, परिवार के सदस्यों के बीच अब कोई आत्मीय संबन्ध नहीं । उषा प्रियंवदा "वापसी" कहानी द्वारा नये पारिवारिक मूल्यों को उजागर कर देती हैं । रिटायर होने पर गजाधर बाबू इसी समय की कल्पना करता है जब वह अपने परिवारकेसभी सदस्यों के साथ रह सकेगा । लेकिन उसकी उपस्थिति "उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी जैसे सजी सजाई बैठक में बान की चारपाई ।"[3] गजाधर बाबू को उसकी पत्नी सूचना देती है कि अमर अलग रहने की सोच में है । अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत हैं । उसका कहना है कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पडा रहता है, कोई आने-जानेवाला हो तो कहीं बैठाने की जगह नहीं । अमर की राय में उसे अब भी पिता छोटा बच्चा-सा समझता है और मौके-बेमौके टोक देता है । बहू को काम करना पडता है और सास जब-जब फूहडपन पर ताने देती रहती है । वृद्ध पिता की बातें वे मानते नहीं । फलतः परिवार - विघटन चाहते हैं ।[4] सच है कि

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 44
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 45
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 140

"परंपरागत सामाजिक मूल्यों का बडी तेज़ी से विघटन हुआ है । व्यक्ति के संबन्धों में एक अनाम तलखी आयी है । जीवन जटिल हुआ है और आर्थिक विषन्नता ने भी व्यक्ति के परंपरागत संबन्धों की कमर तोडी है ।"[1]

पति-पत्नी संबन्ध

साठोत्तर युग के पति-पत्नी संबन्धों में त्याग और बलिदान का कोई स्थान नहीं । अहं की तुष्टि के लिए शादी के बाद भी पति और पत्नी प्रेमी-प्रेमिका की भूमिका निबाहने में तत्पर रहते हैं । दोनों के बीच एकनिष्ठता का भाव अप्रत्यक्ष हो जाता है । उषा प्रियंवदा की "कितना बडा झूठ", "स्वीकृति", "प्रतिध्वनियाँ", "ट्रिप" जैसी कहानियाँ इस बात को प्रामाणित करती हैं । "कितना बडा झूठ" की किरन के जीवन की सन्तुष्टि मैक्स से शारीरिक संबन्ध रखने में निहित है । पत्नी और माँ का पद सम्हालते हुए किसी अन्य पुरुष से संबन्ध स्थापित करने में नैतिकता का ह्रास लक्षित होता है । भारतीय परंपरा के अनुसार पति के प्रति पूर्णत: प्रतिश्रुत रहना ही पत्नी के लिए उचित है । अन्यथा समाज उसके आचरण को नैतिक नहीं मानता । पति से छिपाकर मैक्स से किरन का प्रेम अनैतिक ही है क्योंकि वह पति को धोखा देती है । "आज पति-पत्नी दोनों ही एक-दूसरे से अनेक अपेक्षाएँ रखते हैं । दोनों एक-दूसरे से भी तथा अपने दाम्पत्य जीवन से भी विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति की अपेक्षा रखते हैं ।"[2] "स्वीकृति" की जया अपनी भावनाओं को

---

1. वातायन - जनवरी 66 - पृ. 26-27- होतीलाल भारद्वाज, सुरेन्द्र तेठ
2. भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ - डॉ. प्रमिला कपूर - पृ. 11-12

अंगीकार न मिलने पर ही वाल से संबन्ध स्थापित करती है । वाल और जपा का संबन्ध भी नैतिक नहीं, क्योंकि जपा सत्य की पत्नी है । सत्य में जितनी ही कमियाँ हो, जपा को उसे उन कमियों के साथ स्वीकार करना चाहिए । सत्य एक आदर्श पति का रूप रखता है । इसलिए "जब भी जपा कुछ ऐसा आचरण करती है जिससे कि सत्य की इच्छाओं की जान-बूझकर अवमानना झलकती है, तो सत्य का व्यवहार उसके प्रति अत्यन्त मधुर हो आता है, जैसे वह रूठे बच्चे को मना रहा हो, खिलौने देकर उसका क्रोध शान्त कर रहा हो ।"[1] लेकिन जपा को वाल का व्यक्तित्व मूल्यवान है और वह समझती है कि उस व्यक्तित्व के आगे वह अपनी भावनाओं, विचारों और अपने आचरण पर पडे सभी आवरणों को एक झटके से उतारकर फेंक सकती । "प्रतिध्वनियाँ" की वसु की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं । स्वदेश और स्वजनों को छोडकर वह विदेशी पुरुष डॉ. जूलियन से संबन्ध रखती है । स्त्री की नैतिक दृष्टि में इतना बदलाव आया कि पति को अपने अनैतिक संबन्ध की सूचना देने से वह हिचकती नहीं । प्रस्तुत कहानी में नारी के खुले आचरण की सूचना भी है - "वे उँगलियाँ उसके गले को छू रही हैं, जैसे याद कर रही हो, कि वे सब दाग कहाँ हैं । गले पर, बाँहों में, कलाइयों पर, फिर हल्के से उसके उदर को - चीरे के निशान की लंबाई में ।"[2] पति की अनुमति से किसी दूसरे पुरुष से संबन्ध रखनेवाली सोनी का चित्र "ट्रिप" में अंकित है । अन्य पुरुषों से संबन्ध होते हुए भी सोनी का पति उसे पत्नी के रूप में रखता है । उसकी शर्तें केवल यही है - "एक वह अपने

---

1. कितना बडा झूठ - स्वीकृति - उषा प्रियंवदा - पृ. 96
2. कितना बडा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 43

अफेयर चुपचाप कन्डक्ट करेगी, दूसरे, इस आयु में वह नए बच्चे की जिम्मेदारी नहीं लेंगे, इसका वह ध्यान रखेगी ।"[1] पति-पत्नी के बदलते मनोभाव की वजह से दाम्पत्य जीवन में दरारें पड जाती हैं । उन्मुक्त सेक्स जीवन की कामना ऐसे जीवन मूल्यों की तृष्टि करती है । "टूटे हुए" की पत्नी पहले सन्तान की शारीरिक अस्वास्थ्य के लिए पति को दोषी ठहराती है । इसलिए वह पुनः पति से शारीरिक संबन्ध रखना नहीं चाहती । इस वेदना से बचने के लिए वह अन्य पुरुषों से संबन्ध स्थापित करती है और अपनी भावनाओं की पूर्ति करती है । पति से उसका कोई लगाव नहीं, इसलिए वह भास्कर से कहती है - "मुझे प्रोफ्तर के पेपर में कोई रुचि नहीं है । तुम चलोगे तो तुम्हें शहर घुमाने में दो दिन बीत जाएँगे ।"[2] वैवाहिक संबन्ध में पर-पुरुष का प्रवेश बदलते मूल्यों का अच्छा दस्तावेज़ है ।

प्रवासी भारतीय मानसिकता

शिक्षा प्राप्त आज की नारी अपनी चिन्ताओं में अधिक प्रगतिशील है । इसलिए आर्थिक दृष्टि से चाहे वह स्वावलंबी हो या न हो, स्वेच्छा को वह पहला स्थान देती है । भारतीय परिवेश में पली नारी विदेशी संस्कृति के बीच पड जाने पर वहाँ का जीवन पूर्णतः अपनाने में असफल हो जाती है । अपरिचित देश में वह कभी टूट जाती

---

1. कितना बडा झूठ - ट्रिप - उषा प्रियंवदा - पृ. 61
2. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 137

है, कभी दूसरों से बंध जाती है । लेकिन उषा प्रियंवदा के अधिकांश नारी पात्र अपने देश की संस्कृति के आसपास रहते हैं । इस प्रकार की प्रवासी मानसिकता की वजह से संस्कृतिगत संघर्ष उत्पन्न होता है । इस संघर्ष में पिसनेवाली नारियों को उषा प्रियंवदा अपने कथा साहित्य में मुख्यतः ग्रहण करती हैं ।

विदेशी वातावरण में घुटते नारी पात्र

विदेशी परिवेश से न जुड पाने के कारण आज की नारियों के मन में घुटन पैदा होता है । "रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका का अपनी आयु के प्रत्येक विद्यार्थी की तरह विदेश भ्रमण का एक स्वप्न है । डैन के साथ वहाँ पहूँचने पर राधिका के मन पर से, जो कुछ छोडकर आयी थी, सबकी स्मृति मिट जाती है । बल्कि डैन के छोड जाने के बाद राधिका अपरिचित वातावरण में घुटती रहती है । इसलिए वह एक क्षण को भी सोचती नहीं कि वह भारत सदा के लिए छोड देगी । वह अपने आप से पूछती है - "जोकि अपना है, अपने सारे जीवन का संदर्भ, उससे अलग कटकर, कोई कितने दिन सन्तुष्ट रह सकता है ?"[1] वैसे तारों-भरा नीला आकाश तो वहाँ भी है, फूल खिलते हैं, बर्फ पिघलती है, झील के जल में इमारतों की परछाइयाँ काँपती हैं, और हल्के हल्के अँधेरे में प्रेमी हाथों - में - हाथ लिए घूमते हैं । यह सब सुन्दर है ।[2] फिर भी शरीर यन्त्रवत् चलता रहता है और

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 14
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 14

राधिका इतना थक जाती है कि रात में बिस्तर पर लेटते ही नींद आ जाती है । राधिका पहले कारिन, जीन, लॉरेन्त के देश में रह चुकी है, अब वह उस स्नेह रज्जू को काट फेंकने के लिए छटपटा उठती है । डैन से अलग होने के बाद राधिका अकेली हो जाती है । राधिका मनीश से कहती है - "मुझे संस्कृत की सहायक शिक्षिका की नौकरी मिल गयी । वहीं से मैं ने एम.ए. कर लिया । फिर एकाएक वहाँ इतना त्रासदायक लगने लगा कि मैं ने सोचा कि जब तक मैं भारत न लौटूँगी, शान्ति न मिलेगी ।"[1] विदेशी मित्र रौडनी मूर भारतीय नैतिकता का परामर्श करते वक्त राधिका दृढता से जवाब देती है -"वैसे हर देश में ऐसी बुराइयाँ ढूँढने से मिल जाती हैं । शिकागो का पुअर सेक्शन आपने देखा ही होगा, वहाँ स्कूलों और कॉलेजों में नैतिकता का जो स्तर है वह भी आपको मालूम ही है ।"[2] अपरिचित देश में रहते समय राधिका को "अक्सर टामस-वुल्फ की उस नाबेल का शीर्षक याद आता रहता है । "तुम घर वापस नहीं जा सकते ।" कुछ अजीब ही किस्म की हो गयी हूँ, न वहाँ सुखी थी न यहाँ ।"[3] परदेश में रहते समय दर्द अनुभवों का निचोड राधिका को सताता है । कारिन, जीन, लॉरेन्त को देखकर राधिका समझती है कि "वह उनके देश में रह चुकी थी, पर वह उसका भाग कभी न बन सकेगी, यह बोध उसे जब हुआ था, वह उस स्नेहरज्जू को काट फेंकने के लिए छटपटा उठी थी ।"[4] "शेष यात्रा" की अनुका सीधी सादी भारतीय

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 83
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 94-95
3. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 83
4. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 90

युवती है । पति के साथ अपरिचित देश में पैर रखते ही उसे सबकुछ अजीब-सा लगता है । पाश्चात्य सभ्यता की औपचारिकता के मध्य वह सब कुछ ऐसे देखती रहती कि वह इस दृश्य का केन्द्र नहीं, मात्र दर्शक हो । विदेशी संस्कृति से मिल-जुल रहने का प्रयत्न करने पर भी स्वदेश की यादें उसे सताती रहती हैं । वह सोचती है -"छोटी मामी के दिन कितनी आसानी से बीत जाते थे - सुबह से नाश्ता-पानी, जो उनकी ज़िम्मेदारी थी, दूध औटाना, फिर हरेक के लिए चाय, नाश्ते के लिए आलू-पूरी, या हलवा मठरी, या बैंगन-पराठा यह सब करके वह सारे दिन के लिए खाली हो जाती थी और चारपाई पर लेटकर उपन्यास पढा करती थी । कोई पास-पड़ोस से आ गया तो उससे बातचीत कर ली । शाम को मामा आने के बाद ज़्यादातर घर ही रहते थे । सीधा-सादा, सरल-सपाट जीवन ।"[1]

"मछलियाँ" की विजी मानवीय संबन्धों का मूल्य न समझकर, स्वजनों को छोडते हुए परिवर्तित नैतिकता की ओर इशारा करती है । प्रेमी के बुलावे पर माँ के गहने बिकवाकर विदेश जाने में नैतिकता नहीं क्योंकि घरवालों को वह इसकी सूचना नहीं देती । परिवार से विजी का जो संबन्ध है वह एक क्षण में ही टूट जाता है । इसलिए विजी कहती है - "इतना लड-भिडकर इतने गर्व के साथ चली आई थी । यह किस मुख से लिखती कि शादी टूट गई, मनीश का जी मुझसे भर गया था ।"[2] वाशिंगटन में विजी एक घुटन भरी ज़िन्दगी बिताती है ।

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 39
2. कितना बडा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 102

मनीश के तिरस्कार के बाद वह सधैर्य जीवन का सामना करने का प्रयत्न करती है । लेकिन सफल नहीं हो पाती । इसलिए वह कहती है -"कितना चाहती हूँ कि दृढ बनूँ, पर फिर न जाने क्यों बहुत दुर्बल हो आती हूँ और आँसू नहीं रुकते ।"[1] विजी हर सुबह दैत्याकार मशीनों के शोर से आँखें खुलती है । विजी के घर के पास यूनिवेर्सिटी की एक बडी-सी बिल्डिंग बन रही है । सीमेंट कूटने की मशीन का भारी घरघराना सुनकर उसे लगता है कि ऐसी ही एक मशीन के मध्य आकर वह चूर-चूर होती है । विदेश में रहते समय घर की यादें उसे सताती हैं । वह याद करती है -"पटना में सब कुछ वैसा ही होगा, विमाता का बुदबुदाना, पिता की लंबी चुप्पियाँ या खीझ, झुँझलाहट-भरा स्वर, छोटी बहन का रेडियो के साथ फिल्मी गीत गाना, क्या कभी किसी को उसकी, विजयलक्ष्मी की, कभी भी याद न आती होगी ? इन डढ सालों में कितनी दूर आ गई वह, मुडकर देखने से मन में ऐसा आश्चर्य-सा भर जाता है कि क्या कभी ज़िन्दगी इससे भिन्न भी थी ? अब तो लाइब्रेरी का बेसमेंट है, और किताबों के ऊँचे-ऊँचे ढेर हैं । कभी कभी काम करते हुए कुछ याद आ जाता है, मनीश की बाँहों की कसी जकड़, उसका मुसकराना, और कभी-कभी वह क्रूर शब्द । तब विजी यहाँ से कहीं दूर चली जाना चाहती है, वह जानती है कि वापस लौटना असंभव ही सा है, कहाँ से आयेंगे किराये के पैसे, और किस मुँह से पिता की दोहरी पर जाकर खडी होगी । कहीं और नौकरी कर सकती है, पर जैसे विजी के अन्दर की समस्त शक्ति रिस गई है ।"[2] "स्वीकृति" की जपा विदेश जाना नहीं

---

1. कितना बडा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 105.
2. कितना बडा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

चाहती । पति के हठानुसार वह विदेश जाती है और नौकरी करती है । नये परिवेश में उसे घुटन का अनुभव होता है । पब्लिक लॉ चार सौ अस्सी में आई किताबों की कैटेलौगिंग करते-करते वह थक जाती है । काम खतम करके वह सत्य के पास आना चाहती है और फिर सारी गर्मियाँ मनचाही रीति से बिताना चाहती है । प्रस्तुत उपन्यासों और कहानियों में संस्कृतियों के बीच की टकराहट अंकित है ।

विदेशी परिवेश में आमग्न नारी पात्र

आधुनिक युग की कुछ नारियों को विदेशी परिवेश को छोडना असंभव बात है । "टूटे हुए" की टीटी ऐसी नारी है । वह विदेशी सभ्यता से प्रभावित होने के कारण शादीशुदा होते हुए भी भास्कर से शारीरिक संबन्ध रखती है । वह इसमें डूबे रहने की इच्छा भी दिखाती है । भास्कर के साथ समय काटना चाहती है । इसलिए वह भास्कर से कहती है -"सुनो भास्कर, तुम दो दिन के लिए शिकागो चलेगे ? प्रोफसर एक कान्फरेन्स में जा रहे हैं ।"[1] इस तरह की पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित है "कितना बडा झूठ" की किरन । पति और बच्चों के होते हुए भी वह पर-पुरुष से शारीरिक संबन्ध रखती है । प्रेमी से दूर रहना उसके लिए असंभव है । इसका संकेत कहानी में भी है -"कल ही किरन छुट्टी के बाद लौटी थी, ढाई महीने की छुट्टी के बाद मरोताज़ा, उत्साहित । पिछले पन्द्रह दिनों से रोज़ कई बार घर लौटने की सोचकर खुश हो लेती थी । और घर की याद करते समय, कुर्सी, मेज़ या

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 137

दीवारों का ख्याल नहीं आता । उसने सब प्लान कर लिया था । तीसरे पहर पहुँचेगी, लडकियों को समर कैम्प से लेने पति चले गए होंगे, इसलिए घर खाली होगा, जाते ही वह मैक्स को फोन करेगी ।"[1]
मैक्स से दूर रहना उसे असंभव सा होता है । इसलिए मैक्स और वारिया की शादी का पता चलने पर किरन की आँखें भर आती हैं । वह सोचती है -"हिन्दुस्तानी औरत रोने के अलावा कर ही क्या सकती है । वह न तो जाकर वारिया के बाल ही जड़ से उखाड़ सकती है, न मैक्स की लात, जूतों या गालीगलौज से खबर ले सकती है ।"[2]

भारतीयता पर अनुरक्त नारी पात्र

"सागर पार का संगीत" की देवयानी को विदेश में पारिवारिक सारी सुविधाओं के होते हुए भी भारतीयता से लगाव है । स्नेही पति के सान्निध्य में भी वह इधर-उधर भटकती रहती है और कुछ खोजती रहती है । स्वदेश की यादें उसे तताती रहती हैं । इसलिए कुछ देर काम में मन लगता है फिर उचट जाता है । इस सुख और सम्मान भरे जीवन में देवयानी अक्सर फूट-फूटकर रोती है । उस संदर्भ में वह देवयानी नहीं थी, एक मथती हुई, अवर्णनीय दाहक पीडा की चीत्कार मात्र । कभी कभी देवयानी कुछ खोजती रहती है । औस्कर के पूछने पर वह उत्तर देती है -"पता नहीं औस्कर । रह-रहकर मन अकुलाने लगता है, जी चाहता है कि कपडे उतारकर फेंक दूँ और बन्धन-मुक्त, अनावृता, सागर तट की रेत पर दौडती जाऊँ ।"[3] उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।

---

1. कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - पृ. 46
2. कितना बडा झूठ - उषा प्रियंवदा - पृ. 48
3. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा - पृ. 69

औस्कर की बाँहों में रहते समय भी देवयानी सोचती है कि देवयानी अपनी भारतीयता को अपने व्यक्तित्व से अलग न कर सकी । गुरुद्वारे के भारतीयों के संदर्भ में भी यही प्रश्न है । कैनडावाले इन भारतियों में हरजीत के पास खूब धन है । फिर भी वह भारत लौटना चाहती है । उसकी राय में "यहाँ रहने में कोई इज़्ज़त नहीं । अपने देश में भले ही इतना धन न हो, अपना देश तो है ।"[1]

स्त्री समाज की अन्य नैतिक भूमिकाएँ

अन्य कुछ नारियों के संदर्भ में देशी और विदेशी मानसिकता का प्रश्न नहीं उठता । ऐसी नारियाँ "संबन्ध", "पूर्ति" जैसी कहानियों में चित्रित है । विवाहित पुरुष से संबन्ध रखनेवाली "संबन्ध" की श्यामला मूल्य-परिवर्तनकारी है । वह सर्जन से शाश्वत संबन्ध रखना नहीं चाहती । फिर भी श्यामला अनैतिक काम करती है क्योंकि हमारी सभ्यता ऐसे संबन्ध को नहीं मानती । संबन्धों को रखना या तोडना उसके लिए एक क्रिया मात्र है । इसलिए वह सर्जन से कहती है -"जब भटकन की चाह बढ जाएगी तब वह अपना सूटकेस उठाकर चल देगी ।"[2] जीवन की रिक्तता दूर करने के लिए विवाहित या अविवाहित पुरुष से जुडने के लिए आधुनिक नारी तैयार खडी है । यह मूल्य-च्युति का परिणाम है । वह पुरुष से संबन्ध रखकर जीवन को सार्थक बनाना चाहती है । "पूर्ति" की तारा की स्थिति भी यही है ।

---

1. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा - पृ. 73
2. कितना बडा झूठ - संबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 15

इसलिए वह सोचती है - "अगर उसके सिर पर किसी की छाँह होती, अगर किसी का सहारा होता तो वह पानी की बौछार का भी सामना कर लेती । पर वह अकेली थी और निर्बल भी - इसलिए उसने अपने चारों ओर दीवारें - सी खड़ी कर ली थी, अपने को आहत देने से बचाने के लिए, क्योंकि तारा जीवन को स्वीकार कर चुकी थी । जो कुछ उसे ज़िन्दगी ने दिया था, उसके लिए वह कृतज्ञ थी और जो कुछ उसे न मिल सका था, उसकी हसरत उसने कुशलतापूर्वक दिल में छिपा रखी थी ।"[1] इसलिए वह विवाहित नलिन से संबन्ध स्थापित करती है । नलिन की यादों में जीने से उसका जीवन सुरभित होता है ।

उषा प्रियंवदा की "सागर पार का संगीत" और "चाँदनी में बर्फ पर" जैसी कहानियों में भी अनैतिकता अंकित है । "सागर पार का संगीत" की देवयानी की सगाई प्रकाश के साथ हो चुकी है । ऐसी स्थिति में वह स्वजनों और स्वदेश को छोड़कर विदेशी पुरुष औस्कर के साथ भाग जाती है । माता-पिता बड़ी उमंग से जो विवाह तय करते हैं, उसकी परवाह न करना नैतिकता के विरुद्ध है । देवयानी को कम से कम अपने माँ-बाप को इस प्रेम संबन्ध का पता देना चाहिए । पर-पुरुष के साथ भाग जाना अनैतिक बात ही है । देवयानी सामाजिक मान्यताओं को ठुकरा देती है । "चाँदनी में बर्फ पर" की मीरा शादीशुदा होते हुए भी पियेर से संबन्ध स्थापित करती है । यह सच है कि मीरा एक विदेशी नारी है । एक विदेशी नारी का कई पुरुषों से संबन्ध कोई खास बात नहीं क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता में इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पूर्ति - उषा प्रियंवदा - पृ. 70

लेकिन पियेर के साथ मीरा का संबन्ध अनैतिक है क्योंकि अपना नाम तक बदलकर उसने भारतीय पुरुष हेम से शादी किया था । भारतीय पत्नी को पति के अलावा किसी दूसरे से अवैध संबन्ध नहीं होना चाहिए ।

विदेशी वातावरण में घुटते पुरुष पात्र

उषा प्रियंवदा के कुछ पुरुष पात्र पूर्ण रूप से परिवेश से न जुड पाते । तब उनमें एक घुटन पैदा होता है । "चाँदनी में बर्फ पर" का हेम इसका अच्छा नमूना है । विदेशी परिवेश से एडजस्ट करने में वह असफल हो जाता है । हेम सोचता है कि "आखिर मेरी भारत से परिचित है ।" घरवालों को इसकी सूचना देकर लिखते समय "उसके सामने बरेली का मकान घूम गया - छोटे-छोटे तीन कमरे, पीले रंग का पुता हुआ चौका, बरामदे में मद्धिम रोशनी का बल्ब और फिर परिवार, झुके कन्धोंवाले पुराने काले कोट में कचहरी की ओर जाते वकील पिता, घर की धुली माँ की साड़ी और थकान भरे चेहरे पर सरल वत्सलता और यह पत्र पढकर उसका चेहरा कैसा हो जायेगा, इसका भी पूरा बोध । हेम की शादी का माँ के मन में कितना चाव था । हेम की बड़ी बहन के विवाहोत्सव पर प्रसन्नवदना माँ की याद आयी । गोटे की साड़ी व लंबे बुन्दों में उसका चेहरा कैसा मधुर और सन्तोषपूर्ण लगता था । हेम ने उससे उसका यह चिरसंचित छोटा-सा स्वप्न भी छीन लिया ।" [1] स्वदेश और स्वजनों की याद उसे कभी नहीं छोड़ती । उसके मन की घुटन परिवेश से उत्पन्न है । विदेशी नारी से शादी करने पर भी

---

1. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 115

संस्कृतियों का अन्तर हेम आसानी से समझता है । किन्तु वह अपने जीवन में इसको आत्मसाथ करने में समर्थ नहीं होता । इसलिए हेम समझता है -"प्राय: वे चेहरे आँखों के आगे उभरने लगे थे जिनके बीच पलकर वह बडा हुआ था । कभी कभी रात में आँख खुलने पर लगता कि वह बरेली में अपने कमरे में लेटा है और सुबह होनेवाली है, अभी कुछ ही क्षणों में पिता के खँखराने की आवाज़ सुनायी देगी या अभी कल्याणी की हथेली माथे पर आ टिकेगी । और वह निस्तब्ध लेटा रहता कि कहीं आहट होने पर वह भाग न जाये ।"[1] "टूटे हुए" का प्रो. कृष्णमूर्ति भारत लौटना चाहता है । लेकिन उसकी पत्नी विदेशी परिवेश को छोडना नहीं चाहती । उसे कभी कभी डिप्रेशन आती है । उसके बाद वह सप्ताहों तक मौन रहती है । पति की रुचियों से वह कभी मेल = खाती । वैज्ञानिक पति की सेमिनार और पेपर्स में उसे कोई रुचि नहीं है । ये सभी उसमें एक घुटन पैदा करता है । प्रोफसर की पत्नी टीटी के प्रेमी भास्कर को पता चलता है - "वह दक्षिण प्रदेश के है, प्रख्यात वैज्ञानिक, जब भी भारत जाना चाहते हैं, यहाँ उन्हें अधिक सुविधाओं की व्यवस्था कर रोक लिया जाता है । फिर टीटी भारत नहीं लौटना चाहती ।"[2] पत्नी की ओर से पराया जैसा व्यवहार उसे अधिक दु:ख देता है । तबके सामने पति के निर्देश को मानने के लिए भी वह तैयार नहीं होती । इसलिए वह पति से कहती है - "अगर आप घर ही जाना चाहते हैं तो हम आपको घर उतार देंगे, और फिर मैं इसे लेकर चली जाऊँगी ।"[3] प्रेमी के सामने ऐसा व्यवहार करने पर प्रो. कृष्णमूर्ति को लगता है कि टीटी के लिए भी वह अपरिचित बन जाता है ।

---

1. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 115-116
2. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 127

विदेशी परिवेश में आमग्न पुरुष पात्र

"टूटे हुए" का भास्कर जैसे पुरुष को परदेश छोडना असंभव हो जाता है । एक भारतीय होने पर भी भास्कर उस परिवेश में आमग्न हो जाता है । विदेशी सभ्यता में डूबे रहने की इच्छा भी वह दिखाता है । टीटी से शारीरिक संबन्ध रखने का तीव्र आग्रह उसे कचोटता रहता है । वह हर शुक्रवार की प्रतीक्षा में दिन काटता है । शुक्रवार इलेन की सफ़ाई करने का दिन है । वह उस दिन घर से बाहर रहती है । शुक्रवार को भास्कर का एक भी क्लास नहीं होता । भास्कर कहता है - "एक शुक्रवार से दूसरे शुक्रवार तक के अन्तराल को मैं विचित्र उत्कण्ठा से काटता हूँ स्वप्नलीन व्यक्ति की तरह क्रिया-आलाप में मग्न होकर ।"[1] भास्कर को मालूम है कि टीटी के प्रभाव में उसका चरित्र भी धीरे धीरे विदेशी परिवेश के प्रभाव से ग्रसित होता है । इसलिए वह मन ही मन कह देता है -"मैं अपनी सीमाएँ जान रहा था भारत की एक कन्ज़रवेटिव युनिवर्सिटी का छात्र, कभी "स्मार्ट सेट" का अंग नहीं रहा, अंग्रेज़ी नहीं बोली, कॉफ़ी हाउस में नहीं बैठा, रोमाण्टिक साहित्य नहीं पढा । भाषा-विज्ञान का छात्र हूँ - रूखा नीरस विषय । वह एक प्रमुख प्रोफ़सर की पत्नी है - कटे हुए बाल, ऊँची एड़ी के सैण्डिल, स्मार्ट, कार चलाती है, गर्मी में सेल करती है ।"[2] शारीरिक संबन्ध विदेशी परिवेश में कोई उल्लेखनीय बात नहीं । लेकिन विदेशी और भारतीय सभ्यता के बीच घुटते पात्र और उनके तनाव को लेखिका चतुराई से रेखांकित करती हैं ।

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 144
2. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 124

पुरुष समाज की अन्य नैतिक भूमिकाएँ

उषा प्रियंवदा की कुछ कहानियों में पुरुष वर्ग भी अनैतिकता दिखाती हैं । "कोई नहीं", "टूटे हुए", "कँटीली छाँह", "दृष्टिदोष", "दो अन्धेरे", "संबन्ध" जैसी कहानियों में यह देख सकते । प्रेमिका को छोडकर अपना भविष्य बेहद बनाने के लिए "कोई नहीं" का अक्षय दूसरी नारी से विवाह करता है । अक्षय के छोड जाने पर नन्दिता उकताहट भरा जीवन बिताती है । जिस आस्ट्रियन युवती के लिए अक्षय ने उसे छोडा था उसे भी धोखा देकर वह एक स्विस युवती से शादी करता है । अक्षय के लिए वही नारी महत्वपूर्ण है जिससे अधिक फलप्राप्ति संभव हो । प्रेमिका को धोखा देने का काम अनैतिक ही है क्योंकि ऐसा करने पर उसका जीवन ही बर्बाद हो जाएगा । अक्षय के तिरस्कार से नन्दिता को अत्यधिक आघात हुआ । इसलिए वह कहती है -"अक्षय के फॉरेन सर्विस में जाकर मुझे पीछे छोड देने की कटुता मेरे उन अनगिनत आँसूओं में डूब चुकी है ।"[1] अक्षय की धोखा से आहत नन्दिता की वेदना उसके शब्दों में ही छिपी हुई है । वह कहती है -"नहीं, अक्षय को मैं अब प्यार नहीं करती पिछले सात वर्षों की जो हुई ज़िन्दगी में वह प्यार धीरे-धीरे मर चुका है । मुझे कोई अफ़सोस नहीं है । इस जीवन को मैं ने स्वीकार कर लिया है ।"[2] "टूटे हुए" का भास्कर प्रेमी को धोखा देकर विवाहित तन्त्री से शारीरिक संबन्ध रखता है । वह विदेशी

---

1. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 53
2. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 53

परिवेश में आमग्न पात्र है । भास्कर की प्रेमिका विदेश से अपने प्रेमी के लौटने की प्रतीक्षा करती है । फिर भी जानबूझकर वह तन्त्री से शारीरिक संबन्ध रखता है और उसमें आत्मतोष पाता है । स्वयं भास्कर का कथन है -"उस दिन के बाद, मेरे दिन शुक्रवार की प्रतीक्षा में कटते हैं जो कि इलेन का तफाई करने का दिन है, जबकि वह सारे दिन घर से बाहर रहती है, और जिस दिन मेरा एक भी क्लास नहीं होता ।"[1] अतः प्रेमिका के होते हुए भी वह टीटी से संभोग करने की प्रतीक्षा करके दिन काटता है । "कँटीली छाँह" के जगत बाबू और उसकी पत्नी का दाम्पत्य संबन्ध अच्छा नहीं है । इसलिए जगत् बाबू कंपाऊन्टर की पत्नी राधा से शाररिक संबन्ध स्थापित करता है । मास्टर बाबू का संबन्ध अनैतिक ही है । आखिर पत्नी पत्नी ही है । पत्नी के होते हुए किसी दूसरे से संबन्ध रखना हमारी सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध है । जगत बाबू के इस अनुचित व्यवहार से एक क्षण में ही उसके प्रति सबका आदर नष्ट हो जाता है । इसलिए महराजिन कहती है -"मालिक ने आज सुबह ही मास्टर साहब को परचा लिखकर भेज दिया कि हमारा घर खाली कर दें और बिटिया के लिए दूसरे मास्टर का इन्तज़ाम कर लिया जायेगा ।"[2] "दृष्टिदोष" का साम्ब शादीशुदा है । फिर भी वह मधुर के साथ प्रेम संबन्ध स्थापित करता है । प्रेमिका को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं क्योंकि वह अपनी पत्नी को बहुत चाहता है । यहाँ देख सकते हैं कि साम्ब की जीवन-दृष्टि में नैतिकता का पुट है । लेकिन दूसरी ओर

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 144
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कँटीली छाँह - उषा प्रियंवदा - पृ. 92

वह अनैतिक व्यवहार प्रस्तुत करता है क्योंकि वह मधुर के साथ घूमता फिरता रहता है और अन्त में उसने उसके सपनों को तोडकर मधुर के दिल को गहरी चोट पहूँचायी । सांब के तिरस्कार के बाद "मधुर की उँगलियाँ पानी की धार में भीगती रहीं । पानी की बूँदें उसकी कोमल, युवा त्वचा पर फिसल रही थीं और भीगी बरॉनियाँ और भी लंबी लग रही थीं ।"[1] अपने सुख के लिए एक नारी का दिल तोडने में उसे संकोच नहीं । "संबन्ध" का सर्जन पत्नी को छोडकर प्रेमिका के साथ रहने के लिए तैयार खडा है । पत्नी और बच्चों की उसे कोई परवाह नहीं । इसलिए वह कहता है - "श्यामला, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । मैं घर-बार, बाल-बच्चे सब तुम्हारे लिए छोड सकता हूँ ।"[2] प्रेमिका के लिए वह एक फ्लैट भी लेना चाहता है जबकि बच्चों और पत्नी को अकेले छोड देता है । नैतिकता का यह कैसा पतन है ? अनैतिकता की गुंजाइश सर्जन के कथन में ही द्रष्टव्य है । बडे दुलार से वह कहता है - "एक दिन आएगा, जब हम दोनों एक साथ बाहर जा सकेंगे, अस्पताल और रोगियों से दूर, दो बच्चों की तरह, सारी चिन्ताओं से परे .....।"[3] "दो अन्धेरे" में कौशल्या और सुमित्रा की ज़िन्दगी क्रमशः दिनेश और शंकर जैसे पुरुषों की वजह से टूट जाती हैं । एक भारतीय पत्नी के कर्तव्यों का पालन करने में कौशल्या सक्षम है । उसकी ओर से कोई गलती नहीं हुई । फिर भी दिनेश कंवल से संबन्ध रखता है । वह प्रेमिका को साडी खरीद देता है जबकि उसकी पत्नी के सारे कपडे फट गये थे । कंवल

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 129
2. कितना बडा झूठ - संबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 14
3. कितना बडा झूठ - संबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 15-16

के प्रति दिनेश ने जो प्यार दिखाया, उसका एक अंश भी उसने पत्नी से नहीं दिखाया । इसलिए कौशल्या सोचती है -"उसने पहली बार अनुभव किया कि वह दिनेश के लिए सहज प्राप्य नारी शरीर है, उस शरीर से परे अन्यत्र भी कुछ है, यह उसने कभी जानने की चेष्टा न की, न उसे छू पाने की ।"[1] दिनेश अवैध संबन्ध रखकर अनैतिकता दिखाता है तो दूसरी ओर सुमित्रा को उसका प्रेमी शंकर छोड देता है । शंकर को सुमित्रा सिर्फ प्रेमिका मात्र थी । उसे जीवन साथी के रूप में स्वीकार करने के लिए शंकर तैयार नहीं । शंकर का व्यवहार अनैतिक है क्योंकि सुमित्रा के सपनों को वह तोडता है । सुमित्रा को शंकर के प्रेम पर पूर्ण विश्वास है । इसलिए उसकी दीदी शंकर पर शंका करते समय उसे शंकर के प्यार और सामीप्य के क्षण याद आती है । शंकर अक्सर उससे कहता था - "तुम्हारे बाल मुझे गहरी नदी पर चाँद की फिसलती किरणों की याद दिलाते हैं । मेरा मन चाहता है तुम पर किसी की आँखें न पडने दूँ ।"[2] शंकर को प्रेम संबन्ध हँसी दिल्लगी मात्र है । "झूठा दर्पण" में यति पत्नी के होते हुए भी उसकी सहेली अमृता से अवैध संबन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है । पत्नी की अनुपस्थिति में यति अमृता को उसकी शादी का तोफा देता है और कहता है -"बिबिया तुम्हारी बहुत याद करती है ।"[3] अमृता को लगता है कि यति बेटी की बात नहीं करता है, बल्कि अपनी बात करता है । अमृता की याद यति को कचोडता रहता है और इससे मिलने वह रेस्त्राँ में अकेला जाता है । अमृता के प्रति यति का जो झुकाव है वह अनैतिक है ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अँधेरे - उषा प्रियंवदा -पृ. 101
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अँधेरे - उषा प्रियंवदा - पृ. 95
3. एक कोई दूसरा - झूठा दर्पण - उषा प्रियंवदा - पृ. 48

नैतिकता की व्यक्तिपरक भूमिका

स्वतन्त्र रूप से जन्म लेनेवाला मानव कई तरह के सामाजिक बन्धनों से जकडा है । मानव और समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । मानव के विकास में समाज का बहूत बडा हाथ है । अतः समाज को सर्वोपरि मानता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस स्थिति में बदलाव आया । समाज से संघर्ष रखनेवाले व्यक्ति का अंकन स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य की विशेषता है । समाज से यह जो संघर्ष है, वह स्वतन्त्रता-पूर्व भी अंकित है । स्वातन्त्र्योत्तर युग में यह अधिक मात्रा में होता है ।

बदलते हुए परिवेश में परंपरा से पृथक होकर सोचने को मानव तैयार होता है । स्वतन्त्र चिन्तन के फलस्वरूप उसे पुराने जीवन मूल्यों को सुविधानुसार बदलने का अवसर मिला । तभी नये नये नैतिक मूल्यों का आविर्भाव हुआ । व्यक्तिवाद के उदय की वजह से यदि समाज नियमों से मानव को अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए सहायता न मिली तो उन नियमों का उल्लंघन करने वह हिचकता नहीं ।

नैतिकता की व्यक्तिपरक भूमिका प्रस्तुत करनेवालों में आधुनिक युवा पीढी ही प्रमुख हैं । स्वच्छन्द जीवन की कामना उन्हें समाज सत्ता को नकारने की प्रेरणा देती है । उषा प्रियंवदा भी अपनी रचनाओं में इस युवा पीढी की व्यक्तिपरक नैतिकता प्रस्तुत करती हैं ।

"रुकोगी नहीं राधिका" में राधिका की नैतिकता भारतीय रीति-रिवाज़ों के विरुद्ध है । सामाजिक मान्यताओं के अनुसार पिता के उपदेशों का पालन करके उसके साथ रहना ही बेटी का कर्तव्य है । पापा से प्रतिशोध लेने के लिए राधिका इस नियम को टालती है । पिता की दूसरी शादी की वजह से वह उससे नफ़रत करती है और उसके साथ रहने को तैयार नहीं होती । इसलिए ईश्वर तुल्य पिता के समक्ष वह आक्रोश उठती है और कहती है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार जीवन बितायेगी । राधिका के लिए वही नैतिक है जो अपने मन के अनुकूल हो । विधा की मृत्यु के बाद वह मनीश के साथ चली जाती है । पत्नी के चल बसने पर पापा बडे दुखी मर्दित सा लगता है । वह राधिका से कहता है -"मैं ने अपने बारे में कुछ सोचा नहीं है । चाहता हूँ, तुम यहाँ रहो राधिका, पहले की तरह ।"राधिका उत्तर देती है -"नहीं पापा, मैं जाना चाहती हूँ । मनीश मेरे एक बन्धु....." पिता का अनुरोध अनसुनाकर उसे अकेला छोडकर जाने में ही राधिका की गलती है । वह चाहती तो पिता की सेवा शुश्रुषा करके एक आदर्श बेटी का स्वरूप प्रस्तुत कर सकती । राधिका किसी अनजान पुरुष से विवाह करना नहीं चाहती । वह पापा के पास अनिश्चित समय तक नहीं रह सकती । दाम्पत्य जीवन संबन्धी राधिका के इस दृष्टिकोण में कोई गलती नहीं । पिता से नाराज़ हो जाने के बजाय उसके द्वारा निर्देशित व्यक्ति से परिचय स्थापित करना चाहिए और इस मामले पर फैसला लेना चाहिए । लेकिन भावावेग के कारण वहाँ भी नैतिकता का प्रदर्शन न कर सकती । "भावावेग से उसे अपने गाल

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 139

बेहद तपते हुए लग रहे थे । राधिका ने जाकर कपडे उतार फेंके और स्नानागार में ठण्डे पानी की फुहार के नीचे जाकर खडी हो गयी, फिर भी क्रोध का ताप न मिटा ।"[1]

विदेशी परिवेश में नैतिकता की कोई महत्ता नहीं है । एक भारतीय नारी होने के नाते अनुका विदेश में भी नैतिकता का पालन करती है । प्रणव अन्य स्त्रियों से शारीरिक संबन्ध रखता है । लेकिन अनुका के लिए पति ही सर्वस्व है । सुन्दरी अनुका से संबन्ध स्थापित करने के लिए कई पुरुष तैयार खडे हैं जैसे डाक्टर वाटरमैन । लेकिन अनुका एक आदर्श पत्नी का रूप प्रदर्शित करती है । इसलिए वह वाटरमैन से कहती है कि वह अपने पति के साथ सुखी है । उसे पर-पुरुष की आवश्यकता नहीं । प्रणव तलाक चाहता है तो अनुका पवित्र दांपत्य संबन्ध को बनाये रखने का परिश्रम करती है । इसलिए वह प्रणव से कहती है - उसे मोटर, बँगला नहीं चाहिए । वह उसकी दासी बनकर जीना चाहती है । वह प्रणव से दूर रहने की कल्पना तक नहीं कर सकती । अनुका के चित्त से एक क्षण भी प्रणव का ख्याल नहीं जाता । प्रणव के चले जाने के बाद अनुका को उससे लगाव बढता जाता है । इसलिए अनुका प्रतीक्षा करती है कि प्रणव वापस आकर दिव्या के घर से उसे बुला लेगा । तलाक का कागज़ मिलने पर वह दिव्या से कहती है -"प्रणव हमेशा प्रेमिका से ऊबकर मेरे पास लौटा है, शायद इस बार भी प्रणव की गलतियों को माफ देने के लिए वह तैयार खडी है । अनुका की[2]

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 51
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 77

नैतिकता को इससे बढ़कर कोई गवाही की ज़रूरत नहीं । तलाक के बाद दीपांकर से शादी करने के पहले अनुका दीपांकर से शारीरिक संबन्ध रखती है । यह अनैतिक है । लकिन यह बात उल्लेखनीय है कि रात में घंटों तक प्रणव की प्रतीक्षा करने के बाद भी उसकी माँ बनने की इच्छा की पूर्ति नहीं होती । मूड आने पर प्रणव अनुका से संभोग करता है । वह उसे ज़बरदस्ती से अपनी पकड़ में लेता है । ऐसी स्थिति में उसके होंठ क्रूर हो जाते हैं । वह एक हिंसक के से आक्रोश में अनुका को झकझोरता है । उसमें प्यार लेशमात्र नहीं । दूसरी ओर दीपांकर से उसे अपने नारीत्व की पूर्ति मिलती है । इसलिए इनका शारीरिक संबन्ध अनैतिक होते हुए भी मन में प्रभाव उत्पन्न करने लायक है ।

उषा प्रियंवदा अपनी कहानियों में भी नैतिकता की व्यक्तिपरक भूमिका प्रस्तुत करती हैं । पति के पैरों के धूल को पूजनीय माननेवाली पत्नी आधुनिक युग में अपनी सुविधा को अधिक महत्व देती है । "वापसी" के गजाधर बाबू की पत्नी की स्थिति ऐसी है । पत्नी का शिकायत-भरा स्वर सुनकर गजाधर बाबू के विचारों में व्याघात पहूँचता है । वह कहती है -"सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है । इसी गृहस्थी का धन्धा पीटते-पीटते उमर बीत गयी । कोई ज़रा हाथ भी नहीं बँटाता ।"[1] गजाधर बाबू पत्नी से घर का खर्च कम करने की बात कहता है तो वह नाराज़ होकर कहती है -"सभी खर्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गयी,

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 134

न मन का पहना, न ओढ़ा ।"[1] वह शिकायत करती है जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए गजाधर बाबू ही जिम्मेदार है । घर में अपनी उपस्थिति अतंगत समझकर वह पत्नी-समेत वापस जाना चाहता है । गजाधर बाबू पत्नी से पूछता है -"तुम भी चलोगी ?" पत्नी तकपकाकर कहती है -"मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा ? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की ।"[2] रिटायर्ड व्यक्ति से आर्थिक लाभ संभव नहीं । इसलिए पत्नी उसे अस्वीकार करती है । पति का तिरस्कार करके वह सामाजिक मान्यताओं को तोड़ती है । "जाले" की कौमुदी पति को अपनी इच्छानुसार बदलना चाहती है । "राजेश्वर को लगता कि वह कहीं नयी जगह आ गये है । हर समय उन्हें लगता रहता था कि उनके शरीर के अंग काट डाले गये हैं ।"[3] अपने पुराने ढर्रे पर जीवन लौटा लेने को राजेश्वरसिंह हर समय छटपटाता रहता है । वह राजेश्वरसिंह के आत्माभिमान को मान्यता नहीं देती । वह अपना व्यक्तित्व विकास चाहती है । "मोहबन्ध" की नीलू हमेशा व्यस्त रहती है । कभी क्लब में, कभी समाज सेवा और विमेन्स लीग की मीटिंग के लिए चली जाती है । घर में रहकर पति राजन की इच्छाओं का पालन करने को वह तैयार नहीं । बल्कि नीलू व्यक्ति-स्वातन्त्र्य चाहती है । इसलिए वह राजन से कहती है - "मैं एक दायरे में बँधकर नहीं रह सकती ।"[4] एक बच्चे की माँ बनने के बाद भी "दृष्टिदोष" की चन्द्रा पति सांब से दूर रहती है । क्लब या पार्टियों में जाना,

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 136
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 142
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - जाले - उषा प्रियंवदा - पृ. 42
4. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 22

मनमानी जीवन बिताना - ये साम्ब पसन्द न करता । पति की बातें चन्द्रा को स्वीकार्य नहीं । इतना ही नहीं, साम्ब के घरवालों की रुचियाँ भी चन्द्रा से भिन्न हैं । "कान्वेण्ट में पढी चन्द्रा को ऐसे घर आकर लगा कि उसकी दुनिया उलट पलट गयी है । बेड-टी का तो प्रश्न ही न था, सुबह का नाश्ता नौ बजे होता । जल्दी या देर, जब भी खाना तैयार हो गया, खा लिया, न समय की पाबन्दी, न कहीं सुरुचि या सजावट ।"[1] भिन्न परिस्थितियों में पली चन्द्रा को सांब की इच्छाओं से समझौता करना चाहिए । "चन्द्रा को हर चीज़ खटकती, हर बात पीडा देती - साम्ब को भी रोज़-रोज़ क्लब या पार्टियों में जाना अच्छा न लगता । चन्द्रा अपने में घुटती रहती, कुढती रहती । सास का स्नेह, ननदों का आदर और साम्ब का असीम प्यार उसे दम घोटता-सा लगता ।"[2] चन्द्रा की ओर से कुछ त्याग की ज़रूरत है क्योंकि शादी के बाद पति की इच्छा को मान्यता देकर जीने में ही भारतीय नैतिकता छिपी हुई है । बल्कि चन्द्रा व्यक्तिगत इच्छा को प्रथम स्थान देती है ।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा

बदलती परिस्थितियों में नैतिकता संबन्धी मानदण्डों में बदलाव आना स्वाभाविक ही है । इस परिवर्तन के बीच भी नैतिक मूल्यों पर अटूट विश्वास रखनेवाले व्यक्तियों का अंकन उषा प्रियंवदा के

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 119
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषता है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा सामाजिक मूल्यों को कायम रखने का प्रयत्न करती है । घर के बड़े सन्तान होने के नाते सुषमा माँ-बाप और छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती है । सुषमा की मौसी बहुत गोपनीय बात कहने के समान बोलती है "कुछ अपने बारे में भी सोचा सुषमा । यह भाई-बहन किसी के नहीं होते । सब अपने-अपने घर के होंगे । आज की दुनिया में कौन किसका होता है ।"[1] लेकिन सुषमा की राय है -"पर इन सबको भी तो मदद की ज़रूरत है मौसी । पिताजी को पेंशन मिलती ही कितनी है ? उसमें तो दो वक्त दाल-रोटी भी न चले । मैं भी अगर न करूँ तो किसके आगे हाथ फैलाएँगे ? लड़कों को पढ़ाना है ही, सड़क पर तो आवारा घूमने नहीं दिया जाएगा । मैं जो करती हूँ, कर्तव्य समझकर नहीं मौसी, उनके प्यार में करती हूँ । मेरा तो मन होता है कि मेरे पास अगर और कुछ होता तो और भी करती ।"[2] पिता की नि:सहायता की स्थिति में घर का सारा बोझ बड़े सन्तान को उठाना पड़ेगा । इसलिए सुषमा मौसी से कहती है - "अगर मैं सबसे बड़ा लड़का होती, तो क्या न करती ? उसी तरह मैं अब भी करती हूँ । इन लोगों के लिए कुछ करके मन में बड़ा सन्तोष सा होता है ।"[3] आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने के कारण यदि सुषमा चाहती तो मनमानी ज़िन्दगी बिता सकती । किन्तु वह भारतीयता का प्रदर्शन करके नैतिक मूल्यों की महत्ता बढ़ाने का कार्य करती है । अलावा इसके सुषमा छात्रावास का वार्डेन भी है । वार्डेन होने के नाते वह छात्राओं

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 7
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 7-8
3. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 8

की मार्गदर्शिका भी है । इसलिए सुषमा समझती है कि अपने व्यवहार में सुधार लाना ज़रूरी है । नील के साथ घूम घूमकर वह छात्राओं के बीच चर्चा का विषय बन चुकी है । लाइब्रेरी में किताबें ढूँढते वक्त सुषमा छात्राओं का दोषारोप सुनती है । वे कहती हैं -"हम लोगों पर अनुशासन रखती है । उस दिन रूनू और निकी के साथ सिनेमा चले गए तो फ़ाइन कर दिया और अपने लिए कुछ नहीं ।"[1] इससे मुक्त होने के लिए - अच्छी पथ-प्रदर्शिका बनने के लिए वह अपने प्यार की खुदखुशी करती है । दूसरी ओर सुषमा - नील - प्रेम संबन्ध इतना गहरा है कि सुषमा के बिना जीना नील को असंभव हो जाता है । सुषमा के उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए वह तैयार खड़ा है । इसलिए वह सुषमा से कहता है -"वे जिम्मेदारियाँ मेरी भी होंगी । तुम्हारे भाई-बहनों, सबके लिए सब-कुछ वैसे ही होगा जैसे होता आया है ।"[2] ऐसे प्रेमी को छोडकर सुषमा अनैतिकता दिखाती है । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए प्रेमी को छोडना आवश्यक बन जाता है । ऐसी स्थिति में सुषमा समझती है कि अनेक व्यक्तियों की भलाई के लिए प्रेमी का तिरस्कार करना ही बेहतर काम है । यह न समझना चाहिए कि नील से सुषमा का प्रेम झूठा है । नील को अपने जीवन से दूर कर देना सुषमा के वश की बात नहीं । फिर भी छात्राओं और परिवार सदस्यों के लिए वह नील के सपनों को ठुकराती है । सुषमा की दृष्टि में यही सबसे बड़ी नैतिकता है । एक प्राइवेट कालेज में काम करते समय वहाँ के सेक्रेटरी शरीर के मोल

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 103- 104
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

पर धन कमाने को कह देता है, लेकिन सुषमा उसके वश में नहीं आयी । वह नील से कहती है -"निर्धन मैं भले ही रही होऊँ, पर स्वाभिमानी भी बहुत रही । जीवन में कभी कभी ऐसे अवसर भी आये, जबकि मैं अपने शरीर के मोल से धन और आराम पा सकती थी । पर वह मैं ने स्वीकार नहीं किया ।"[1] सुषमा के कथन से स्पष्ट है कि चाहे भूख से वह और घरवाले पीडित हो, वह परंपरागत मूल्यों को नष्ट करना नहीं चाहती । "रुकोगी नहीं राधिका" की विधा अपने गृहस्थ जीवन में मूल्यों को बनाये रखना चाहती है । वह सन्तोष के साथ बीस वर्ष बडे पति की सेवा करती है । नौकरी से छुट्टी लेकर वह आदर्श पत्नी के उत्तरदायित्वों का पालन करती है । रमा राधिका से कहती है -"अरे कितने महीने पलंग से उठ न सके, जीजी को छुट्टी लेनी पडी, तुम्हें पता ही नहीं । कई महीने शहर के बाहर रहे, बडा इलाज, कम्पनी रेस्ट, नर्व-टॉनिक, चलते रहे ।"[2] राधिका के विदेश गमनागमन के संदर्भ में माँ के समान विधा ही उत्तरदायित्व दिखाती है, भाई और पिता नहीं । इसके पहले विदेश जाने से मना करके विधा राधिका से कहती है - "मेरे कारण तुम्हें घर छोडकर जाने की ज़रूरत नहीं है । क्या हम दोनों अच्छे मित्रों की तरह नहीं रह सकते ?"[3] बच्चों और पति की ज़िन्दगी सुधारू बनाने की उसकी कोशिश के पीछे परंपरागत नैतिकता द्रष्टव्य है ।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में भी नैतिक मूल्यों को बनाये रखने का प्रयत्न है । "वापसी" में एक ओर नयी पीढी मूल्यों

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 61
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 73
3. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 45

को परिवर्तित करने का प्रयास करती हैं तो दूसरी ओर गजाधर बाबू मूल्य-विघटन होने नहीं देता । पिता की उपस्थिति से नाराज़ होकर अमर अपनी पत्नी के साथ अलग रहना चाहता है । लेकिन गजाधर बाबू संयुक्त परिवार-विघटन को तैयार नहीं । इसलिए वह घर से वापस जाने का निश्चय करता है और अमर के नये घर बसाने की बात पर पत्नी से मत प्रकट करता है - "अमर से कहो, जल्दबाज़ी की कोई ज़रूरत नहीं ।"[1] वह चाहता है कि परिवारवाले एकसाथ रह जाये । गजाधर बाबू की पत्नी उसके सामने दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती है । ऐसी नारी से वह स्नेहमय व्यवहार प्रस्तुत करता है । पति के साथ जाने से इनकार करते समय भी वह उससे नाराज़ नहीं होता । गजाधर बाबू थके, हताश स्वर में उससे कहता है -"ठीक है, तुम यहीं रहो । मैं ने तो ऐसे ही कहा था ।"[2] वास्तव में वह पत्नी संग जाना चाहता है । माँ के लिए पैरम्बुलेटर अपने मातृत्व का एक साधन है । माँ को पैरम्बुलेटर बच्चे से बड़ा नहीं है । इसीलिए बच्चे की बीमारी के अवसर पर "पैरम्बुलेटर" की कालिन्दी दवा खरीदने पैरम्बुलेटर बेचने को बाध्य हो जाती है । माँ को बच्चे का जान ही बड़ा है । इसलिए कालिन्दी बच्चे को गोद में लेकर अच्छी तरह ढँक लेती है और काँपते कण्ठ से पति से कहती है -"खड़े क्या हो ? गाड़ी लेकर जाओ और कहीं बेचकर दवा ले आओ ।"[3] प्रेम के क्षेत्र में आज नैतिकता संबन्धी मान्यताएँ परिवर्तन की दिशा में हैं । लेकिन मूल्यों को अब भी महत्वपूर्ण

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 138
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 142
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पैरम्बुलेटर - उषा प्रियंवदा - पृ. 11

समझनेवाले व्यक्तियों को "मोहबन्ध;" "एक कोई दूसरा" "झूठा दर्पण" में देख सकते हैं । पत्नी के होते हुए भी "मोहबन्ध" का राजन अचला से प्यार करता है । अचला नीलू से प्रतिशोध ले सकती है क्योंकि अचला और उसके प्रेमी देवेन्द्र का प्रेम-संबन्ध नीलू की वजह से टूट चुका है । फिर भी वह नीलू से प्रतिकार नहीं लेती । नीलू का दाम्पत्य जीवन सुखमय बनाने को वह राजन के प्यार से अलग रह जाती है । राजन की स्थिर, अचंचल दृष्टि से अचला की आँखें बँधकर रह जाती हैं । पारिजात पुष्पों की तरह कोमल सुवासित बूँदें उस पर झरती हैं । राजन की हथेलियों के स्पर्श से अचला का शरीर थरथराने लगता है । अचानक ही जब राजन उसके इतना निकट है, अचला के आगे दो आँसू-भरी आँखें आ गयी । उसे लगता कि बाँसों की चुभीली पत्तियों पर लेटकर, कोई अभी-अभी रोया है, उसकी सिसकियाँ अब भी वातावरण में भटकती है । असीम सुख के उस क्षण में भी अचला स्पष्ट रूप से अनुभव करती है कि इस मोहबन्ध को तोडकर उसे जाना ही है क्योंकि वे भीगी आँखें उसकी अपनी है । मित्रता और यौन संबन्ध के क्षेत्र में अचला मूल्यों को प्रतिष्ठित रखने का प्रयत्न करती है । "एक कोई दूसरा" में डॉ. कुमार और नीलांजना का संबन्ध नैतिकता पर आधारित है । डॉ. कुमार को नीलांजना से प्यार है । वह नैतिक नियमों का पालन करके नीलांजना से प्रेम करता है चाहे वह मित्रता के तौर पर हो या प्रेमिका के । वह नीलांजना को अपना पथ निर्धारित करने का अधिकार भी देता है । वह नीलांजना से कहता है -"तुम क्या चाहती हो ? जीवन तुम्हारा है । तुम्हें अपना पथ निर्धारित करने का अधिकार है । हरेक को अपनी राह

स्वयं खोजनी होती है, पर यह ख्याल रखना कि भावावेश में तुम गलत राह न पकड लो ।"[1] दूसरी ओर नीलांजना भी डॉ. कुमार के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उससे प्यार करती है । स्वयं नीलांजना का कथन है -"उस क्षण मैं ने संबन्धियों के स्नेह-बन्धन एक झटके से तोड डाले, तेईस वर्षों के जीवन का तारा सुख इस क्षण पर वार दिया । भगवान पर मैं विश्वास नहीं करती, कभी मन्दिर में गयी हूँ, यह याद नहीं पडता, पर श्रद्धा और विश्वास से नत भक्त को मन्दिर की पहली सीढी पर पैर रखते हुए कैसा लगता होगा, यह उस बन्द द्वार के आगे खडे-खडे मैं ने जान लिया । अपनी भावनाओं की गहराई से मैं स्वयं काँप उठी, पर उस क्षण का सुख मेरा था ।"[2] डॉ. कुमार का घर नीलांजना को मन्दिर समान है । लेकिन नीलांजना कभी भी डॉ. कुमार के दाम्पत्य जीवन में संघर्ष उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं करती । ये पात्र नैतिक मूल्यों का उल्लंघन करना नहीं चाहते । इसलिए इनके प्रेम संबन्ध को साधारण प्रेम संबन्ध मानना असंगत है । "झूठा दर्पण" में लेखिका अमृता की नैतिकता व्यक्त करती हैं । सहेली मीरा का पति अमृता से प्रेम करता है । लेकिन वह मीरा के दाम्पत्य जीवन को बिगडने के लिए तैयार नहीं । इसलिए अमृता निश्चित वर कुंवर से शादी करने का निश्चय करती है । यह अमृता तो पहले शादी करने से इनकार करती थी । किन्तु मीरा का संशय दूर करने को वह अपना इरादा बदलती है । अमृता कपडे बदलती है और दोनों किताबें उठाती है । वह सोचती है कि पति की यह दोनों किताबें उसे लौटा

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 26
2. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 27 - 28

देगी । अब इनका कोई प्रयोजन नहीं और यति के साथ आखिरी बार चाय पियेगी । फिर कियनर रोड लौट जायेगी और अपने को कल वह विवाह के लिए तैयार करेगी ।"[1] अमृता का नैतिक मूल्यों को बनाये रखने का प्रयत्न उल्लेखनीय ही है ।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिक ह्रास

परंपरा से चली आ रही नैतिक मान्यताओं में अब च्युति हो रही है । नैतिक ह्रास आधुनिक जीवन का एक प्रमुख भाग बन गया है । ज़िन्दगी के आवश्यकतानुसार मानव मूल्यों में परिवर्तन करता रहता है । उषा प्रियंवदा अपने कथा-साहित्य में इस नैतिक ह्रास की ओर संकेत करती हैं । व्यक्ति को जीवन की समस्याओं को झेलने का साहस होना चाहिए । काँटों से रहित ज़िन्दगी की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है । समस्याओं को पार करने के बजाय आधुनिक मानव जीवन से ऊब उससे पलायन करता है । वह आत्महत्या का सहारा लेता है चाहे वह नींद की गोलियों में हो या रस्सी के एक टुकड़े में हो । "रुकोगी नहीं राधिका" में इसका सबूत मिलता है । इस उपन्यास की विधा पति के नर्वस-ब्रेक डाउन होने पर नौकरी छोड़कर उसकी सेवा करती है । ऐसी पत्नी को अकेली छोड़कर पति दूर रहता है । एकसाथ रहने के अवसर पर भी पापा विधा से अलग होकर भिन्न कमरे में रहता है । "रात्रि के प्रथम प्रहर में पापा की स्टडी में काम करते हुए राधिका को

---

1. एक कोई दूसरा - झूठा दर्पण - उषा प्रियंवदा - पृ. 48

यह ज्ञान भली-भाँति रहता कि विधा अपने कमरे में अकेली है ।"[1] फिर भी विधा कठिनाइयों का सहन करती है । पति के बच्चों से भी प्यार-भरा आचरण करती है । कभी भी उसे पति और बच्चों से प्यार का एक अंश भी नहीं मिला । बेटी से भेंट होने पर राधिका का पापा सन्तुष्ट हो जाता है, लेकिन पत्नी को कई दिनों के बाद देखकर उसे कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । उसे पत्नी की सुख-सुविधा जानने की इच्छा भी नहीं । इसलिए पत्नी से वह कुछ पूछताछ भी नहीं करता । कब तक वह इस स्थिति से समझौता कर सकती ? इसलिए नींद की गोलियों के सहारे से वह जीवन से मुक्ति पाती है । यह तो सच है कि यदि विधा के स्थान पर कोई दूसरी नारी होती तो वह भी यही मार्ग अपनाती । लेकिन उपन्यास की आदि से अन्त तक नैतिक मूल्यों को मानकर जीने के बाद की आत्महत्या से नैतिक द्वास का स्वरूप उभरता है । "नींद" नामक कहानी में आत्महत्या का सहारा लेनेवाली नारी का उल्लेख है । अपने प्रेमी से बिछुड जाने पर नायिका दूसरे से प्यार करती है । यह, पहले प्रेमी की याद कायम रखने की उपाधि मात्र है । अतीत की यादों से बचना उसे असंभव-सा हो जाता है । होटल के चारों ओर काँच-ही-काँच है । "नींद" की नायिका सावधानी से चप्पलें उन पर रखकर अन्दर घुस आती है । वह कहती है - "बाई ओर तुम्हारी स्टडी थी, उसमें तुम्हारी कुर्सी अब भी टूटी पडी है, औंधी ।"[2] प्रेमी की यादें उसे सताती हैं । जीवन से ऊब होकर वह नींद की गोलियों से आत्महत्या करती है । नशीले पदार्थों का उपयोग करना अपने जीवन को बरबाद

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 31 - 32
2. कितना बडा झूठ - नींद - उषा प्रियंवदा - पृ. 69

करने के बराबर है । यह भी दाम्पत्य जीवन की समस्याओं को भूलने की तरीका है । नशीली चीज़ों का उपयोग करने पर व्यक्ति इस जीवन से परे एक स्वप्नलोक में विचरण करता है । "उसे अंतीत और अब के बीच स्वतन्त्र भाव से आना-जाना अच्छा लगता था । कभी वह बच्ची बन जाती, कभी अपने से बहुत बड़ी । उसे कभी अच्छी तरह तैरना नहीं आया, पर मछली की इमेज उसे पसन्द थी । वह अक्सर उन क्षणों में एक चंचल, चमकती मछली बन जाती जो कि अनेक सागरों में बिना रूकावट, बिना मछुओं के डर के, क्रीडा करती रहती है ।"[1] इस युग में अशिक्षित लोग ही नहीं, बल्कि सोनी के पति जैसे शिक्षित लोग भी इसके गुलाम हैं । प्रोफ्सर पति के साथ साथ सोनी भी इसका उपयोग करती है । वे अपने मित्रों को भी नशीली चीज़ें बेचते हैं । "सोनी का पति न जाने किन-किन लोगों से यह खरीदता है । पुलिस हाथ धोकर उसके पीछे पडी हुई है ।"[2] नैतिकता का पतन यहाँ गंभीर रूप धारण करता है । मित्र के लिए अपने जीवन का बलिदान करने से भी बढकर कोई स्नेह नहीं । हमारी इस धारणा को "मछलियाँ" की विजी बदलती है । विजी और मनीश का प्रेम संबन्ध मुकी की वजह से टूट जाता है - यह ठीक है । लेकिन इसमें मुकी की कोई कसूर नहीं । कसूर तो मनीश की है । यह सच है कि मुकी मनीश से प्रेम करती थी । अवसर आने पर विजी प्रतिशोध लेती है कि मुकी को अपने मंगेतर के प्यार में शंका होती है । अतः विजी, मुकी के जीवन को भी बर्बाद करती है ।

---

1. कितना बडा झूठ - ट्रिप - उषा प्रियंवदा - पृ. 55
2. कितना बडा झूठ - ट्रिप - उषा प्रियंवदा - पृ. 56

इसलिए क्रुद्ध होकर मुकी नटराजन से कहती है - "जाने से पहले विजी मेरे पास आई थी । जिसे सदा से उसने नफरत की, उसे यह बताए बिना कैसे चली जाती । उसी ने बताया कि तुमने उसे पन्द्रह सौ डालर दिए है, डाक्टर के पास जाने और इंडिया लौट जाने के लिए । पहले मैं ने उस पर विश्वास नहीं किया । मुझे ख्याल भी न था कि तुम इतना आगे बढ जाओगे । पर पर आज फर्नीचर की दूकान से फोन आया कि मैं ने जो चेक उन्हें दिया, वह बैंक से वापस लौट आया कि वहाँ पर्याप्त धन नहीं है । तब मुझे लगा कि [1] मुकी का स्वर टूट जाता है और भावनाओं की बाढ से उसकी आँखों में आँसू भी आती है । यदि सहेली से सच्चा प्यार है तो उसका दाम्पत्य जीवन बिगडने नहीं देगी । मित्रता के क्षेत्र में भी अब मूल्य-च्युति हुई है । मनेतर की कामेच्छा की पूर्ति करने में असफल रोहिनी अपनी नैतिकता को दूर फेंकती है । वह विनय से कहती है -"रह गयी मैं, अपनी पवित्रता लिये, नैतिकता लिये । मेरा मन होता कि मैं भी अपने को नष्ट कर दूँ - कोशिश भी की, पर बचा ली गयी, मर नहीं सकी । पर अल्टिमेटली अपने को मार डाला मैं ने - हर बार मैं जब किसी की शय्या पर सोती हूँ, मेरा एक अंश मर जाता है । इस तरह से मैं अपने से बदला लेती हूँ - क्योंकि मैं ने उस रात अरविन्द को "डिनाइ" किया था । मैं ने केवल उन्हीं को चाहा था, केवल उन्हें ।" [2] प्रायश्चित रूप में उसे अपना शरीर बेचने की कोई ज़रूरत नहीं । नैतिकता का रास्ता पकडकर चलने की वजह से उसने अरविन्द की इच्छा की परवाह नहीं की तो

---

1. कितना बडा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 129
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - चाँद चलता रहा- उषा प्रियंवदा-पृ. 115

उसकी मृत्यु के बाद भी रोहिनी को नैतिक मान्यताओं से हटना नहीं चाहिए । अनेक पुरुषों से संभोग करके वह सामाजिक नैतिकता को कलंकित करती है । "कच्चे धागे" कहानी में लेखिका झूठी सामाजिक नैतिकता का पर्दाफाश करती हैं । पडोसिन जीजी, कुन्तल की शादी पर पूछताछ करते वक्त अपना मत प्रकट करती है - "बड़ी किस्मतवाली होगी तुम्हारी सास । इतनी गुनी बहू किसे मिलती है ।"[1] बाद में जब कुन्तल की बात लेकर दल्लाल जीजी के पास जाता है तो वह साफ साफ कह देती है कि कुन्तल उसको स्वीकार्य नहीं । मुँह से किसी की प्रशंसा करती है, लेकिन व्यवहार में बात अलग है । उसकी कथनी और करनी में एकरूपता नहीं । लड़की के सौंदर्य की बात कहकर वह कुन्तल का तिरस्कार करती है । कोई कमी ढूँढकर दूसरों को चोट पहुँचाना इस सामाजिक नैतिकता का एक भाग है । इसकी ओर व्यंग्य करके लेखिका जीजी के मुँह से कहलाती हैं -"अकेला भाई है हमारा, चार बहनों में । हमें और कुछ नहीं चाहिए, रुपया-पैसा ईश्वर की कृपा से है, बस लड़की खूबसूरत हो, रंग-साफ, नाक-नक्शा सुन्दर हो । वैसी लड़की हो तो हमें इनकार नहीं है । पर उमाशंकर से माफी माँग लीजिएगा, मज़बूरी है ।"[2]

निष्कर्ष

आधुनिक युग नैतिक संक्रमण का युग है । परंपरा का विरोध एवं बदलते सामाजिक मूल्य जीवन में एक नयी नैतिकता लाये हैं ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 59
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 65

सामाजिक नैतिकता समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण चाहती है तो वैयक्तिक नैतिकता सामाजिक मान्यताओं और बन्धनों को तोडकर स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास चाहती है । स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ का सही अंकन हुआ है । व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की कामना रखते हुए भी व्यक्ति विदेशी परिवेश से एडजस्ट करने में असफल हो जाता है । इतना दूर होकर भी वह स्वदेश से जुडा रहता है । उषा प्रियंवदा ने अपने कथा-साहित्य में इस प्रवासी भारतीय मानसिकता को भी वाणी दी है ।

चौथा अध्याय

उषा प्रियंवदा के कथा - साहित्य में अजनबीपन

उन्नीसवीं शती में विज्ञान व प्रौद्योगिकी क्षेत्र की प्रगति के कारण पुराने मूल्यों और आदर्शों में परिवर्तन हुआ । तत्कालीन परिवेश में व्यक्ति के सारे मूल्यों का नियन्त्रक धन है । समाज की जनता के बीच की आर्थिक विभिन्नता व्यक्ति को अपने आपसे और दूसरों से काटती है । ऐसी स्थिति में वह अजनबी बन जाता है । औद्योगिक क्रान्ति के बाद उत्पन्न मशीनों और कंपनियों की वजह से व्यक्ति को एक निश्चित वेतन मिलने लगता है । उस संदर्भ में श्रमिकों को दूसरों पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं पडती । तब व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का संबन्ध खतम होता है । इस युग में मानव, सामाजिक मान्यताओं में जकडा हुआ है । उसकी सारी प्रवृत्तियों का निर्धारक मशीनी समाज है । मानव इस यान्त्रिकता के अनुरूप चलने को विवश है । ऐसा करने पर उसका अस्तित्व नष्ट हो जाता है । अस्तित्वविहीन मानव का अजनबी हो जाना स्वाभाविक ही है । समाज को सन्तुष्ट करने के लिए व्यक्तिगत आग्रहों की खुदखुशी करने को भी वह तैयार होता है । ऐसी स्थिति में वह व्यक्तित्वविहीन बनकर समाज में अपने को अजनबी पाता है । इस खालीपन से बचने का प्रयत्न करने पर भी वह बच न सकता । इसलिए राबर्ट मैक्लवर कहते हैं - "अजनबी व्यक्ति ज़्यादा संवेदनशील प्रकृतिवाले और प्रतिभाशाली होते हैं । वे चाहते हैं कि उनके जीवन का कुछ अर्थ हो, कुछ लक्ष्य हो तथा अपने जीने के पीछे किसी अच्छे उद्देश्य की प्रतीति हो । लेकिन प्रायः इस प्रकार की सोद्देश्यता रखनेवालों के साथ किसी न किसी प्रकार की गड़बड़ हो जाती है । ऐसे व्यक्ति जीवन में ऊँचा लक्ष्य तो रखते हैं किन्तु उनका लक्ष्य उनकी पहुँच से दूर रहता है । और जब

वे इसमें असफल होते हैं, अपने विभ्रमों में और वृद्धि कर लेते हैं । उनका असन्तुष्ट, आहत, प्यासा अहं पीछे ढकेल दिया जाता है और उनके आगे विराट खालीपन धीरे-धीरे पसरने लगता है । अजनबी व्यक्ति इससे भागना चाहता है और इस भागने में वह स्वयं से भागने लगता है ।"[1] नियमों को बनानेवाला व्यक्ति है । इसलिए अपने जीवन की समस्याओं के लिए व्यक्ति ही उत्तरदायी है और उसका फल उसे अकेले ही भोगना पड़ता है । यह एकाकीपन अजनबीपन की स्थिति से संबन्धित है । अजनबी व्यक्ति की मानसिकता नीत्शे यों व्यक्त करता है - "यह जीवन किस लिए है ? मरने के लिए ? आत्महत्या करने के लिए ? नहीं मैं डरता हूँ । तब क्या मुझे तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक मृत्यु स्वयं नहीं आ जाती ? मैं इससे भी ज़्यादा भयभीत हूँ । तब मुझे ज़रूर जीना चाहिए । लेकिन किस लिए ? क्या मरने के क्रम में ? और मुझे इस चक्र से छुटकारा नहीं मिल सकता है । मैं पुस्तक लेता हूँ, पढ़ता हूँ और क्षण भर के लिए स्वयं को भूल जाता हूँ लेकिन फिर वही प्रश्न और वही आतंक सामने आ जाता है । मैं लेट जाता हूँ और आँखें बन्द कर लेता हूँ इसके बाद भी यह सबसे बुरी स्थिति है ।"[2] आधुनिक मानव की यह स्थिति है - अकेले निरर्थक ज़िन्दगी ढोने की - मृत्यु की प्रतीक्षा में रहने की । कभी व्यक्ति अपने को बनाने के लिए, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जीने का मार्ग अपनाता है । वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता चाहता है और उसके लिए प्रयत्न करता है । कभी यह अकेलापन उसे विद्रोही बनने की प्रेरणा देता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय परिवेश में देश-विभाजन, सांप्रदायिकता, औद्योगीकरण

---

1. मैन एलोन - एलिएनेशन इन मार्डन सोसायटी - राबर्ट मैक्लवर - पृ. 146
2. द आउटसाइडर - आलबर्ट कामो - पृ. 151.

और शिक्षा-प्रसार के परिणामस्वरूप बदलाव आया । इस स्थिति में स्वराज्य की कल्पना की पूर्ति नहीं हुई । हमारी पुरानी मान्यताओं के स्थान पर नयी मान्यताओं की स्थापना हुई जिन पर पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट है । इन नयी मान्यताओं को अपनाने के साथ साथ मानव जीवन की जटिलताएँ भी बढ़ती रहती है । ज़िन्दगी से ऊब होकर मानव विसंगत, तनाव और अजनबीपन का शिकार बनने में अधिक समय नहीं लिया । साहित्यकारों ने इस बदलते परिवेश को अंकित करने की ओर ध्यान दिया । इसलिए उनकी रचनाओं में महानगरीय जीवन की विसंगति और अजनबीपन का बोध मिलते हैं ।

हिन्दी कथा-साहित्य और अजनबीपन

हिन्दी कथा-साहित्य में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ऐसे व्यक्तियों को रेखांकित करने का प्रयत्न है जो किसी बृहत्तर समाज के प्रति अपनत्व और जुडाव की भावना खोकर बैठते हैं । उनको निजी विशिष्टता का बोध भी नहीं । पारिवारिक रिश्तों को वे महत्वपूर्ण मानते हैं । इसलिए रिश्तों की टूटन होने पर व्यक्ति अपने को अकेला और असहाय समझता है । इस समय के कथाकार व्यक्ति की अनुभूतियों पर अधिक ध्यान देते हैं । वे, व्यक्ति की प्रवृत्ति या परिस्थितियों के द्वारा उसके खोखले और शून्य जीवन को व्यक्त करते हैं ।

स्वतन्त्रता से जुडे सपनों की टूटन समाज के मध्यवर्ग को मोहभंग की स्थिति तक पहूँचाती है । इसलिए इस समय के कथा-साहित्य में मध्यवर्ग की घुटन और पीडा की अकुलाहट दिखायी देती हैं । मध्यवर्गीय जनता की इस अजनबी स्थिति को स्वीकार करके राजेन्द्र यादव कहते हैं - "बडे-बडे राष्ट्रीय या वैयक्तिक उद्योगों की छाया में करोडों लोगों का ऐसा वर्ग है जो कहीं भी अपने को जुडा हुआ नहीं पाता । कोई शहर उनका अपना नहीं है, कोई संबन्ध उनका अपना नहीं है, उनकी जड़ें न कहीं पीछे खेत-खलिहानों में है, न किसी संयुक्त परिवार में ।"[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उत्पन्न औद्योगीकरण, संयुक्त परिवार विघटन व्यक्ति के मन में अलगाव और अजनबीपन की अनुभूति को गहराते हैं । कथा-साहित्य में अंकित संबन्धों का बदलता स्वर इसका परिणाम है । शिक्षित नारी के अजनबीपन को भी इन कथाकारों ने व्यक्त किया है । परिवार से कटा व्यक्ति प्रेम की तलाश करता है और प्रेम संबन्धों में पड जाता है । यह प्रेम वह कभी अपने प्रेमी से पाना चाहता है, कभी वैवाहिक साथी से । लेकिन वहाँ भी उसे निराशा से अकेलापन का एहसास होता है ।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर व्यक्ति निराश और कुंठित हो जाता है । आसपास के परिवेश में वह अपने को अजनबी समझकर परिवेशगत बदलाव चाहता है । नयी परिस्थितियों से मिल-जुलकर

---

1. प्रेमचन्द की विरासत और अन्य निबन्ध - राजेन्द्र यादव - पृ. 12

रहने का प्रयत्न करने पर भी, वहाँ भी उसे अजनबीपन महसूस होता है । संस्कृतिगत संकट से जनित यह अजनबीपन साठोत्तर कथा-साहित्य का महत्वपूर्ण पहलू है । पूर्व और पश्चिम के मूल्यों के बीच जो द्वन्द्व चलता है उसकी वजह से अजनबीपन की भावना अवतरित होती है । इस अजनबीपन से मुक्ति पाने के लिए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी मनुष्य को आधुनिक होने का उपदेश देते हैं । जीवन की उत्तरोत्तर बढ़ती गतिशीलता और जटिलता को ठीक से पहचानने और तदनुकूल अपनी संचरण पद्धति निर्धारित करने की सलाह देते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी आधुनिकता के क्षेत्र विस्तृत करने की बात करते हैं क्योंकि "आधुनिकता वह दृष्टि और जीवन पद्धति है जो पूर्व और पश्चिम के बढ़ते हुए अंतराल को कम करके सामंजस्य के लिए आवश्यक भाव-भूमि प्रदान कर सकती है ।"[1]

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में अजनबीपन

साठोत्तर युग के अन्य कथाकारों की तरह उषा प्रियंवदा ने भी मानवीय अजनबीपन को वाणी दी है । वे उपन्यासों में मुख्य रूप से अस्मिता की तलाश करनेवाली नारियों को प्रस्तुत करती हैं । शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने पर आधुनिक नारी स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए लड़ती है और इस लड़ाई में कभी कभी उसे अकेलापन का एहसास होता है । कारण यह है कि समाज ने जो व्यवस्था बनायी है वह इन प्रगतिशील नारियों के लिए हमेशा स्वीकार्य नहीं ।

---

1. समकालीन भारतीय साहित्य में पूर्व और पश्चिम के मूल्यों के बीच अवरोध की स्थिति - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - क, ख, ग अंक, 1963 - पृ. 30

उस संदर्भ में उसकी भीड़ में अकेला होना स्वाभाविक बात ही है ।

विवशता से ग्रहीत अकेलापन

प्रथम उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" में उषा प्रियंवदा मुख्य रूप से सुषमा का अजनबीपन अंकित करती हैं । सुषमा के घर में माँ का शासन चलता है क्योंकि पिता अस्वस्थ रहता है । माँ सुषमा की ओर से निश्चिन्त है । बड़ी बेटी सुषमा की शादी के बारे में वह सोचती नहीं । यदि सुषमा का विवाह हो जाता तो सुषमा का वेतन नहीं मिलता । तब माँ को घर की देखभाल करना मुश्किल हो जाएगा । इसलिए वह कामकाजी बेटी को कुंवारी रखती है और कृष्णा मौसी से कहती है -"तुम जानो कृष्णा, सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात रही नहीं । इतना पढ़-लिख गई, अच्छी नौकरी है और अब तो क्या कहने है, होस्टल में वार्डेन भी बननेवाली है । बँगला और चपरासी अलग से मिलेगा, बताओ इनके जोड का लडका मिलना तो मुश्किल ही है ।"[1] उसका सारा ध्यान छोटे बच्चों पर केन्द्रित है । माँ समझती है कि उसकी लडकी नौकरी करके सुखी जीवन बिताती है । माँ उसके जीवन में आये बिखराव को समझने का प्रयत्न नहीं करती । इसलिए सुषमा प्राय: उपेक्षित-ता अनुभव करने लगती है । कालेज की अध्यापिका और होस्टल वार्डेन होने के नाते सुषमा के पास एक अलग घर है । सुषमा को हमेशा लगता है कि यह घर उसके लिए बहुत बडा है ।

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 6

उस घर में अकेले रहते वक्त वह सोचती है कि किसी के पास थोडी देर जा बैठे । अकेले क्षणों में "कपडे बदलने और बाल सँवारने का प्रयत्न उसे बहुत बडा लगने लगा । उसने रात की रानी के फूलों का गुच्छा तोड लिया और आरामकुर्सी पर, पैर ऊपर कर बैठ गई - उस खाली क्षण में उसके आगे मीनाक्षी का उत्फुल्ल मुख तैर गया और जैसे उसके सुख की दीवार में एक दरार-सी पड गई । वह न जाने क्या-क्या सोच उठी ।"[1] सह-अध्यापिकाएँ दूसरों की चारित्रिक कमियाँ ढूँढकर उसे समाज में दोषी बनाने का प्रयत्न करती हैं । खाली क्षणों में वह खिन्न हो उठती है और इस अकेलापन के लिए अपने माता-पिता दोषी प्रतीत होते हैं । अकेलापन में हर व्यक्ति के मन में एक मूर्ति उपज आती है । सुषमा के मन में भी नील की याद आती है । नील के बारे में सोचना उसे बहुत स्वाभाविक लगा । यह मूर्ति चाहे काल्पनिक हो या यथार्थ - उस क्षीण तन्तु के सहारे पर लम्बे, अकेलापन कटता जाता है ।[2] सुषमा भी नील की याद में अकेलापन दूर करने का प्रयास करती है । घर से दूर रहते समय सुषमा यह सोचकर उदासी-सी होती है कि पिताजी को पान मिला भी होगा या नहीं - इसका पता नहीं । स्नेही परिजनों से विलग होकर वह अपने को बेसहारा पाने लगती है । पुराना-सा मकान, मैली दीवारें, घिरा आँगन इनसे दूर रहने पर उसे अकेलापन महसूस होता है । तब उसे अपनी वह कॉटेज कारागार-सी प्रतीत होने लगती है, वहाँ सुख सुविधा है लेकिन सहज स्नेह की उष्णता नहीं है । सुषमा कालेज की छात्राओं के बीच भी चर्चा का विषय बन जाती है और सुषमा का मन

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 24
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 25

होने लगा कि धरती फटकर उसे निगल ले । उनका दोषारोप सुनकर सुषमा को लगा कि जैसे वह शरशय्या पर लेटी है । वह बुरी तरह बिंधी हुई है, दारूण यन्त्रणा से छटपटाती हुई है । उसके चारों तरफ का वातावरण उसके हृदय पर ऐसा भारी बोझ बनकर जम जाता है और उसमें नील का स्पर्श, नील की आँखों की कोमलता धुँधली पड जाती है । दुःख के इन क्षणों में सुषमा नितान्त अकेली है और आँखों की सजलता में उसे नील का बढा हुआ हाथ भी न दिखाई देता है ।[1] माँ भी उसे दोषी मानती है और कहती है -"देखो सुषमा, तुम समझदार हो, कभी ऐसा कुछ न करना जिससे किसी को कुछ कहने का अवसर मिले । तुम्हारी वजह से अभी हम चार जनोंमें सिर ऊँचा करके रह रहे हैं ।"[2] नील के साथ हॉलैण्ड न जाने का निश्चय करने के बाद सुषमा के दिल और कमरे में उदास मौन बह जाता है और गाढा-गाढा जम जाता है । वह कमरे के बाहर एकान्त में टहलती रहती है । रात के अन्धकार में सुषमा की आँखें फैला-फैलाकर कुछ देखने लगती हैं । सहारा ढूँढकर उसकी अँगुलियाँ आगे बढ़ती हैं और किसी को बिना छुए लौट आती हैं । उसे लगता है कि सब कुछ उसे अकेले ही झेलना है ।[3] नील को अपने जीवन से उखाड फेंकने से सुषमा को अपने अकेलापन की पूर्ण अवधारणा होती है । सुषमा दुनिया के सामने बडा ही संयत रूप प्रस्तुत करती है जैसे नील मात्र परिचित है और उसके चले जाने से कुछ विशेष अन्तर नहीं पडता । नील से बिछुडकर एकान्त में बैठी सुषमा के मुख पर अव्यक्त वेदना, रात में टूटते तारों की तरह आँसू और मीनाक्षी द्वारा पकडे जाने पर उसकी झेंपी-सी हँसी सुषमा के अकेलापन

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 111
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 95
3. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ - डॉ. शीलप्रभा वर्मा - पृ. 119

की तीव्रता व्यक्त करते हैं । सुषमा की माँ के अनुसार सुषमा बहुत फिजूलखर्ची करती है । माँ सुषमा से कहती है - "तुम बहुत फिजूल खर्च होती जा रही हो । ज़रा हाथ दबाकर खर्च किया करो । नीरू की शादी भी तो करनी है ।"[1] नीरू के विवाह के बाद माँ निश्चय करती है कि अब सारा परिवार एक ही जगह रहे तो अच्छा होगा । दो जगह रहकर दोहरा खर्च करने की ज़रूरत नहीं । इसलिए सभी सुषमा के पास रहें और प्रतिमा, संजय, विनय की पढाई दिल्ली में हो सकती है । सुषमा जानती है कि माँ के मन में इन तीन बच्चों की चिन्ता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । वह सुषमा को डाँटती है कि बेटी घर की देखभाल ठीक तरह से नहीं करती । सुषमा अधिक दु:खी होती है और अपने कमरे में पडी रहती है । माँ की वजह से वह और भी अकेली बन जाती है । उसे लगता है कि घरवालों के बीच रहकर भी वह अजनबी है । इसलिए कड़वे स्वर में सुषमा माँ से कहती है - "ज़रा अपने दिल के अन्दर झाँककर देखो कि तुमने मेरे लिए क्या किया है । मेरा आराम से रहना ही तुम्हें खटकता है ।"[2] घर में अपने अस्तित्व को सुषमा खोजती है । नील के संपर्क में आने के बाद सुषमा को जीवन में पहली बार खोये हुए वर्षों का दुख होता है । जीवन की भाग-दौड और आजीविका के प्रश्नों में चुपचाप विलीन उन वर्षों में भी सुषमा नितान्त अकेली थी । पड़ोसी नारायण को लेकर सुषमा उस समय कई स्वप्न देखती थी । लेकिन उसके पिता को यह रिश्ता मंजूर नहीं । नारायण के पुत्र के जन्मोत्सव के अवसर पर सुषमा उसके घर में जाती है । घर बाहर सब ओर से नारायण

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. ।।
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 89

की पत्नी पर सुख कामनाओं और आशीषों की वर्षा की जाती है । बन्धुजनों और मित्रों के बीच "सुषमा एक अपरिचित - मात्र बनी यह सब दूर से देख रही थी । उसके मन में, बहुत पुरानी एक चोट फिर से टीस उठी । बचपन से एक स्वप्न मन में सँजोया था, जिसका केन्द्र नारायण था । सुषमा के आगे उन्नीस बरस की एक शर्मीली लड़की आकर खड़ी हो गई ।"[1] सुषमा जानती है कि "नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल एक छाया, एक खोये हुए स्वर की प्रतिध्वनि, और अब ऐसी ही रहूँगी, मन की वीरानियों में भटकती हुई ।"[2] लेकिन सामाजिक और पारिवारिक दबाव की वजह से वह सोचती है कि उसके चारों ओर द्वार बन्द है । उसकी नियति यही है कि सीखचों से आती धूप और मद्धिम प्रकाश के बल पर साँसें लेकर वह उसी कारागार में रहती है । वह छात्रावास के पचपन खंभे और लाल दीवारों के बीच ज़िन्दगी भर अकेले रहने का निर्णय लेती है । स्व-इच्छा से प्रेरित इस निर्णय के पीछे जो दर्द छिपा है, वह नील से कहे गये शब्दों से स्पष्ट है कि "यह कॉलिज, ये खंभे, मेरी डेस्टिनी हैं, मुझे यहीं छोड़ दो ।"[3]

अस्मिता की तलाश

"रुकोगी नहीं राधिका" में लेखिका निजी परिवेश से कटी राधिका का अजनबीपन प्रस्तुत करती हैं । पिता के लाड़-प्यार में बड़ा होने की वजह से राधिका को कभी अजनबीपन की भावना नहीं हुई ।

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 37
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 128
3. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

पापा के बारे में राधिका सोचती है कि "राधिका की माँ की मृत्यु के बाद तो उनका सारा समय ही उसमें लगने लगा । वर्षों तक जीवन का क्रम इसी प्रकार चलता रहा । बड़ा दा शिमले के स्कूल में पढ़ते रहे और राधिका नौकरों और आयाओं से घिरी, पापा के साथ सिविल लाइन्स वाले, बड़े से, पुराने बंगले में रहती रही । गर्मियाँ आतीं, तो गंगा पारवाली कोठी में चले जाते, जहाँ राधिका की दोपहरें बाग में कच्चे आम या फालसे तोड़कर खाने में बीततीं ।"[1] लेकिन पिता की विधा से शादी के बाद राधिका समझती है कि वह अकेली बन गयी है । "वह जान रही थी कि अब कभी भी, कुछ पहले जैसा नहीं हो पायेगा । उसे बार-बार आश्चर्य होता कि पापा को विवाह की बात सूझी ही कैसे ? कम-से-कम बीस वर्ष तो वे बड़े होंगे ही विधा से, और विधा भी, यह जानते हुए भी पापा की बड़ी-बड़ी दो सन्तानें हैं, इस विवाह पर भाई से राधिका का कोई आत्मीय संबन्ध तो नहीं । इसलिए वह सोचती है-"क्यों नहीं वह उन्नीस साल की स्वतन्त्र युवती की तरह सूटकेस लेकर कहीं चली जाती ?"[3] अस्मिता की तलाश करनेवाली नारी का चित्र यहाँ उभरती है ।[4] विदेश में डैन से संबन्ध-विच्छेद होने पर राधिका मिसेज़ होमर के घर में अकेली रहती है । उस समय का अकेलापन राधिका को यह सोचने विवश कर देता है कि माँ की मृत्यु के बाद अठारह वर्ष पिता ने अकेले कैसे काटे ? राधिका अब समझती है कि अकेलापन कितना भयावह होता है । स्वजनों और परिवेश से कटकर जीते समय राधिका अजनबीपन[2]

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 42
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 45
3. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 47
4. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन दर्शन -

का कडवाहट पी चुकी है । इसलिए स्वदेश लौटकर वह एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करने की इच्छा रखती है । राधिका निर्णय लेती है कि "अब वह उस घर में विधा से बिना झगडा किये, अपने बचपन वाले कमरे में रहेगी और एक बार फिर बिखरे सूत्र समेटने का प्रयत्न करेगी ।"[1] एयरोड्राम पर राधिका को लेने पापा नहीं आया । इससे राधिका को तीव्र आघात होता है क्योंकि राधिका को यह विश्वास है कि पापा उसे लेने ज़रूर आयेगा । भाई और विधा की उपस्थिति या अनुपस्थिति से राधिका का कोई मतलब नहीं, बल्कि पिता का अभाव उसे सचमुच अजनबी बनाता है ।[2] राधिका जानती है कि अपने भावों का औरों के सम्मुख प्रदर्शन करने में पूरे परिवार को झिझक है । इसलिए परिवार सदस्य एक दूसरे के लिए अजनबी बन जाते हैं । राधिका को मालूम है कि तीन वर्ष के बाद देखने पर कोई राधिका को गले से लगाकर न भींचेगा । लेकिन उसे आशा है कि उनके चेहरे पर हर्ष ज़रूर देख सकती । इन आग्रहों की पूर्ति न होने पर राधिका समझती है कि स्वदेश में भी वह अजनबी बन गयी है । घर जाते वक्त राधिका मामा के पास ठहरती है । उनसे मिल-जुलने पर राधिका को अपने अकेलापन से कुछ मुक्ति मिलती है । लेकिन मामा अपनी ट्यूशन पर चला जाता है और मौसी पूजा में लीन हो जाती है । राधिका को लगता है कि बाहर की विषाद-भरी साँझ अपने जीवन में छायी है । कारण यह है कि वह कमरे में अकेली है । तब एक अजीब अकुलाहट उसे पकडता है । घर पहूँचने पर राधिका को लगता है कि चारों ओर एक उजाड़-सा वीरानापन छाया है । वह समझती है कि "सभी बँगलों के

---

1. रूकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 16
2. हिन्दी लघु उपन्यास - घनश्याम मधुप - पृ. 178

आगे लंबी-चौड़ी धरती थी, जिसमें अपने आप ही कुछ फूले तो रंग, गन्ध दिखे, नहीं तो रात-दिन सुनसान पड़ी सड़क पर धूल उडती रहे । पिछले दिनों में केवल बूढ़े माली को ही बगीचा सँवारने का शौक था, तभी आगे कुछ क्यारियों में जाड़े के फूल लगा दिया करता था, पीछे की ओर गाजर और टमाटर आदि कुछ खाने की चीज़ें । पर अब तो क्यारियाँ भी खाली पड़ी हैं, मेंहदी की बाड़ काफ़ी छिन्न-भिन्न हो गई है, और बोगनवेलिया की रंगारंग लतरों को शायद भैंस-बकरियाँ खा गयी होंगी । राधिका खड़ी है और बीते समय का बोध तेज़ बहते पानी की तरह उसे कँपा रहा है । इस घर की धरती पर पैर रखते हुए ही हृदय में एक अजीब-सी छटपटाहट होने लगी है और जैसे तेज़ नाखूनों से परतें-की परतें खुरची जा रही हैं ।"[1] ऐसे वातावरण से बचने के लिए वह पापा के पास गंगा पारवाली कोठी में जाती है । जाते समय राधिका समझती है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी वह स्वदेश का एक अंग बन न सकती । अक्षय, अनिला, नीना के तुहद बन्धन में रहते हुए भी "राधिका में एक बेहद अनमनेपन ने घर कर लिया था । अक्षय से भेंट होती रहती, अक्सर नीचे शंकर के घर भी उसे बुलावे मिलते रहते, पर सब कुछ करते हुए भी एक विचित्र अनिश्चितता, और सारहीनता की भावना छाई रहती ।"[2] लोग समझते हैं कि राधिका पाश्चात्य सभ्यता का भाग बन चुकी है । इसलिए रिश्ते की एक ताई पूछती है कि राधिका सिगरेट, शराब पीने लगी होगी । भाई-भाभी भी इससे ज़्यादा कडवाहट भरा व्यवहार प्रदर्शित

---

1. रूकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 37
2. रूकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 88

करते हैं । भाभी की शंका है -"अच्छा बीबी, इतने दिन उस मर्द के साथ रहकर भी बाल बच्चों से कैसे बरी रहीं ?[1] मौका मिलने पर भाई पूछता है कि "क्या वहाँ सचमुच ऐसे क्लब हैं जहाँ लोग पत्नियाँ सप्ताहांत के लिए बदल लेते हैं ?"[2] इतना ही नहीं पिता के स्वर की दूरी और औपचारिकता से राधिका दु:खी हो जाती है । समूचे परिवेश के परायेपन से राधिका बन्धुजनों से कटती जाती है । राधिका को अजनबी बनाने में समाज का भी हाथ है । पिता के पास पहुँचकर बचपनवाले कमरे में राधिका घुस जाती है तो उसे लगता है जैसे वह किसी डाक-बंगले में है । राधिका का कमरा उसके व्यक्तित्व को प्रतिफलित करता है । "उसी तरह का, एक वातावरणहीन, व्यक्तित्वहीन कमरा, बीच में बिना बिस्तर का लोहे का पलंग, एक बडी पुराने स्टाइल की मेंढक-आराम कुर्सी, दीवार पर दो साल पुराना धूमिल पडा कैलेण्डर, केवल घडौंची पर ताज़ा भरा घडा रखा था, नीचे साफ धुली चिलम थी और स्टैण्ड पर तौलिया ।"[3] अजनबी बनकर यहाँ स्वदेश में रहते वक्त राधिका की मुलाकात उसकी अन्तरंग सहेली रमा से होती है । रमा का संशय यह है कि " न जाने कहाँ-कहाँ का सैर-सपाटा, जाने किस किस घाट का पानी पीकर तुम आयी हो और कुछ भी नहीं है बताने को ?"[4] दोस्त का भी पराया जैसा व्यवहार राधिका को और भी अजनबी बनाता है । भाई के घर में रहते समय राधिका को ऐसा लगता है जैसे अकेले

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 52
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 52
3. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 55
4. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 73

फ्लैट में रहती है । अंधेरे कमरे में, गुदगुदे पलंग में धँसी राधिका यान्त्रिकता से दिन बिताती है । धीरे-धीरे उसे इस प्रकार की घटना-हीन ऊब भरी दिनचर्या की आदत पड जाती है । भारत आने के बाद "यहाँ राधिका अपने को हर अपने संबन्धों, परिवेश और भावनाओं में इतना पृथक् पाती है कि बैठकर धावों के घुरण्ड उकेलने के अतिरिक्त और करे भी क्या ।"[1] तीन वर्ष के बाद स्वदेश में स्वजनों के बीच रहने पर "उसे लगा कि वह इस भीड़, शोर-शराबे, चहल-पहल से एकदम कटी हुई है, वह अपने परिवेश का भाग नहीं रही, वह यहाँ रहते हुए भी निर्वासिता है, उसका जीवन निरुद्देश्य यात्रा है, एक लंबी अंधकारपूर्ण सुरंग में । स्वदेश लौटकर स्वजनों के मध्य शायद उसके अन्दर का यह हिमखण्ड पिघल जाय । पर ऐसा संभव नहीं लगता । नित्य प्रति के जीवन की क्रियाएँ वह मशीनी भाव से संपन्न करती आयी है, यह बेचैनी, यह ऊब-भरी अकुलाहट बढती जाती है ।"[2] राधिका जान-बूझकर अक्षय की उपेक्षा करके मनीश से रिश्ता जोडती है । विदेश से लौटने के बाद राधिका के समान मनीश भी अकेलापन का शिकार हो जाता है । वह यह तय नहीं कर पाता कि यहाँ रहे या वहाँ । समान आन्तरिक पीड़ा से ओतप्रोत मनीश से संबन्ध स्थापित करके वह मनीश के इस सुझाव को स्वीकार करती है कि "तुम वहाँ नहीं रह सकी, न तुम्हें यहाँ ही स्वीकारा गया । मैं भी अपने को पृथक्, अलग, कटा हुआ पाता हूँ । सोचा कि हम दोनों इकट्ठे रह सकेंगे - क्योंकि हम एक दूसरे को बहुत समय से जानते

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 41
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 104 - 105

हैं, बहुत तारे संदर्भों में ।"[1] इस प्रकार राधिका पापा के अकेलापन की परवाह न करके अपने अजनबीपन को तोडने का प्रयत्न करती है । मनीश राधिका के अस्तित्व को मान्यता देता है - यह समझकर वह मनीश से जुडने देती है और अपनी अजनबी नारी का रूप दूर फेंक देती है । उपन्यास में चित्रित विधा का अजनबीपन भी उल्लेखनीय है । राधिका के पापा ते विवाह करने के बाद पति या बच्चों से उसे नफरत की भावना मिली । स्वयं राधिका भी यह मानती है कि रात्रि के प्रथम पहर में पापा काम करता रहता है और विधा अपने कमरे में अकेली रहती है । पुत्री राधिका के विदेश चले जाने पर पापा पत्नी को अकेला छोडकर दूर रहता है । इसलिए राधिका समझती है कि विधा के मुख पर हमेशा बडा अलगाव-सा भाव रहता है - एक जमी हुई भाव मुद्रा रहती है । परिवार-सदस्यों के मध्य विधा हमेशा के लिए अजनबी बन चुकी थी । इस अजनबीपन से मुक्त होने के लिए वह आत्महत्या का सहारा लेती है ।

परिवेशजनित घुटन

"शेष यात्रा" की अनुका का अजनबीपन सुषमा और राधिका के अजनबीपन से भिन्न है । उसका अकेलापन समाज द्वारा दिया अकेलापन है । माँ-बाप के चल बसने के बाद मामा-मामी के पालन पोषण में वह बडी होती है । इसलिए वह बचपन से अकेलापन के कडवाहट से परिचित थी । प्रणव से शादी तय करते वक्त उसका यह अकेलापन द्रष्टव्य है । "सारे तूफान, हलचल के बीच अनु चुप है । उससे कुछ पूछा नहीं जाता,

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 133

उसे कोई कुछ नहीं बताता ।"[1] अनु को सब एकदम अयथार्थ, एक सपना-सा लगने लगता है । एयरपोर्ट की भीड़-भाड़, चमकीली बत्तियाँ, प्रणव के हाथों से सरकते नोट - अनु चकित होती है कि "यह क्या सच हो सकता है ? उसका सिर घूमता है, वह खंभे को कसकर पकड़ लेती है । वह एक प्रकार का अपरिचय की शिकार होती है । जहाज़ में बैठने के बाद भी अनु रह-रहकर कँपकपी-सी आती रहती है ।"[2] प्रणव के अस्पताल जाने के बाद अनुका बँधी-बँधाई दिनचर्या करके समय बिताती है । कभी कभी अस्पताल से फोन आता है कि डॉ. कुमार इमर्जेंसी में व्यस्त है, लौट आने में देर हो जाएगी । तब अनु अकेली रह जाती । "उसे पहली बार लगा कि उसके लिए प्रणव एकदम अपरिचित है, वह उसके बारे में कुछ छिटपुट बातें छोडकर कुछ नहीं जानती । यह पुरुष उसे कहाँ ले जा रहा था । अनु के पेट में बडा-सा बगूला उठा और हलक में अटक गया, वह फिर रो पडी ।"[3] शादी के पहले रिश्तेदारों और उसके बाद पति द्वारा निर्धारित अनुका के जीवन के इस अकेलापन को वह सन्तोष के साथ स्वीकार करती है । विभा के साथ समय काटने पर अनुका को लगता है कि वह उस परिवेश का भाग नहीं । वहाँ पर अनुका के सामने "शराब की बोतलें खुलने लगीं । अनु कुर्सी पर चुपचाप बैठी रही और सब कुछ ऐसे देखते रही कि वह इस दृश्य का केन्द्र नहीं, मात्र दर्शक हो ।"[4] "ज़िन्दगी की यह पटकथा अनु को

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 15
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 16
3. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 17
4. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 18

बचपन से ही मिली थी । वह किसी चीज़ के लिए जिम्मेदार नहीं है, उसकी सारी ज़िन्दगी दूसरों ने निर्धारित की थी, साल में एक बार जब सारे घर के कपडे सिलते थे, अनु के कपडे भी बन जाते थे - पसंद -नापसंद का सवाल ही नहीं उठता था ।"[1] प्रणव बहुत देर तक बाहर रहने पर, अनुका अकेलापन से बचने के लिए माँ बनने की इच्छा प्रकट करती है । लेकिन प्रणव पहले एंजाय करना चाहता है और बाद में बच्चे । बच्चे के बदले प्रणव अनु को कार खरीद देता है । वह इस निर्जीव वस्तु से अनु के अकेलापन दूर करने का प्रयत्न करता है । प्रणव का सुझाव यह है कि अनु को पार्टियों में शामिल करके अजनबीपन से मुक्त होना चाहिए । लेकिन वहाँ भी प्रणव उसे अकेले जाने को कहता है । प्रणव अनुका से पूछता है -"तुम कहीं चली क्यों नहीं जाती ? अपनी किसी सहेली के घर ?"[2] अन्य स्त्रियों से संबन्ध रखने की व्यग्रता में वह अपनी पत्नी को अजनबीपन के गर्त में धक्केल देता है । अकेले घर में रहते वक्त उसे डर-सा लगने लगता है । वह गाडी लेकर दूकानों के चक्कर लगाती रही, ड्राइक्लीनिंग करवाती है, पेट्रोल भरवाती है, खाने-पीने का सामान खरीदती है, खाना बनाती है और प्रणव की प्रतीक्षा में रात तक बैठी रहती है । "अनु सारी शाम बैठी-बैठी टेलीविज़न देखती है । घर में एकाएक डर-सा लगने लगता है । विभिन्न आवाज़ें । सड़कों पर मोटरें, अंदर ईंधन की भट्टी का चलना और रुक जाना, रेफ्रीजरेटर की आवाज़ । टेलीविज़न पर रंग-बिरंगी तस्वीरें, एक फंतासी दुनिया ।"[3] अस्पताल से अनिश्चित अवधि की छुट्टी लेकर

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 25
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 29
3. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 44

प्रणव फिल्म निर्माण के लिए कैलीफोर्निया जाना चाहता है । अकेली अनुका उससे सुबकती है -"मुझे भी साथ ले चलो, प्लीज़ । मैं अकेली कैसे रहूँगी ? मैं तो डर के मारे मर जाऊँगी ।"[1] अनुका के अकेलापन की तीव्रता यहाँ मुखर हो उठती है । प्रणव के जाने के बाद वह सोचती है कि अगर घर में एक दो बच्चे होते तो कुछ चहल-पहल रहती । लेकिन उसे यह प्रणव से कहने की हिम्मत नहीं है । कैलीफोर्निया जाने के बाद प्रणव "शनिवार और इतवार को सारा-सारा दिन वहीं बीतता है । अनु एकदम अकेली हो जाती है । प्रणव को अब पार्टियों के लिए भी शामें नहीं बचतीं । अनु की सारी नई साड़ियाँ सूटकेस में पड़ी-पड़ी सड़ रही है ।"[2] घर से दूर रहने पर भी प्रणव अनु को फोन करता है । अनु बार बार उससे कहती है -"कब लौटेंगे ? मुझे बहुत अकेला लगता है, मन नहीं लगता । सुनिए, बस अब आ जाइए ।"[3] प्रणव के असलियत का पता चलने पर अनु अधिक क्रुद्ध हो जाती है क्योंकि उस अपरिचित देश में उसे प्रणव के बिना कोई बन्धु नहीं । बेहोश होकर अस्पताल में उसकी भर्ती हुई । होश में आने पर अनु अकेले में बिलखती है -"गॉड, ओ गॉड, हेल्प मी । मेरी मदद करो, मुझे शक्ति दो, ओ सत्ती मैया, ओ साईं बाबा मनसा देवी, तुम्हें चीर बाँधूँगी, विंध्यवासिनी देवी, तुम्हें चुनरी उढाऊँगी, गंगा मैया, मैं भरे जाड़ों तारों की छाँह नहाऊँगी, मेरे प्रणव को मुझे लौटा दो, हनुमान जी, जिन्दगी भर मंगल का व्रत करूँगी, लक्ष्मी नारायण, मैं सोने का छत्र चढाऊँगी, तिरुपति के स्वामी तुम्हें ।"[4] यहाँ भी अनुका के अकेलापन का

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 49
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 47
3. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 51
4. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 56

दर्द छिपा हुआ है । कभी कभी अनुका को लगता है कि वह मर गई है, तभी तो शरीर के होने का कोई एहसास नहीं होता । अजनबी बनने पर वह अपने से पूछती है कि क्या वह पागल हो गई है ? इससे बचने के लिए वह प्रणव का पैर पकडकर उसे साथ रख लेने की याचना करती है । लेकिन प्रणव मानता नहीं । एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करने की प्रेरणा अनुका को दिव्या से मिलती है । दिव्या अनुका से अस्मिता की तलाश करने का उपदेश देती है - "तुम कब तक अपने सारे अस्तित्व को प्रणव नाम की खूँटी पर टाँगे रहोगी । तू क्यों अपने को मिट्टी में मिला रही है । अगर उस शख्स ने तेरी कद्र नहीं की तो रोने-बिसूरने की बजाय उसे ज़िन्दगी से जाने दे ।"[1] तलाक का कागज़ मिलने पर अनु अपनी सहेलियों से सहायता माँगती है । लेकिन सभी उसे अकेली छोड देते हैं । जब अनुका अपने परिश्रम से इस अजनबीपन से मुक्ति पाती है तब प्रणव सबसे संबन्ध विच्छेद करके अपने को अजनबी समझने लगता है । दिल का मरीज़ बनकर अस्पताल में रहते वक्त वह अनु से कहता है -"जब मैं कहता हूँ कि मैं अकेला हूँ तो उसका मतलब है एकदम अकेला, बिना घर-बार, बिना बीवी-बच्चों के - एकदम अकेला और सन्तुष्ट ।"[2] प्रणव से मिलने पर अनुका अपने अकेले जीवन का कडवाहट स्पष्ट करके कहती है -"एक अकेली औरत, वह भी अगर जवान हो और बदसूरत नहीं, उसे क्या-क्या झेलना पडता है, किस किस तरह से अपना बचाव करना पडता है, यह सब मुझे बहुत मुश्किल तरीके से ही सीखना पडा । अब देखिए, मैं ने सुन्दरता का अभिशाप मिटा दिया है ।"[3] दूसरी ओर

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 71-72
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 108
3. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 110

अजनबीपन का दार्शनिक पक्ष अनावृत करके प्रणव अनुका को समझाता है - "अल्टिमेटली तो हमें अकेले ही सब झेलना पड़ता है । बेहोशी का इंजेक्शन मिलने और चेतना खोने के बीच जो दो-तीन सेकेंड होते हैं - ज़िन्दगी और मौत के बीच का वह रास्ता अकेली ही पार करना पड़ता है और जानती हो अनु - एक बार वह झेल लेने पर किसी चीज़ से डर नहीं लगता । मौत से भी नहीं ।"[1]

उषा प्रियंवदा की कहानियों में अजनबीपन

परिवार में अलगाव

उषा प्रियंवदा पारिवारिक संबन्धों की अर्थहीनता व्यक्त करके व्यक्ति की अजनबी स्थिति को उभारती हैं । वे "एक कोई दूसरा" में अस्मिता की तलाश करने के संघर्ष में, अजनबीपन का एहसास लेनेवाली नीलांजना को प्रस्तुत करती हैं । नीलांजना के परिवार में सभी लोग अधिक से अधिक धनोपार्जन में व्यस्त हैं । नीलांजना का भैया कभी पत्नी और बहन की उदासीनता का कारण नहीं पूछता । व्यवसाय के काम से वह महीनों विदेश में रहता है । जब आता है तब पत्नी और बहन को अनेक बहुमूल्य उपहार देता है । नीलांजना को जो कुछ डॉ. कुमार और उसकी पत्नी से मिला, अपने घर में वह उससे वंचित रहती है । इसलिए वह प्राय: अपने बारे में सोचकर कुंठित हो जाती है । वह स्वयं कहती है -

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 112

"मँझले भैया और भाभी के साथ किसी पार्टी में जाकर, सूप सिप करते हुए मुझे अब अजीब-सा लग उठता । मैं धीरे- धीरे उस जीवन से दूर हटती जा रही थी । औपचारिक बातें करते हुए सहज ही मैं सोचने लगती कि हम सब कितने ढोंगी हैं ।"[1] घरवाले नीलांजना को रिसर्च छोडकर शादी करने का उपदेश देते हैं । लेकिन नीलांजना अब शादी करना नहीं चाहती । वह स्वयं कहती है - घर में "मेरे लिए उपयुक्त वर की तलाश है । यदि इस अन्तराल को मैं हँसी-खुशी से ज़िन्दगी को बिलकुल सीरियसली न लेकर बिता रही हूँ तो कुछ बुरा नहीं कर रही । पर मेरी यह फिलासफी औरों को कैसी लगती होगी ?"[2] उत्साह से शोधकार्य में मग्न नीलांजना को पहले विजय के साथ बडे भैया के विवाह प्रस्ताव को तिरस्कृत करने का धैर्य नहीं । लेकिन सगाई के दिन नीलांजना विजय की बडी बहन की तोफा अस्वीकार करती है तो भाइयों के बीच वह अपने को अजनबी पाती है । इसलिए वह कहती है -"मैं ने विनीत, कातर नेत्रों से अपने लोगों की ओर ताका, पर किसी से मुझे आश्वासन नहीं मिला । मुझे लगा कि मैं बिलकुल अकेली हूँ । मँझली भाभी ने भी मेरा पक्ष नहीं लिया । अबस मैं रो पडी ।"[3] नीलांजना के इस व्यवहार से मँझली भाभी का चेहरा फीका पड जाता है । बडा भैया उसे ताकता रहता है । घर में कोई उससे बोलता नहीं, नाराज़ भी नहीं होता । नीलांजना कहती है - "मैं ने कातर दृष्टि से मँझली भाभी को देखा, पर वह सर झुकाये बैठी थी । मेरी बात से वह बहुत ही दुःखी हुई है,

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 22
2. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 16
3. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 24

यह मैं जान गयी पर उस तमय न जाने कैसी दूरी आ गयी थी कि मैं उनसे भी तहारा न माँग सकी । अचानक मुझे अपनी माँ की याद आ गयी और मेरी आँखें भर आयीं, पर शायद वह भी न समझ पाती । हीरे-चुन्नी के गहने, नोटर, रुपये वह भी शायद यही भाषा समझती । अब मैं अकेली थी, नितान्त अकेली ।"[1]

"झूठा दर्पण" म ममी-डैडी के अलग हो जाने से अमृता के दिल पर दरार पड जाती है । वह सहेली मीरा के घर में रहती है । बाकी लोगों से वह कटती रहती है । माँ-बाप द्वारा चुने गये वर कुंवर से भी वह दूर रहती है । शादी को लेकर अमृता के घर में सब अपने में व्यस्त हैं तो अमृता को लगता है कि "यह भीड-भाड और चहल-पहल किसी और के निमित्त है । अमृता तो अलग-अलग है । वह तो स्मृतियों की गहराइयों में डूबकर रह गयी है, संवेदनाओं की गोधूलि में भटक रही है ।"[2] अमृता के विवाह के अवसर पर कई बरस से अलग रहते ममी और डैडी इकट्ठे होते हैं । उनके बीच रहने पर भी अमृता अकेली है क्योंकि "अमृता के विवाह तक उसके माँ-बाप वैधानिक रूप से अलग नहीं होंगे । लेकिन विवाह के बाद उस दाम्पत्य संबन्ध की टूटन की कल्पना अमृता कभी न कर सकती ।"[3] "वापसी" का गजाधर बाबू परिवार में अपने को अजनबी पाता है । नौकरी करते समय पैंतीस वर्षों में अधिकांश समय उसने अकेला रहकर काटा है । उन अकेले क्षणों में वह परिवार के साथ रहने की

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 25
2. एक कोई दूसरा - झूठा दर्पण - उषा प्रियंवदा - पृ. 37
3. एक कोई दूसरा - झूठा दर्पण - उषा प्रियंवदा - पृ. 39

कल्पना करता है । रिटायर होकर घर पहूँचने पर उसे लगता है कि सन्तान उसे एक अपरिचित समझते हैं और उससे दूर रहते हैं । "गजाधर बाबू ने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फिल्म में देखे गये किसी नृत्य की नकल कर रहा है और बसन्ती हँस-हँसकर दुहरी हो रही है । अमर की बहू को अपने तन-बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न है, और वह उन्मुक्त रूप से हँस रही है । गजाधर बाबू को देखते ही नरेन्द्र धप से बैठ जाता है और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लेता है, केवल बसन्ती का शरीर रह-रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता है ।"[1] इसलिए उनके मनोविनोदों में गजाधर बाबू भाग न ले सकता । वह समझता है कि उसके आते ही सब कुंठित होते हैं । उससे उसके मन में खिन्नता आ जाती है । इतना ही नहीं, पत्नी भी उसके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता लगता है । मेहमान के लिए अस्थायी प्रबन्ध करने के समान गजाधर बाबू को बैठक में स्थान मिलता है । अपने ही घर में वह अजनबी बनता है । इसलिए वह सोचता है कि "यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यही है तो यहीं पडे रहेंगे, अगर कहीं और डाल दी गयी तो वहाँ चले जायेंगे । यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पडे रहेंगे और उस दिन के बाद तथमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले ।"[2] वह उस घर का एक इकाई न बन सकता ।

"सुरंग"की बेबी परिवार-सदस्यों के अलगाव की वजह

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 132-133
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 139

से हमेशा मौन रहती है । वर्षों बाद घर आई दीदी अरुणा भी बेबी से खुलकर बातचीत नहीं करती । बेबी इस जीवन में अकेली है । उसे कोई सखी-सहेली नहीं । अपने को सजाने में वह कोई ध्यान नहीं देती । उसकी आँखें हमेशा उदास हैं । बेबी के घर के सदस्य एक दूसरे से बातचीत भी नहीं करते । घर में बेबी अपने को अकेली मानती है । "माँ बेबी से एक प्याला चाय पूछती है तो बेबी चौंक जाती है । उसका चेहरा झुँझलाहट से युक्त हो जाता है । चाय का प्याला वह तिपाई पर रखती है और बिना कुछ कहे, वापस जाकर अपनी जगह बैठ जाती है ।"[1] बेबी को अपना दुःख किसी से भी व्यक्त करने का अवसर भी नहीं मिलता । कभी कभी वह कुछ कहना चाहती है । लेकिन उसे वह रोकती है और उसके चेहरे पर सदा की तरह सूनापन आता है । अरुणा उसे जानने का आग्रह नहीं रखती । कई वर्षों से माँ और बेबी के बीच सुख-दुःख की बातें नहीं हुई हैं । पूजा-पाठ में व्यस्त माँ बेबी के लिए, माँ नहीं होकर अजनबी हो जाती है । वह कभी भी बेटी के पास आकर बैठती नहीं, सर पर हाथ फेरता नहीं । बेबी जब कभी रोकर उससे चिपट जाती है तो वह उसे तिर्फ निर्मम हाथों से अलग कर देती है । रात में बेबी बूरी तरह सिसक कर रोती है और माँ बाहर आकर एक बार भी पूछती नहीं कि बेबी क्या बात है । अरुणा समझती है कि उसके अन्दर कोई बडा भारी दुख सालता है । वह दुख रात में अनियन्त्रित रूप में फूट पडता है । "बेबी के उस मन में क्या-क्या विचार दौडते हैं या वह गहरी काई से ढके, बँधे जल-सी निरुद्विग्न है, यह अरुणा नहीं जानती । वह यह जानती है कि जिन स्थितियों, विचारों, और डरों ने उसे अब तक ग्रसा

---

1. कितना बडा झूठ - तुरंग - उषा प्रियंवदा - पृ. 72-73

है, उन पर वह सायास रोक लगाना चाहती है ।"[1]

"ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" का सुबोध भी परिवारवालों के अलगाव से पीड़ित है । जब सुबोध बेकार नहीं था, उसकी दिनचर्या के अनुसार घर के काम होते थे । "तब वृन्दा और माँ दोनों उसके इन्तज़ार में बैठी रहती थीं । वृन्दा हमेशा बाद में खाती थी । पहले जब तक वह स्वयं अखबार न पढ़ लेता था, वृन्दा को अखबार छूने की हिम्मत न पड़ती थी, क्योंकि वह हमेशा पन्ने गलत तरह से लगा देती थी ।"[2] लेकिन बेकार होने पर खाना भी वृन्दा की सुविधा के अनुसार बनता है और सुबोध घर में अजनबी बनता है । माँ भी खाना खाने के लिए सुबोध का इन्तज़ार नहीं करती । "सुबोध जब साढ़े आठ पर रोकर उठता तो आधा खाना बन चुकता था । जब नौ बजे वृन्दा खा लेती, तो वह चाय पीता । अब उसे अखबार लेने वृन्दा के कमरे में जाना पड़ता है और इसीलिए उसने घर का अखबार पढ़ना छोड़ दिया है ।"[3] इसलिए सुबोध के चेहरे पर विषाद और चिन्ता की रेखाएँ गहरी होती है । अब माँ के दिल से भी वह हज़ारों मील दूर पर है । सुबोध जैसे उसका बेटा नहीं, वह एक अनजान, गंभीर, अपरिचित पुरुष हो जाता है जो दिन-भर भटकता है, रात को आकर सो जाता है । आत्मसम्मान की रक्षा के लिए सुबोध नौकरी छोड़ देता है । लेकिन अब घर में उसका कोई अस्तित्व नहीं, आत्मसम्मान भी नहीं । सुबोध की मेज़, अलार्म घड़ी वृन्दा ले लेती है ।[4]

---

1. कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा - पृ. 74
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 146
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 146
4. हिन्दी कहानी अलगाव का दर्शन - डॉ. गॉर्डन चार्ल्स रोडरमल - पृ. 62

सुबोध को सबसे अधिक आश्चर्य वृन्दा पर होता है । वह सोचता है - "यह वही वृन्दा है जो उसके आगे-पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड़-दौड़कर किया करती थी । जब भी उसने चाय माँगी, वृन्दा ने चाय तैयार कर दी । और अब ? एक रात ज़रा देर से आने पर उसने सुना, वृन्दा बिगड़कर माँ से कह रही थी, "काम न धन्धा, तब भी दादा से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा लें । तुम कब तक जाड़े में बैठोगी माँ ? उठाकर रख दो, अपने आप खा लेंगे ।"[1] उसके बाद सुबोध ठण्डा खाना खाता है । सुबह वृन्दा के खाने के बाद चाय पीता है । बाज़ार से तौदा ला देता है और मैले कपड़े पहनकर दिन काटता है । वृन्दा धोबी को सुबोध के कपड़े धोने नहीं देती । संबन्धों के तनाव से उत्पन्न अकेलापन की वजह से सुबोध माँ से चीखकर बोलता है - "कितने दिनों से गन्दे कपड़े पहन रहा हूँ । पन्द्रह दिन में नालायक धोबी आया, तो उसे भी कपड़े नहीं दिये गये । तुम माँ-बेटी चाहती क्या हो ? आज मैं बेकार हूँ, तो मुझसे नौकरों-सा बरताव किया जाता है । लानत है ऐसी ज़िन्दगी पर ।"[2] इस प्रकार सुबोध के अजनबीपन की तीव्रता कहानी में कई स्थानों पर मुखरित उठता है । सुबोध एक बार प्रेमिका शोभा से कहता है - "इस बात को स्वीकार कर लो कि मैं ज़िन्दगी में फ़ेलियर हूँ, कम्पलीट फ़ेलियर । कुछ नहीं कर सका । जैसे मेरी ज़िन्दगी में अब फुलस्टॉप लग गया है । अब ऐसे ही रहूँगा ।"[3] तारा दिन अप्रत्यक्ष होने पर भी सुबोध को खोजकर घर से कोई नहीं आया । उन्हें सुबोध का ज़रा भी फ़िक्र नहीं ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 148
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 152
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 150

परिवार में अजनबी समझकर "पूर्ति" की तारा होस्टल में रहती है । उसे किसी से कोई संबन्ध नहीं, न बन्धुजनों के प्रति स्नेह । अपने को अजनबी पाकर वह समझती है कि उसको सहारा देने किसी व्यक्ति होता तो वह जीवन की कठिन परिस्थितियों का सामना कर सकती । अकेलापन का एहसास होने पर भी वह जीवन आगे बढाने का प्रयत्न करती है और स्वयं बोल उठती है -"माँ-बाप ने उपेक्षा की, दुनिया ने उपेक्षा की, फिर भी मेरे अन्दर ऐसा बलवान् क्या था कि मैं जीती रही, लडती रही ।"[1] वह अपनी अजनबी स्थिति पर पर्दाफाश डालने का प्रयत्न करती है । इसलिए वह कहती है - "मैं सुखी हूँ, सुखी हूँ । मुझे अपना काम अच्छा लगता है । मैं स्वतन्त्र हूँ, मेरे पास धन है, सुखी हूँ ।" पर तारा जान रही थी कि इन सबके बावजूद भी उसके जीवन में एक बहुत बडा अभाव है एक हूक-सी है जिसे वह बलपूर्वक अन्तराल में दबाये रखती है, जो कसक असावधान क्षणों में हृदय में सालने लगती है ।"[2]

विदेशी सभ्यता को अपनाने के बाद घर आने पर "प्रतिध्वनियाँ" की वसु को अकेलापन होता है । "उसके अकस्मात लौट आने का कारण सैर-सपाटा नहीं, बल्कि डाक्टर जूलियन के शब्दों में "थेराप्यूटिक" यानी उपचार के लिए है ।"[3] आने के बाद वह एक पल भी अपने परिवार का अंग बन न सकती । उसे घर के भीड़-भाड़,

---

1. जिन्दगी और गुलाब के फूल - पूर्ति - उषा प्रियंवदा - पृ. 72
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पूर्ति - उषा प्रियंवदा - पृ. 71
3. कितना बडा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 23

शोरगुल से भारी अरुचि होती है । "उसको सबसे प्रिय समय वह है जब शाम को घर के सारे लोग चले जाते हैं और नौकर बाहर बरामदे में बैठकर गप हाँकते हैं । तब खिड़की के बाहर हवा से पत्तियों की सरसराहट और इक्के-दुक्के पक्षी का स्वर साफ़ सुनाई पड़ती है ।"[1] वह हमेशा ऐसे ही पड़ी रहना चाहती है । घर से कटकर जीने का प्रयत्न करती है । वह बच्चों की दुनिया से भी कटती रहती है । उसकी दीदी का बेटा राजू से प्यार करना औपचारिकता से ऊपर और कुछ नहीं है । इसलिए वह समझती है कि उसके जीवन में "टैलकम पाउडर से महकता, नित्य नये बाबा सूटों से सजा राजू कभी नहीं प्रविष्ट नहीं हो पाएगा ।"[2] कभी कभी उसे लगता है कि उसके चारों ओर जो संसार, जो संबन्धी हैं सब मृत चुके हैं ।

वैवाहिक संबन्ध में अलगाव

पति-पत्नी के बीच की अजनबी स्थिति को भी उषा प्रियंवदा अपनी कहानियों का कथ्य बनाती हैं । "चाँदनी में बर्फ पर" का हेम शादीशुदा होते हुए भी अपने आपको अजनबी समझता है । उसे पत्नी की उपस्थिति घृणा उत्पन्न करता है । वह चाहता है कि "मीरा चाय रख दे और चली जाये । न जाने क्यों अकेले में उसके साथ बैठने में उसे कुछ उलझन-सी होने लगती है । सारा दिन काम-धन्धे में निकाल देता है । रात को भी वह देर तक पुस्तकों में

---

1. कितना बड़ा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 24
2. कितना बड़ा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 25

अपने को उलझाये रखता है, और तब तक यदि मीरा जागती रही, तो "बहुत थक गया हूँ" कहकर वह मीरा की ओर पीठ फेरकर, तकियों में सिर गड़ा, आँखें मूँद लेता है ।"[1] उसकी पत्नी पुरुष मित्रों के साथ घूमने में तत्पर रहती है । हेम मीरा के पास कुछ क्षण बिताना चाहता है तो मीरा कहती है -"मैं अब तैयार होने जा रही हूँ, कुछ काम से बाहर जाना है ।"[2] एक विदेशी नारी से विवाह करने के कारण परिवार सदस्यों के बीच भी अजनबी हो जाता है । हेम का पिता विवाह की स्वीकृति देने के बजाय लिखता है - "आज से मेरी चार सन्तानों में तीन ही रह गयीं । एक बेटा था, वह मर गया । हेम ने यह न जाना था कि वह अपनी बात पर ऐसे दृढ़ रहेंगे । माँ ने छिपाकर खत लिखा था - बहुत मिन्नतों और आँसूओं से भरा हुआ । पहले कभी कभी बहन सुषमा के पत्र में ही दो पंक्तियाँ लिख देती थी - कैसे हो, कब लौटोगे ? बाद में सुषमा के पत्र भी आने बन्द हो गये ।"[3] विदेश में अब वह नितान्त अकेला है और इस अकेलापन का मूल कारण मीरा को स्वीकार करने का उसका स्वतन्त्र निर्णय है । शादी के पहले "जाले" का प्रो. राजेश्वरसिंह को कभी यह महसूस नहीं हुआ कि वह जीवन में अकेला है । इसके घर का परिवेश भी यह तात्पर्यांकित करता है । प्रोफेसर के मकान के सामने "इधर-उधर गुलाबों की क्यारियाँ थीं, जिनमें तरह तरह के देश-विदेश के दुर्लभ गुलाब फूला करते थे । फीके पीले रंग की पोर्टिको पर ड्रंकेन सोल्जर की लता चढ़ी हुई थी और जब उसमें फूल आते तो दूर सड़क चलते राहियों को

---

1. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 108
2. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 109
3. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 114

भी उसकी गहरी मीठी सुगन्ध आती रहती । जाड़ों में अपने लान पर सुनहरी धूप में गरमी की सुवास-भरी सन्ध्याओं को स्टैण्डर्ड लैम्प के नीचे पाइप पीते हुए राजेश्वर निश्चिन्त बैठे रहते थे । ऐसे अवसरों पर जब कि दूर तक कहीं कोई शब्द न होता, आँखें उठाने पर कुछ दूर यूनिवर्सिटी के ऊँचे गुम्बज, बुर्जियाँ और मीनारें अँधेरे में अस्पष्ट छायाकृतियों-सी दिखाई देतीं । राजेश्वर पर एक अनुभूत, अनिर्वचनीय सन्तोष की भावना छा जाती ।"[1] लेकिन विवाह के बाद स्थिति बदलती है । पत्नी कौमुदी की इच्छानुसार उसे जीना पड़ता है और हर समय उसे लगता है कि उसके शरीर का अंग विच्छेद होता है । अपना अजनबीपन आसपास के परिवेश में भी वह देखता है । "विवाह के पाँच-छह महीने बाद राजेश्वर अपनी खिड़की पर खड़े होकर बाहर देखता है तो कहीं-कहीं एक-दो हौली हाक्स के लंबे पेड़ धूल भरे लाल फूलों को लिये खड़े दिखाई देते हैं । किनारे दो-तीन तूरजमुखी के पेड़ अपने आप उग आते हैं और उनके चटक फूल राजेश्वर को उदासीन काली आँखों से देखते हैं । उसे सान्ध्यसूर्य की अन्तिम किरणों में सभी कुछ बहुत उदास लगता है ।[2]

"दो अँधेरे" की कौशल्या को कष्ट सहना मंजूर है । पति के वेतन को सोच-समझकर वह खर्च करती है । रात में दिनेश आता है, खाने के बाद सो जाता है तो शोर न मचाकर कौशल्या बर्तन धीरे-धीरे धोती है । "उस समय कौशल्या का मन अंजलि भर चाँदनी के लिए, हवा के एक ठण्डे झोंके के लिए, दो बात प्यार के लिए तड़पता

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - जाले - उषा प्रियंवदा - पृ. 32
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - जाले - उषा प्रियंवदा - पृ. 42

रहता है ।"[1] विवाह में सारे कपडे फट जाने पर भी वह शिकायत नहीं करती । "चार सालों में वह अपने ऊपर कुछ भी खर्च न करती और तब भी वह निश्चय करती है कि घर में मोटी, पुरानी ही धोतियाँ पहनती रहेगी, कौन देखनेवाला है, बाहर जाने को साड़ियाँ तो हैं ही । यद्यपि जब कहीं जाना हो तो शादी की बनारसी साड़ी पहनने में झेंप-सी लगती । कई बार दिनेश कपडे खरीद लेने को कहता भी, पर वह टाल जाती । अभी तो खाने की मेज़ और कुर्सियाँ बाकी थीं । कुछ क्राकरी लेने का भी इरादा है, किसी को अगर बुलायेंगे तो खिलायेंगे किसमें ।"[2] ऐसी पत्नी से पति विश्वासाघात करता है । कँवल से संबन्ध रखने की वजह से कौशल्या अपने को अकेली पाती है और दिनेश से तन-मन से दूर रहती है । "दृष्टिदोष" की चन्द्रा के वैवाहिक संबन्ध में अलगाव उत्पन्न करने का हेतु परिवेश बदलाव है । पति-गृह के भिन्न परिवेश में आ जाने पर चन्द्रा उससे एडजस्ट नहीं करती, तो विवश हो जाती है । "साम्ब का परिवार पूर्ण रूप से भारतीय है । वहाँ की बहूयें घर का काम करती हैं, सास की आज्ञा सिर आँखों पर रखती हैं । चन्द्रा को ऐसे घर आकर लगता है कि उसकी दुनिया उलट-पलट जाती है । वहाँ बेड-टी का तो प्रश्न ही नहीं है और सुबह का नाश्ता नौ बजे होता है । चन्द्रा को वहाँ की हर चीज़ खटकती है, हर बात पीडा देती है ।"[3] चन्द्रा ने सांब का जो काल्पनिक चित्र बनाया था, उससे साम्ब भिन्न था । साम्ब को रोज़-रोज़ क्लब या पार्टियों में जाना अच्छा नहीं लगता । चन्द्रा अपने में घुटती रहती है, कुढ़ती रहती है । सास का स्नेह, ननदों का आदर

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अंधेरे - उषा प्रियंवदा - पृ. 99
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अंधेरे - उषा प्रियंवदा - पृ. 99-100
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

और साम्ब का असीम प्यार उसे दम घोटता है । साम्ब से विवाह कराने के बाद चन्द्रा के माँ-बाप को लगता है कि ऐसे परिवार से संबन्ध स्थापित करके उन्होंने भूल की है । कारण यह है कि साम्ब और चन्द्रा के माँ-बाप में बहुत अन्तर है । चन्द्रा सोचती है कि "उसके सीधे सरल तत्पर और उच्च पदाधिकारी पिता, उनकी मोटी, अधेड सास और बिना बाँहों की ब्लाउज़ पहने, कटे हुए बालोंवाली माँ में आकाश-पाताल का अन्तर है ।"[1] इतना ही नहीं, चन्द्रा की माँ, बेटी से कहती है - "डार्लिंग, हम लोगों से बडी भूल हो गयी । शादी से पहले अच्छी तरह देख-भाल लेते । ऐसे ज़ाहिल गँवार लोगों से तुम्हारी कैसे पट सकती है ।"[2] चन्द्रा यह सुनकर दुखी हो जाती है । अपने परिवार से अलग होकर रहने की बात साम्ब सोच न सकता । अतः दोनों परिवारों के बीच चन्द्रा घुटती रहती है । वैवाहिक संबन्ध में अलगाव भी उत्पन्न हो जाता है । "स्वीकृति" की जपा को पति अपरिचित व्यक्ति है । विवाह के बाद वह दो दिन भी चैन से न बिता सकती । उसे तीसरे दिन से ही पासपोर्ट और वीज़ा के चक्कर में लग जाना पडता है । विदेश में वास से संबन्ध स्थापित करने पर सत्य और जपा के बीच की अजनबी स्थिति अधिक दृढ हो जाती है । सत्य रात में गहरी नींद में सोते समय जपा जागकर छत के अँधेरेपन को ताकती है । साथ रहने पर भी सत्य यह जानने का प्रयत्न नहीं करता । इसलिए जपा को लगता है कि वे दोनों एक दूसरे से अपरिचित हैं । सत्य के साथ वाशिंगटन द्वीप जाते वक्त जपा काँपती है । सत्य के साथ कुछ समय एकान्त में बिताने का

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 122
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दृष्टिदोष - उषा प्रियंवदा - पृ. 122

विचार उसे बड़ा-अजीब-सा लगता है । "एडवेंचर की सारी भावना उसमें से लुप्त हो जाती है । ठीक पाँच वर्ष पूर्व सत्य से विवाह करके विदेशयात्रा करते समय जो रोमांचपूर्ण आह्लाद उस पर छाया था, वह जपा के दिल से दूर हो जाती है ।"[1] जपा को अपना पति आकर्षक लगता है और सोचती है कि यदि किसी नारी को इस तरह की सुन्दरता पसन्द हो तो वह उसके रास्ते से हट जाती । अपनी दृष्टि के इस ठण्डेपन और निरपेक्षता पर उसे आश्चर्य होता है । दोनों के बीच के अजनबीपन की वजह से पति के प्रति विवाहित पत्नी की दृष्टि, अन्य पुरुष के प्रति केवल एक स्त्री की दृष्टि में परिणत हो जाती है । कभी-कभी वह पति की ओर एक उडती दृष्टि डालकर मुँह दूसरी ओर कर लेती है । दोनों के बीच इस यात्रा के अवसर पर भी केवल औपचारिक बातें होती हैं । जपा को मालूम है कि सत्य का वैज्ञानिक मन प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित या द्रवित नहीं होता । "उसके लिए आकाश केवल आकाश मात्र है, मिशिगन सागर केवल अतुल जलराशि, जबकि जपा के लिए ठंडी बालू में हाथ गाड़कर अंजुलि भर-भरकर बालू के कण फिसलने देना, या भर-भर आती लहरों में पाँव जमाकर खड़े होना, या फिर असीम आकाश के नीचे बाँहें खोलकर खड़े रहना एक अननुभूत अनुभव बन जाता है ।"[2] दोनों की रुचियों में इस प्रकार की भिन्नता है । इतना ही नहीं, पति का स्पर्श भी पत्नी को अपरिचित लगता है ।

"ट्रिप" में सोनी का अकेलापन चित्रित है । सोनी का पति नशीले पदार्थों का उपयोग करता है और पत्नी को मनमानी जीवन

---

1. कितना बड़ा झूठ - स्वीकृति - उषा प्रियंवदा - पृ. 83
2. कितना बड़ा झूठ - स्वीकृति - उषा प्रियंवदा - पृ. 92-93

जीने का स्वातन्त्र्य भी देता है । "घर के काम जैसे स्टोव पर सुबह चाय-नाश्ता तैयार करना, अपने कमरे को खुद साफ़-सुथरा रखना, कमीज़ें स्वयं लाण्ड्री में देना और लेना आदि सोनी का पति स्वयं करता है । वह बहुत आत्मनिर्भर व्यक्ति है । लेकिन उसमें रोमांस की कमी है ।"[1] इसलिए सोनी दुखी है । इसके अलावा पति बच्चों को बोर्डिंग में रख देता है । बच्चों के चले जाने पर सोनी अकेली पड जाती है । उसे गाली बकना भी नहीं आता । वह घर में बन्द, चुपचाप पडी रहती है । "प्रतिध्वनियाँ" की वसु का श्यामल के साथ का विवाह बन्धन एक "मीनिंगलेस-सी रस्म"[2] है । बेटी रुचिरा का जन्म भी वसु को एक "बायलॉजिकल घटना"[3] से अधिक नहीं । तलाक के बाद पति से मिलने पर वसु दुःखी होती है क्योंकि दोनों के बीच औपचारिकता की दीवारें खींची गई है । श्यामल से खुलकर बातें करने में वह असफल हो जाती है । श्यामल के सामने वह एक अजीब छटपटाहट की स्थिति में रहती है । बहुत चाह होने पर भी वह श्यामल से शारीरिक संबन्ध रख न सकती क्योंकि श्यामल के लिए वह अजनबी बन चुकी है । बेटी रुचिरा को वसु एकदम अनजान नहीं । बल्कि माँ-बेटी के बीच भी अपरिचय का उदय हो रहा है । बेटी अक्सर वसु को "आप" शब्द से संबोधित करती है, माँ शब्द से नहीं । कई दिनों के बाद मिलने पर भी बेटी को माँ के पास सोने का आग्रह नहीं । उसे माँ की उतनी परवाह नहीं जितनी अन्य बन्धुजनों की । इसलिए वह श्यामल से कहती है - "मैं कनक जीजी के पास सो जाऊँगी । डैडी,

---

1. कितना बडा झूठ - ट्रिप - उषा प्रियंवदा - पृ. 60
2. कितना बडा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 29
3. कितना बडा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 37

अब तो हम जाने ही वाले हैं । समय कितना कम है । कनक जीजी से मुलाकात फिर साल भर नहीं होगी ।"[1] "मोहबन्ध" का राजन पत्नी नीलू के होते हुए भी अकेला है । क्लब और विमेन्स लीग की मीटिंग में शामिल करने तथा कल्याण कार्य के लिए किसी पिछडे हुए गाँव में जाने के कारण पति पर वह ध्यान नहीं देती । इसलिए राजन अचला से कहता है - "नीलू इतनी व्यस्त रहने लगी है कि मैं अक्सर बिलकुल अकेला रह जाता हूँ । मुझे लगता ही नहीं कि घर में मेरी पत्नी भी है ।"[2]

प्रेमी से बिछुडने पर अलगाव

प्रेमी के तिरस्कार से अजनबी बननेवाली नारियों पर भी उषा प्रियंवदा प्रकाश डालती हैं । अक्षय के छोड जाने पर "कोई नहीं" की नमिता ज़िन्दगी में अकेली हो जाती है । कुंवारी रहकर वह अकेलापन को झेलती है । समाज से कटकर रहनेवाली इस नारी को ऋतु परिवर्तन का पता भी नहीं चलता । पहली तारीख को वेतन का चेंक मिलने पर उसे महीने का बोध होता है । ज़िन्दगी के कटु अनुभव उसे अजनबी बनाते हैं और वह उकताहट भरे दिनों को बीतती है । फिर भी इस अकेलापन से मुक्त होकर वह अपने व्यक्तित्व को पहचानने का प्रयत्न करती है । अक्षय से पुनर्मिलन होने पर इसलिए वह अपने से कहती है - "मैं ऐसे भाग आयी थी जैसे अक्षय की उपस्थिति मेरे लिए अचानक ही असाध्य हो उठी हो ।"[3] बीती हुई आँसूओं और निद्राहीन रातों

---

1. कितना बडा झूठ - प्रतिध्वनियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 39
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 23

की स्मृति वह पीछे ठेल देती है और अक्षय की ओर मुस्कुराकर देखती है । अपने जीवन की विसंगति को लक्ष्य करके नमिता अक्षय से कहती है - "साल के साल बीतते चले जाते हैं । स्पोर्ट्स, कनवोकेशन, इम्तहान, छुट्टियाँ सभी नियमित रूप से होता रहता है । नोट्स पीले पड जाते हैं । फिर भी हम वही पढाये चले जाते हैं । इस जीवन में कोई गति नहीं बची । होस्टल से कोई लडकी भाग गई, किसी लडके ने आत्महत्या कर ली, किसी अध्यापक को लेकर कोई स्कैंडल हो गया, यही हमारी ज़िन्दगी के हाईलाइट्स बचे हैं ।"[1] जीवन की यान्त्रिकता उसे अजनबी बनाती है । प्रेमी के तिरस्कार के बाद "मोहबन्ध" की अचला स्वेच्छा से अकेलापन का वरण करती है । प्रेमी देवेन्द्र की धोखा के बाद वह इतनी अकेली हो जाती है कि किसी दूसरे पुरुष को स्वीकार करने के लिए भी वह तैयार नहीं होती । राजन के प्यार की परवाह न करके वह जीती है । उसे अकेलापन से मोह हो जाता है । इसलिए अचला स्वीकार करती है कि "अब वह कुछ महसूस नहीं कर पाती - साँसें आती हैं, दिल धडकता है, पर ज़िन्दगी समाप्त हो गयी है ।"[2] "कितना बडा झूठ" की किरन प्रेमी मैक्स की शादी का खबर सुनकर निराश हो जाती है । वह अपने को अजनबी समझने लगता है क्योंकि मैक्स के स्पर्श से वंचित रह जाने की कल्पना वह नहीं कर सकती ।

स्वदेश और परिवार छोडने पर अलगाव

परिवेश से जुडे रहने में असमर्थ होने पर कभी कभी व्यक्ति

---

1. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 57-58
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - पृ. 15

अकेला हो जाता है । "सागर पार का संगीत" की देवयानी की स्थिति यही है । उसके माँ-बाप बड़ी उमंग से प्रकाश के साथ देवयानी का विवाह रचाते हैं । लेकिन भावावेश में देवयानी विदेशी पुरुष औत्कर के साथ भाग जाती है और उससे शादी करती है । इस निर्णय के कारण उसे बाद में अकेलापन का शिकार बनना पड़ा । एक क्षण की करनी की वजह से वह पति और बन्धुजनों के बीच अपने को अजनबी मानती है और मानसिक विभ्रान्ति की गुलाम बनती है । इसलिए वह कहती है - "और फिर सागर की एक लहर आकर मेरे पैरों को छू ले, फिर एक लहर, फिर एक और लहर - फिर कुछ नहीं, अँधेरा और गीलापन और लहरों का वेग ।"[1] वह सबसे मिसफिट रहती है क्योंकि विदेशी परिवेश से वह एडजस्ट नहीं कर पाती । पति औत्कर की उपस्थिति उसे हर क्षण आवश्यक महसूस होता है । देवयानी अपने को पहचानने का प्रयत्न करती है और कहती है -"कौन हूँ मैं, क्या मैं वही छुई मुई सी देवयानी हूँ, जो इस समय लोक लाज त्याग कर लेक मिशिगन के किनारे बैठी हुई हूँ ।"[2] देवयानी अपनी भारतीयता को अपने व्यक्तित्व से अलग कर फेंक न सकती । इसलिए अपरिचित देश में उसे अकेलापन का अनुभव होता है । वह पति से कहती है - " न जाने मुझे क्या हो गया है । मेरे अन्दर जैसे एक दानव है जो हर घड़ी मुझे नोचा करता है । मैं भटकती हूँ, कुछ खोजती हूँ - कुछ देर काम में मन लगता है फिर उचट जाता है और कुछ अच्छा नहीं लगता, तब मन चाहता है कि रेत में पैर गड़ा दूँ और सागर-तट पर बैठी रहूँ ।"[3]

---

1. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा - पृ. 69
2. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा - पृ. 65
3. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा - पृ. 63

औस्कर के प्यार में उसका जीवन फुलफिल्ड और भरी है । फिर भी वह अकेली है । कभी कभी वह इतनी अकेली हो जाती है कि औस्कर, उसके मित्र सभी बडी दूर लगने लगते हैं जैसे उसके चारों ओर एक शीशे की दीवार आ खडी हुई है ।

नौकरी के लिए परिवारवालों से दूर रहनेवाली "छुट्टी का दिन" की माया भी अजनबीपन की शिकार है । अपने को वह आसपास के लोगों से जुडने में असफल होती है । अजनबी मानसिकता की वजह से शीशे में प्रतिबिंबित उसका आकार स्वयं उसका नहीं, किसी अपरिचित व्यक्ति का है । माया शंका प्रकट करती है कि "वह स्वयं कैसे इतनी थकी, टूटी-सी हो सकती है ।"[1] अजनबीपन से मुक्त होने के लिए वह तरह-तरह के कामों में व्यस्त रहती है । वह अकेले सिनेमा देखने को चलती है । लेकिन "हाल में बैठी माया को लगता कि जिस अकेलापन से बचना चाहकर वह सिनेमा चली आयी थी, उससे निष्कृति कहाँ हुई ?"[2] अकेलापन के कारण वह अपना काम भी ठीक तरह से न करती । उसके कपडे गरम पानी और साबुन में डालने से खराब हो जाते हैं । "एक ब्लाउज़ का पीला और हरा रंग निकलकर दूसरी ब्लाउज़ों और सफेद सिल्क की साडी में लगा गया था । दोष अपना ही था, फिर भी न जाने क्यों उसे रोना आ गया । रेशमी ब्लाउज़ के कच्चे निकल जाने पर और कपडे खराब हो जाने पर नहीं, बल्कि अपनी ज़िन्दगी के पैटर्न पर, उसके खोखलेपन और सारहीनता पर ।"[3] वह सह-अध्यापिकाओं और अपनी नौकरानी से भी

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन - उषा प्रियंवदा -पृ. 45
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन - उषा प्रियंवदा-पृ. 49
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन -उषा प्रियंवदा-पृ. 56

कटकर जीवन बिताती है । अपनी अजनबी स्थिति पर विचार करते हुए वह कहती है - "किसलिए वह घर-बार छोड़कर इतनी दूर आकर पड़ी थी, किसलिए वह सुबह से शाम तक कॉलेज में मगज़-पच्ची करती थी । इसलिए कि ज़िन्दगी के दिन एक-एक करके गुज़रते जायें और हर गुज़रा हुआ दिन उसके जीवन का खालीपन और भी गहरा करता जाये और एक दिन, वह सोचे कि इस जीवन में उसने क्या पाया, तो चले कि वह एक लम्बे अनन्त मरुस्थल की तरह था ।"[1] "मछलियाँ" की विजी स्वदेश और स्वजनों को छोड़कर विदेश में प्रेमी के पास पहुँचती है । मनीश सुकी के चक्कर में पड़ने पर विजी का तिरस्कार करता है । "यह मनीश-सा लापरवाह व्यक्ति ही कर सकता है कि लगातार पत्र लिखकर विजी को भारत से बुलाये और उसके पहुँचने से पहले ही प्रतीक्षा करने से ऊब अकेला मैक्सिको चल दे ।"[2] अपरिचित देश में विजी अकेली बनती है । अकेलापन से पीड़ित विजी रोते हुए सुकी की बनाई पेंटिंग्ज़ दीवारों से उतारकर फाड़ डालती हैं, उसके गढ़े हुए बर्तन ज़मीन पर पटक देते हैं । नटराजन द्वारा झकझोरने पर उसकी आँखों से झर-झर आँसू गिरती हैं और वह नटराजन से कहती है - "मैं यहाँ एक पल भी न रह सकूँगी, मुझे कहीं और जगह ले चलो ।"[3] उसके बाद विजी के चेहरे का सारा प्रकाश बुझ जाता है । इस आघात के कारण विजी को कुछ दिनों तक अस्पताल में रहना पड़ता है । प्रेमी के निर्देशानुसार विदेश परिवेश को अपनाने के प्रयत्न में उसे बन्धु-बाँधवों से दूर, सुबह से शाम तक नौकरी के बाद अकेले सन्ध्या

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन - उषा प्रियंवदा-पृ. 56
2. कितना बड़ा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 106
3. कितना बड़ा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 111

और रात बिताती है । अकेले रहते समय वह सोचती है कि "औरों की तरह सहज-सरल जीवन क्यों नहीं हुआ उसका । कब अजाने ही कुछ ऐसा घट गया जिससे वह औरों से अलग छिटक गई । यदि मनीश पर विश्वास न किया होता तो शायद इस दशा तक न पहुँचती, यदि मुकी-सी कुटिलता आती तो भी आज अकेले यों अपने-से द्वन्द्व न करना पडता ।"[1]

पापबोध से उत्पन्न अकेलापन

"पिघलती हुई बर्फ" का अक्षय पापबोध से अजनबी बन जाता है । सुधीरा अक्षय को मित्र रूप में प्यार करती है । लेकिन अक्षय समझता है कि नये प्रेमी बीरू को मिलने पर वह उसका तिरस्कार करती है । बीरू तो बचपन से ही सुधीरा का प्रेमी रहता है । जान-बूझकर अक्षय प्रतिशोध लेता है । सुधीरा अप्राप्तिज होता है और बीरू की मृत्यु भी होती है । इसके बाद अक्षय विदेश में अपने को अकेला पाता है । इसलिए वह भारत लौटता है । भारत में बन्धुजनों के मध्य रहते हुए भी अक्षय को लगता है कि वह उनके बीच अकेला है । अपनी प्रेमी छवि से भी वह कटता रहता है । उसे तमाम सामाजिक और मानवीय संबन्ध व्यर्थ लगता है । एक उपन्यासकार होने पर भी अब उसे लिखने की कोई दिलचस्पी नहीं । कभी कभी वह आत्महत्या के बारे में सोचता है । वह स्वयं कहता है - "टु मच, दिस बिज़नेस ऑफ लिविंग..... यह बोझ, यह थकान, अब और नहीं, और नहीं । सुधीरा, क्या अन्त में

---

1. कितना बडा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 120

तुम ही जीतोगी ? क्या बीरू के बदले मुझे लेकर ही तुम्हारी आवाज़ चुप होगी ?"[1] यह अकेलापन उसके रातों का नींद नष्ट कर देता है और अपने अस्तित्व को समझने से रोकता है । अब उसे अपने आपको स्वीकार कर लेने की शक्ति और सहजता नहीं । इसलिए वह कहता है - "अब मैं वह "मैं" नहीं हूँ । मैं कोई और हूँ, जिसे मैं स्वयं स्वीकार नहीं कर पाता ।"[2] "चाँद चलता रहा" की रोहिनी भारतीय परिवेश में पली हुई है । इसलिए शारीरिक संबन्ध रखने के अरविन्द की इच्छा को वह स्वीकार नहीं करती । मगेतर अरविन्द की आकस्मिक मृत्यु के बाद यथार्थ जीवन जीने के बजाय वह अपने व्यक्तित्व और चारित्र्य को नष्ट करके अरविन्द के प्रति उसका प्यार व्यक्त करती है । वह समझती है कि अरविन्द की मृत्यु के बाद वह अकेली हो गयी । कई पुरुषों से संबन्ध रखकर इस अलगाव को वह दूर करती है और अपने से बदला लेती है । एक अवसर पर वह विनय से कहती है - "मुझे अकेले ही जीना है विनय । जो कुछ मैं ने तुम से कहा, उसे प्रलाप समझकर भूल जाओ ।"[3] विनय जैसे पुरुषों के विवाह प्रस्ताव को ठुकराकर वह अपने द्वारा बनाये गये अकेलापन के घेरे में जीना चाहती है । वह समझती है कि अरविन्द के आग्रह को तिरस्कार करके उसने पाप किया । सच तो यह है कि रोहिनी अरविन्द को बहुत चाहती थी । इसलिए वह कहती है - "मैं बचपन से ही उनका बडा आदर करती थी और चुपके उनके बारे में सोचा करती थी, सपने देखा करती थी । जब मुझसे विवाह करना

---

1. एक कोई दूसरा - पिघलती हुई बर्फ - उषा प्रियंवदा - पृ. 81
2. एक कोई दूसरा - पिघलती हुई बर्फ - उषा प्रियंवदा - पृ. 90
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - चाँद चलता रहा- उषा प्रियंवदा-पृ. 115

उन्होंने स्वीकार कर लिया तो मैं हर्ष और लाज-संकोच से भर उठी । मुझे उनका परिवार बहुत पसन्द था । मुझे लगा कि उनकी माँ में मैं अपनी खोयी हुई माँ पा लूँगी, उनके भाई-बहन मेरे अकेले बचपन के अभावों की पूर्ति कर देंगे । मैं उन दिनों की कल्पना में खोयी रहने लगी जब कि मेरे शरीर पर मोती और पन्ने के आभूषण होंगे, जबकि मैं अरविन्द के साथ, उनकी कार पर घूमने निकला करूँगी ।"[1] पापबोध से पीड़ित रोहिनी अरविन्द की मृत्यु के बाद यह मानती है कि किसी को प्यार करना अपने को ही दुख देना है । प्यार में दुख के सिवा और कुछ नहीं ।

आर्थिक कमी से उत्पन्न घुटन

समाज की परंपरागत रूढ़ियों के बीच भारतीय नारी आज भी सिसकती है । "कच्चे धागे" में इसका अंकन हुआ है । प्रस्तुत कहानी की कुन्तल नामक लड़की पड़ोसी दीदी के प्यार से आकर्षित होती है और उसके भाई सिद्धार्थ से प्रेम करती है । "कुन्तल को कभी कभी सिद्धार्थ की एक झलक मिल जाती, यों लगता कि जैसे आँगन में इन्द्रधनुष निकल आया है । सिद्धार्थ उसी तरह मोहक और अप्राप्य था । अगर कभी आमना-सामना हो जाता तो वह नमस्ते कर देती, और कभी कभी बरामदे में, कभी छज्जे में आड़ में खड़ी रहती और देखती रहती ।"[2] अन्दर ही अन्दर वह सिद्धार्थ से शादी करना चाहती है और दलाल

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - चाँद चलता रहा - उषा प्रियंवदा- पृ. 112
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 61

गजाधर बाबू इस शादी के लिए अधिक उत्साह दिखाता है । यह खबर पाकर कुन्तल के रोम-रोम में सिहरन होती है । पहले कुन्तल कभी भी चूड़ी नहीं पहनती थी । लेकिन अब दोनों हाथों में आधी-आधी दर्जन चूड़ियाँ पहनती है । "कुन्तल के बक्स में केवल एक तांबित और साफ धोती थी, जिसे न जाने किस दिन की आशा में वह सहेज कर रखे थी । बड़े उत्साह से कुन्तल ने बाल्टी में रंग घोला और हल्के पीले रंग में धोती रँगकर तार पर डाल दी ।"[1] कई दिनों के बाद पिता उमाशंकर बेटी को गीत गुनगुनाती हुई देखता है । कुन्तल को लगता है कि आसपास का परिवेश भी प्रफुल्लित हो जाता है । इसलिए वह समझती है कि "आँगन में लगे बेल के पेड़ों में दो नन्ही-नन्ही कलियाँ चिकने हरे पत्तों से सटी हुई, धीरे-धीरे अपनी पंखुड़ियाँ खोल रही हैं ।"[2] लेकिन लड़कीवालों के विवाह प्रस्ताव को दीदी मानती नहीं । "उसको खूबसूरत लड़की चाहिए । लड़की का रंग साफ, नाक-नक्शा सुन्दर होना चाहिए ।"[3] सच यह है कि कुन्तल के परिवार की गरीबी की वजह से ही दीदी उसका तिरस्कार करती है । इससे कुन्तल के दिल पर चोट लगती है । "कुन्तल के भाइयाँ खेलकर आते हैं तो बरामदे में मीने की सतरंगी चूड़ियों के तमाम छोटे-छोटे टुकड़े बिखरे पड़े हैं । किलककर वे पूछते हैं - "हाय, जीजी, कैसी सुन्दर चूड़ियाँ हैं, किसकी थी ? कैसे टूटी ?"[4] वास्तव में समाज की कठोरता के कारण कुन्तल रूपी चूड़ियों की टूटन होती है ।

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 64
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 62-63
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 65
4. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कच्चे धागे - उषा प्रियंवदा - पृ. 65

निष्कर्ष

आधुनिक समाज की यान्त्रिकता की वजह से मानव अपना अस्तित्व खो बैठता है । वह मशीनी समाज के अनुरूप चलने को विवश हो जाता है । अस्तित्वरहित मानव अपने को अजनबी मानता है । स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में ज़िन्दगी से ऊब मानव की विसंगति, तनाव और अजनबीपन को चित्रित किया गया है । शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने पर व्यक्ति स्वतन्त्र अस्तित्व चाहता है और इस प्रयत्न में उसे अकेलापन का एहसास होता है । उषा प्रियंवदा ने अपने कथा-साहित्य में इस तथ्य पर प्रकाश डाला है ।

पाँचवाँ अध्याय

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की शिल्पगत विशेषताएँ

कथाकार के वैशिष्ट्य का आधार शिल्प है । यह लेखक के व्यक्तित्व का आईना है । शिल्प के क्षेत्र में नया कथा-साहित्य अपने स्वरूप में प्रेमचन्द युगीन कथा-साहित्य से प्रभावित है । वस्तुगत प्रयोग और यथार्थ की पकड की दृष्टि से प्रेमचन्दकालीन कथा साहित्य नये कथा-साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है । प्रेमचन्दोत्तर युग में अज्ञेय और जैनेन्द्र ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की । उन्होंने व्यक्ति मन के द्वन्द्व को प्रदर्शित करनेवाली घटनाओं पर ज़ोर दिया । बाकी को काट-छाँटा । नये कथाकार के लिए यह पूर्णत: स्वीकार्य नहीं । इसलिए वे प्रेमचन्द युगीन शिल्प के अनुसार लिखने लगे । फिर भी परिस्थिति बदलाव के कारण नये कथा-साहित्य में कुछ नये प्रयोगों का उल्लेख मिलता है । पूर्ववर्ती परंपरा से अटूट संबन्ध होते हुए भी स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य का शिल्प के क्षेत्र में अपना एक अलग अस्तित्व है । बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप जीवनानुभवों को व्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति पक्षों में भी बदलाव की ज़रूरत है । नयी कहानी में शिल्प बाह्य उपकरण नहीं है, वह आन्तरिक संवेदना का अभिन्न अंग है । "नयी कहानी में शिल्प का प्रयास सायास नहीं है, वह वस्तु की आन्तरिक विवशता का परिणाम है । नये शिल्प से कथाकार की वस्तु दृष्टि का लगातार योग रहता है ।"[1] "जीवन की किसी छोटी सी छोटी घटना में अर्थ का रेशा-रेशा उघाडता हुआ यह

---

1. नई कहानी - शिल्प विधान - भाषा त्रैमासिक, सितंबर 1981 - डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण - पृ. 30

लेखक के किसी विचार सत्य को इस तरह सामने रख देता है, जैसा कि उसने कुछ कहा ही न हो और सच तो यह है कि सब कुछ वह कहानी में ही कह जाता है ।"[1] कहानी के अविभाज्य तत्वों को टुकडा करके उसे विभाजित करना असंभव नहीं । इन तत्वों के एकत्रीकरण से कहानी प्रभावमय बनती है । कहानी के कथानक, चरित्र, कथोपकथन, वातावरण, शैली सभी तत्व एक दूसरे से जुडे हुए हैं ।

कथानक का ह्रास

कथानक कथा-साहित्य का प्रमुख तत्व है । बदलते अभिव्यक्ति पक्षों में कथानक का ह्रास एक उल्लेखनीय बात है । नये कथाकार का लक्ष्य अपने अभीष्ट विचार की अभिव्यक्ति है । वे इसके लिए उपयुक्त घटना प्रसंग का उपयोग करते हैं । यह कथानक कभी कल्पित और अविश्वसनीय होता है, कभी वास्तविक । "कथानक अपनी क्रमबद्धता, एकतमता और वर्णनात्मकता से आगे बढकर मानसिक सूत्रों, मनोवैज्ञानिक चक्रों, सूक्ष्म घटनाओं, मनोद्वेगों के मध्य से निर्मित होकर स्फुट रेखाचित्रों, टुकडों और तार्किक रूपों में कभी कभी इतने व्यापक हो गये हैं कि उनमें जीवन के लंबे-लंबे भाग विस्तृत समस्याएँ संगुंम्फित हो गई हैं ।"[2] जीवन की एक छोटी-सी घटना, विचार और विशिष्ट का चरित्र आज कथानक

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्निहोत्री - पृ. 93
2. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. 295

बन गया है । उषा प्रियंवदा के उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें", "रुकोगी नहीं राधिका", "शेष यात्रा" में इस पद्धति को अपनाया गया है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में शून्यता की भावना से परिपूर्ण सुषमा की ज़िन्दगी में नील के प्रवेश से कैसा बदलाव आ जाता है - इसको वाणी देने का प्रयत्न है । "रुकोगी नहीं राधिका" में माँ की मृत्यु के अठारह वर्ष बाद घटित पिता की दूसरी शादी से उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ चित्रित है । "शेष यात्रा" में परिस्थिति बदलाव के अनुसार अनुका के जीवन का क्रमिक विकास अंकित है । उषा प्रियंवदा की अधिकतर कहानियाँ नारी मन से संबन्धित है । उनमें कथानक जैसे तत्व को ढूँढना व्यर्थ है । "कहानी में जो चीज़ पहले कथानक नाम से जानी जाती थी, उसमें कहीं न कहीं मौलिक परिवर्तन हुआ है । इसे यों भी कह सकते हैं कि कथानक संबन्धी धारणा बदल गई है । किसी समय मनोरंजक नाटकीय और कुतूहलपूर्ण घटना संघटना को ही कथानक समझा जाता था और आज घटना संघटना इतना विघटित हो गया है कि लोगों को अधिकांश कहानियों में "कथानक" नाम की चीज़ मिलती ही नहीं । इसी को लोग कथानक का ह्रास कहते हैं । परन्तु वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं बल्कि कथा का हुआ है ।"[1] लेखिका की कहानियों के कथ्य बदलते स्त्री-पुरुष संबन्ध, जीवन मूल्यों का बदलाव, आधुनिक नारी की विभिन्न समस्याएँ हैं । व्यक्ति के जीवन की एक छोटी-सी घटना को लेकर लिखित कहानियाँ "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" नामक संग्रह में उपलब्ध हैं । "पैरम्बुलेटर" में बच्चे का जन्म, "जाले" में प्रोफेसर राजेश्वर की शादी और "चाँद चलता रहा" में

---

1. कहानी - नयी कहानी - डॉ. नामवरसिंह - पृ. 20-21

अरविन्द की मृत्यु को केन्द्र में रखकर कहानियाँ आगे बढ़ती हैं । "एक कोई दूसरा" और "कितना बड़ा झूठ" नामक संग्रहों में कथानक बदलते स्त्री-पुरुष संबन्ध है । कथानक के ह्रास से कहानी-कला का महत्व बढ़ता है क्योंकि वह स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा करके अनुभूतियों एवं मनःस्थितियों का उद्घाटन करती है । वह सामान्य और अकिंचन क्षणों को भी सामने रखती है । विशिष्ट संवेदनशील क्षणों का सूक्ष्म अंकन "कोई नहीं" में मिलते हैं । व्यक्तिगत अनुभूतियों के साथ ही कथाकार व्यापक मानवीय अनुभूति और जीवन सत्यों को व्यक्त करते हैं ।

पात्र-योजना

व्यक्तित्व संपन्न और सजीव पात्रों को चित्रित करना उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषता है । पात्रों की संवेदनाओं के उत्थान-पतन, घात-प्रतिक्रिया का सुन्दर चित्र लेखिका पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हैं । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में सुषमा का चरित्र चित्रण इस सत्य की ओर संकेत देता है कि घर का बड़ा सन्तान होने के नाते सुषमा परिवार का बोझ उठाने के लिए तैयार है । आधुनिकता से संपृक्त होने पर भी लेखिका सुषमा को परंपरा का पालन करनेवाली भारतीय नारी के रूप में रेखांकित करती हैं । पात्रों की सृष्टि करते समय कालेज की सह-अध्यापिकाओं और छात्राओं को ऐसा रूप देती हैं कि उससे आधुनिक युग के मानवीय संबन्धों का खोखलापन व्यक्त हो जाता है । नारी पात्रों में सुषमा की माँ का रूप नफ़रत उत्पन्न करने

लायक है । लेकिन माँ की ममता का तस्वीर उपन्यास के अन्त में चित्रित है । सुषमा की माँ को बेटी के दुःखों का पता है । इसलिए वह बड़े द्रवित कंठ से रोनेवाली सुषमा से कहती है - "चुप हो जा बेटा - क्या मैं तेरा दुख समझती नहीं ? आखिर माँ हूँ ।"[1] यहाँ लेखिका माँ का यथार्थ रूप अनावृत करती हैं । मुख्य पुरुष पात्र नील का अंकन सुषमा के पूरक के रूप में हुआ है । लेखिका सुषमा की समस्याओं और उसकी सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने के लिए एक निमित्त के रूप में नील को प्रस्तुत करती हैं । "रुकोगी नहीं राधिका" में उषा प्रियंवदा राधिका के चरित्र को विशेष महत्व देकर इस यान्त्रिक युग में अजनबीपन की शिकार होनेवाली नारी को कथ्य बनाती हैं । वह, उसकी दृष्टि में जो ठीक है, उसका अनुसरण करती है । बेटी की ओर से पराया जैसा व्यवहार मिलने पर भी उसके पिता और विधा बेटी के जीवन क्रम को अपने आज्ञानुसार बदलना नहीं चाहते, बल्कि उसे पूरी स्वतन्त्रता देते हैं । लेखिका इन पात्रों के द्वारा यह व्यक्त करती हैं कि आज के माँ-बाप शिक्षित बच्चों को अपनी पकड़ में रखना नहीं चाहते, स्वतन्त्रता से जीने का मौका देते हैं । पुरुष पात्रों में भारतीयता का पुट देकर अक्षय को चित्रित करती हैं । परदेश में एक अपरिचित पुरुष के साथ रहने के बाद स्वदेश लौटनेवाली राधिका के चारित्र्य पर अक्षय शंका प्रकट करता है । भारतीय संस्कृति को मान्यता देनेवाले पुरुष का स्वरूप यहाँ उभरता है । मनीश इसके विपरीत है । स्त्रियों के बाह्य सौंदर्य को महत्व देनेवाले मनीश का रूप सचमुच पाश्चात्य सभ्यता को

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 123

प्रस्तुत करता है । राधिका के भाई का चरित्र धनार्जन के लिए व्यग्र नयी युवा पीढी का सच्चा रूप सामने रखता है । "शेष यात्रा" में उषा प्रियंवदा अनुका और प्रणव के चरित्र पर अधिक ज़ोर देती हैं । अपरिचित देश में भी तमस्याओं को पार करके एक नयी ज़िन्दगी की शुरूआत करनेवाली सीधी-सादी यह भारतीय युवती नारी शक्ति के स्वरूप को उद्घाटित करती है । विदेशी सभ्यता के अनुकूल सृजित पात्र है प्रणव । इसलिए उसका कई स्त्रियों से संबन्ध है । प्रणव को इस प्रकार चित्रित करने के पीछे लेखिका का उद्देश्य यह है कि पुरुष के बिना भी नारी को एक अर्थपूर्ण जीवन बिताना असंभव की बात नहीं । अतः प्रणव के चरित्र के द्वारा लेखिका अनुका के चरित्र को उज्वल बनाती हैं । यहाँ भी पुरुष पात्र एक साधन है । अन्य पात्रों में दिव्या और दीपांकर के चरित्र उल्लेखनीय हैं । प्रणव के छोड जाने के बाद दुःखी अनुका को धैर्य देकर दिव्या उसे पुरानी हालत में लाती है । इसलिए वह अनुका से पूछती है -"तुम्हारा आत्मसम्मान कहाँ है अनु ? तुम ज़िन्दगी भर अपने को पायदान बनाये रखोगी कि प्रणव तुम्हें खूँदता रहे ।"[1] यह तो बडी बात है कि पति द्वारा तिरस्कृत नारी अनुका को दीपांकर स्वीकार करता है । लेकिन अनुका से शारीरिक संबन्ध रखते समय दीपांकर के अन्दर का शंकाग्रस्त पुरुष अनुका के चारित्र्य पर शंका प्रकट करता है और पूछता है- "एक बात पूछूँ- बुरा तो नहीं मानोगी ? प्रणवकुमार के बाद मैं पहला नहीं हूँ न ।"[2] इस संदर्भ में उस पात्र के प्रति श्रद्धाभाव नष्ट हो जाता है । उषा प्रियंवदा की कहानियों के पात्र हमारे आसपास के लोग हैं ।

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 77
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 123

वे इस यान्त्रिक जीवन के ऊब और संत्रास से मुक्ति पाने के लिए तड़पते रहते हैं । "छुट्टी का दिन"की माया, "वापसी" का गजाधर बाबू, "कच्चे धागे" की कुन्तल जैसे पात्र जीवन की कड़ुवाहट से निराश हो जाते हैं । दाम्पत्य जीवन की समस्याओं की वजह से "दृष्टिदोष" की चन्द्रा, "दो अंधेरे" की कौसल्या, और "पैरम्बुलेटर" की कालिन्दी दुखी हैं । "एक कोई दूसरा" नामक संग्रह के नारी पात्र स्वतन्त्र अस्तित्व चाहते हैं । "झूठा दर्पण" की अमृता, "एक कोई दूसरा" की नीलांजना इसके लिए उदाहरण हैं । "कितना बड़ा झूठ" "संबन्ध" जैसी कहानियों में प्रेमी-प्रेमिका के चरित्र का उद्घाटन होता है । "स्वीकृति" की जया और "मछलियाँ" की विजी परदेश में निसफिट नारी पात्र हैं । चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं को अनावृत करके उसे अपनी परिस्थितियों के संदर्भ में प्रस्तुत करने का ढंग "मछलियाँ" में देख सकते हैं ।

संवाद

संवाद या कथोपकथन रचना को नाटकीयता प्रदान कर उसे प्राणवान बनाता है । संवादात्मक शैली में अभिनयात्मक ढंग से या संलापों के द्वारा प्रत्येक चरित्र का विकास होता है । वस्तु का रूप इन संलापों से निर्धारित होता है । इस तरह की कहानियों में कथानक और चरित्र-चित्रण का अपूर्व संतुलन देख सकते हैं । उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में सहज, स्वाभाविक पात्र तथा प्रसंगानुकूल कथोपकथन का चयन हुआ है । लेखिका जो कुछ भी बताना चाहती, कथोपकथन में

उसकी झलक मिलती है । उनके उपन्यासों और कहानियों में लंबे लंबे संभाषण नहीं देख सकते । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में तुषमा और नील के वार्तालाप में यह द्रष्टव्य है । घर से लौट आने पर रेलवे स्टेशन में नील तुषमा की प्रतीक्षा करता है । वह तुषमा के साथ उसके निवासस्थान जाना चाहता है । इसलिए वह तुषमा से हठी बच्चे की तरह कहता है - "मैं भी चलूँगा ।" वह चौंकी, "आप कहाँ से आ गये ?" पीछे पीछे तो आ रहा था । एक बार भी मुड़कर आपने नहीं देखा । "मैं कहे देता हूँ, चाहे नाराज़ हों । मैं भी चलूँगा ।" "वहाँ तक चलेंगे, फिर लौटकर आएँगे ?" तुषमा ने पूछा ।" हाँ, इतनी रात को मैं सात-आठ मील अकेले नहीं जाने दूँगा ।"[1]

"रुकोगी नहीं राधिका" और "शेष यात्रा" में संक्षिप्त कथोपकथन प्रस्तुत करके संवादों में संदर्भोचित गांभीर्य लाने का प्रयत्न हुआ है । उदाहरण के लिए - "राधिका ।" अक्षय ने बड़े अनुनय भरे स्वर में कहा, "तुम मेरे साथ चलोगी ? मेरे साथ रहोगी ? मैं तुम्हें " अक्षय के होठों पर राधिका का हाथ आ पड़ा ।

"मैं नहीं चाहती कि जल्दबाजी में तुम अपने को कमिट करो अक्षय ।" राधिका ने कहा ।[2] "शेष यात्रा" की दिव्या के कथन में भी गांभीर्य की एक झलक है - "प्रणव ने जो कहा, उसे वेद वाक्य की तरह मत मानो । न उसे खंजर की तरह सीने में ही गड़ाए रखो ।"[3]

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 43
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 119

वातावरण

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में प्रसंगानुकूल वातावरण का रूपायन हुआ है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में लेखिका अध्यापिका के जीवन परिवेश को व्यक्त करने के लिए विद्यालय, छात्रावास तथा छात्राओं और सह-अध्यापिकाओं से युक्त वातावरण प्रस्तुत करती हैं । प्रेम संलाप के अवसर पर रेस्त्राँ और निवासस्थान के एकाकी परिवेश की सृष्टि करके कथाकार प्रेमी-प्रेमिका के असली रूपों का मार्मिक वर्णन करती हैं । दूसरी ओर विदेश से भारत आने पर राधिका को दिल्ली का वातावरण कैसे लगा - इसे व्यक्त करने के लिए वहाँ के रेलवे स्टेशन का यथार्थ चित्र लेखिका अंकित करती हैं - "लंबे घेरदार घाघरों में घबरायी इधर-उधर दौड़ती स्त्रियाँ, फर्श पर नंगे पैरों की छाप, लाठी लिये, हाथों में पोटलियाँ थामे बौखलाये से देहाती, खाली डिब्बे आपस में खनखनाते दूधवाले, और कभी-कभी डिब्बे के आगे चक्कर लगा लेनेवाले दो-तीन शौकीन लोग ।"[1] बचपन में गंगा पारवाली कोठी में रहते समय राधिका जिस कमरे का उपयोग करती थी, वर्षों बाद भी कमरे की हालत उसी तरह का है । "बीच में बिना बिस्तर का लोहे का पलंग, एक बड़ी पुराने स्टाइल की मेंढक-आराम कुर्सी, दीवार पर दो साल पुराना धूमिल पड़ा कैलेण्डर, केवल घड़ौंची पर ताज़ा भरा घड़ा रखा था, नीचे साफ धुली चिलम थी और स्टैण्ड पर तौलिया ।"[2] यहाँ पर लेखिका

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 17
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 55

कमरे में रहनेवाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति के उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करती हैं । "शेष यात्रा" में तो उषा प्रियंवदा विदेशी सभ्यता का नग्न चित्र उभारने युक्त परिवेश का चयन करती हैं । इसमें रोज़ की पार्टियों का सजीव चित्र भी है । पार्टियों में शामिल लोगों का खोखलापन भी व्यक्त हो जाता है । व्यंग्य रूप में इसीलिए लेखिका लिखती हैं - "सभी सम्मेलनों में हर तरह की बात होती है - खाने की, कपड़े की, टेलिविज़न शो की, इंडिया एसोसियेशन की, पिक्चर की, पड़ोसियों की।"[1] प्रणव के साथ रहते वक्त अनुका को आन्तरिक संघर्ष झेलना पड़ता है । उसे अनावृत करने के लिए लेखिका उचित वातावरण का निर्माण करती हैं । एक बार पार्टी में सम्मिलित अनुका शराब पीती है और रोती है जिससे उसके मन का दुख दर्द पिघल जाय ।

शैलीगत प्रयोग

भावनाओं और विचारों को मूर्त्त रूप प्रदान करना शैली का लक्ष्य है । "शैली कहानी-कला के समस्त उपकरणों के उपयोग की रीति है ।"[2] इसके दो पक्ष हैं - रूप विधान पक्ष और भाषा पक्ष । रूप विधान के अन्तर्गत कहानी निर्माण की शैलियाँ आती हैं जैसे आत्मकथात्मक, विवरणात्मक, संवादात्मक आदि । भाषा पक्ष में शब्द चयन और वाक्य योजना को महत्व देता है । "शैली की दिशा में, इस युग में सबसे अधिक

---

1. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 24
2. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. 343

प्रयोग हुए हैं, क्योंकि इस युग की कहानी-कला का चरम लक्ष्य उसकी प्रभाविष्णुता और प्रभाव की एकान्तिकता है और इसे प्राप्त करने के लिए इस युग का कहानीकार अपनी शैली के निर्माण, विधान आदि में पूरी तरह स्वतन्त्र है । फलतः कहानी की निर्माण शैली और विधान में अपूर्व ढंग का वैविध्य, नवीनता और व्यापकता आई ।"[1]

पूर्वदीप्ति - शैली

दुनिया न तन्त्र द्वारा मिटा न सकनेवाली चोट नहीं है । फिर भी उसकी यादों से बचना व्यक्ति को असंभव ही है । कभी कभी व्यक्ति का मन विक्षुब्ध होकर अतीत की स्मृतियों की ओर चलता है । ऐसी स्थिति में व्यक्ति से संबन्धित अतीत की किसी घटना को कथाकार प्रस्तुत करते हैं और इससे कथानक का विकास भी होता है । पूर्वदीप्ति शैली में चिन्तन का एक क्रम होता है । उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में इस शैली को अपनाया गया है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" की शुरूआत सुषमा की विगत ज़िन्दगी से होती है । लेखिका स्पष्ट रूप से इसकी सूचना देती हैं - "कुछ स्मृतियाँ, कुछ स्वप्न, कुछ अस्फुट शब्द, ज्वरग्रस्त छात्र की तरह सुषमा बार-बार उन पृष्ठों को उलटकर दोहराती है ।"[2] "रुकोगी नहीं राधिका" में उपन्यास का आरंभ राधिका के विदेश से लौटने पर होता है । लेकिन जल्दी ही लेखिका अपनी रचना में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करती हैं और राधिका के स्वदेश छोड़ने के कारणों की ओर इशारा करती हैं । "शेष यात्रा" में भी लेखिका इस शैली

---

1. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. 340
2. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. ।

का प्रयोग करती हैं । प्रणव के छोडने के बाद अनुका अपने विगत जीवन का स्मरण करती है । इस पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग "दो अंधेरे" नामक कहानी में द्रष्टव्य है । इसमें कौशल्या याद करती है कि एक दिन उसने भी बहन सुमित्रा की तरह सज-सँवरकर दिनेश को रिझाया था । "बाजे बजे थे, कौशल्या ससुराल गयी थी । उसका शादी में पिता ने विरासत में पाया हुआ घर बेच दिया था । दो ही तो लडकियाँ थीं - सुमित्रा की किस्मत होगी तो सब हो जायेगा । सबने कौशल्या को सराहा था । कितनी सुशील, कितनी निपुण । हाँ, उसे सुख का स्वाद मिला था ।"[1] आगे वह दिनेश के साथ की ज़िन्दगी की याद करती है कि "कौशल्या चाँद पा लेती है । पहली लडकी जब कुछ ही महीनों की थी तो दिनेश उसे पहली बार अपने साथ ले दिल्ली नौकरी पर ले जाता है । वहाँ वह अपने मित्र के साथ रहता है । उसके पास केवल एक कमरा है जिसका रुख ऐसा है कि गरमियों में धूप भरी रहती और जाड़ों में अंधेरा ।"[2] "मोहबन्ध" "चाँद चलता रहा", "दृष्टिदोष", "कोई नहीं", "पिघलती हुई बर्फ" जैसी कहानियों में भी पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग हुआ है ।

संवादात्मक शैली

उषा प्रियंवदा की कुछ कहानियों में पात्रों के संवादों के द्वारा कहानी को आगे बढाने का प्रयत्न है । उपन्यासों में संवाद का अध्ययन पहले ही हो चुका है । संवादात्मक शैली के कारण कहानी

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अंधेरे - उषा प्रियंवदा - पृ. 98
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - दो अंधेरे - उषा प्रियंवदा - पृ. 98-99

अधिक विश्वसनीय बनता है । "कोई नहीं" और "झूठा दर्पण" जैसी कहानियों में यह शैली द्रष्टव्य है । "कोई नहीं" में अक्षय और नमिता का भेंट होने पर "अक्षय ने हँसते हुए पूछा - "पहचाना नहीं ?" मैं ने बायें हाथ की किताबें दाहिने हाथ से थामते हुए, ऐसे स्वर में जो स्वाभाविक से कुछ मन्द पड गया था, कहा तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? मैं ने सुना था तुम कहीं विदेश में थे ।

"विदेश से लौट भी आते हैं । तुम यहाँ क्या कर रही हो ?" मेरी दृष्टि दूर भटक गयी । पत्थर की बनी सत्तर साल की पुरानी इमारत, टावर की घड़ी, दूर-दूर तक फैले लॉन और जैकेरेन्डा के वृक्ष जिनमें अभी कुछ दिन पहले तक फूल थे ।

"क्या कर रही हूँ अक्षय । वहीं हूँ, जहाँ तुम मुझे छोड गये थे । मेरा मतलब, वही हूँ जहाँ तुम्हारे जाने के पहले थी ।"

"वही घर, वही जगह, वहाँ लोग ?" अक्षय ने पूछा ।

"हाँ, वही घर, वही जगह, वही लोग ।" मैं ने दोहराया ।"[1]

"झूठा दर्पण" में शादी करने से इन्कार करनेवाली अमृता को मीरा, विवाह का मूल्य समझाती है ।

"अमृता, तुम शादी कर लो ।" मीरा ने एक बार कहा था ।

---

1. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 5।

"ऐसे संबन्धों पर मेरी आस्था नहीं रही मीरा । विवाह बहुत कुछ माँगता है, मुझमें न कोई चाव बचा है, न अरमान । ऐसे ही रहती आयी हूँ - ऐसे ही रहूँगी । अब इस आयु में मुझसे दुल्हन नहीं बना जायेगा ।" अमृता थोडा-सा हँसी ।

"अपने को ही देखो - क्या तुम्हारे वह रूपहले-सुनहले स्वप्न बदरंग नहीं हो गये । बिबिया, बेम्बी, नयी-नयी परेशानियाँ, गिरता हुआ स्वास्थ्य और तुम्हारे ही शब्दों में यति-सा कुतर्की पति ।"

मीरा एक क्षण को चुप हो गयी ।

"तू ज़िन्दगी एक झूठे दर्पण में देख रही है, अमृता । यह आवश्यक नहीं कि जो ममी और डैडी में हुआ, वहीं तेरे साथ हो । और रहे मेरे स्वप्न, मेरा ही दोष था । मैं ने ज़िन्दगी को बहुत रोमाण्टिक दृष्टि से देखा था । तुझे यति की तरह के व्यक्ति से विवाह करने की आवश्यकता नहीं । किसी ऐसे पुरुष से कर, जो तुझे धन-दौलत और प्रतिष्ठा दे सके । जैसे वह है, तत्यभामा के कुँवर ।"

"लोहे के उस कारखाने में मैं घुटकर मर जाऊँगी ।"

"धन-दौलत में कोई घुटकर नहीं मरता ।" मीरा ने बेम्बी के कपडे तह करते हुए कहा ।"[1]

संवादों में मनोवैज्ञानिकता का आभास उषा प्रियंवदा की "कोई नहीं" जैसी कहानियों से स्पष्ट हो जाता है । नमिता के,

---

1. एक कोई दूसरा - झूठा दर्पण - उषा प्रियंवदा - पृ. 40

जीवन के प्रति विरक्ति और टूटी हुई मानसिकता को व्यक्त करते हुए लेखिका उचित संवादों का चयन करती हैं । "नमिता ।" अक्षय कहता है, "नमिता तुम कैसी हो गयी हो ? ठण्डी, बेजान ।" अक्षय के स्वर में थोडी उलझन, थोडे दुख की खनक है । अँधेरे में मेरी टेढी सी मुस्कान अक्षय को नहीं दिखेगी । "जब बसन्त आता है तो तुम्हारे कम्पाउण्ड में नीबू के फूलों की महक मँडराती होगी ?

"पता नहीं अक्षय ।"

"और फिर बरसात में झर झर पानी बरसता होगा और तुम्हारे गेट पर लगी सावनी गुलाबी फूलों से भर जाती होगी ।"

"पता नहीं .....।"

"आसपास के कच्चे गड्ढों में कुमुद खिलते होंगे, और यूनीवर्सिटी में रजिस्ट्रार ऑफिस के पास गंधराज गमकते होंगे । तुम रो रही हो नमिता ?"

"नहीं अक्षय । " मैं धम् से पुल के पास पडे पत्थर पर बैठ जाती हूँ ।"

संक्षिप्त संयत और तरल संवाद "रूकोगी नहीं राधिका" में देख सकते ।[2] शादी के सिलसिले में डैन और राधिका का संवाद इसके लिए उदाहरण है । राधिका-डैन संवाद है - "मुझे युवा पुरुष बहुत अपरिपक्व लगते हैं ।"

"इसलिए कि तुम प्रत्येक में अपने पिता की-सी मानसिक

---

1. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 59-60
2. हिन्दी उपन्यास - सातवाँ दशक - सौ. जयश्री बरहाटे - पृ. 202

प्रौढ़ता ढूँढती हो । मालूम है कि तुम मेरे साथ इतनी फ्री क्यों हो ?"

"क्यों ?" राधिका ने पूछा ।

"क्योंकि तुम मुझमें कहीं अपने पिता का प्रतिबिंब पाती हो । ठीक है न ?"

"बिलकुल गलत", राधिका ने उच्च स्वर में प्रतिवाद किया ।"[1]

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली व्यक्ति के जीवन-संघर्ष, हर्ष-विषाद और अन्तर्द्वन्द्व को प्रामाणिकता के साथ प्रकाशित करती है । यह व्यक्ति के आत्मनिरीक्षण पर ज़ोर देती है । "इस शैली में बात इस ढंग से कही जाती है जैसे कोई अपना परिचय स्वयं दे रहा हो अथवा अपने जीवन से संबद्ध घटनायें और स्मृतियाँ स्वयं किसी से कह रहा है ।"[2] उषा प्रियंवदा आत्मकथात्मक शैली में कुछ कहानियों की अभिव्यक्ति करती हैं । इनमें कथा कहनेवाला व्यक्ति ही उसका भोक्ता है । इस तरीके का प्रयोग करने के कारण कथा साहित्य में वास्तविकता आती है । उषा प्रियंवदा के तीन उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का उल्लेख है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में सुषमा, "रुकोगी नहीं राधिका" में राधिका और "शेष यात्रा" में अनुका अपनी अपनी कहानी स्वयं कहकर जीवन की घटनाओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हैं । कहानियों के अन्तर्गत "चाँद चलता रहा" में

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 31
2. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - पृ. 343

इस शैली को अपनाया गया है । इसमें विनय कहता है - "मुझे रोहिनी से प्रथम परिचय की याद नहीं । पढाई छोडने के बाद जब मैं एक इंगलिश फ़र्म में नौकरी करने लगा तो मैं ने पाया कि मित्रों और साथियों के दायरे में रोहनी भी थी । कभी क्लब में, कभी किसी के घर दावत या चाय पर मेरी रोहिनी से मुलाकात होने लगी । अफ़सरों की बीवियाँ रोहिनी के विरुद्ध थीं, उनकी बातें मैं ने सुनी थीं, फिर भी रोहिनी हरेक के घर बुलायी जाती थी, क्योंकि खुल्लमखुल्ला उसका बहिष्कार करने का साहस किसी में न था ।"[1]

"एक कोई दूसरा" में नीलांजना आत्मकथात्मक शैली प्रस्तुत करती है । "डाक्टर कुमार के स्वागतार्थ दिये गये उस भोज में मैं ने नीली साडी पहनी थी । इतने दिनों के बाद भी मैं अपने को उस रात के पारिधान में स्पष्ट रूप से देख पा रही हूँ । नीली सिल्क की साड़ी, उस पर चटक नारंगी बार्डर । नीला ब्लाउज़ साडी में कुछ ऐसा घुल-मिला गया था कि सुनहरे तारों से बुना नारंगी बार्डर भी झिलमिला रहा था । बार्डर के रंग की वैसी ही चटक लिपस्टिक । तैयार होकर जब मैं ड्राइवर के गाडी लाने की प्रतीक्षा कर रही थी, भाभी बाहर गायी और मेरी बलाएँ लेने लगी "रानी, सच, बिलकुल परी-सी लग रही हो । तुम तो जो भी पहन लो, उसी में खिल उठती हो । साड़ी का रंग भी कितना सोबर है । फिर भी बार्डर की शोभा साड़ी पर और चटक लिपस्टिक का निखार चेहरे पर । पर यह सब यूनिवर्सिटी में पहनने

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - चाँद चलता रहा - उषा प्रियंवदा - पृ. 104-105

से क्या ? कहीं और पहनती तो लोग देखते भी ।"

"धनी ठेकेदार की बेटी मेरी भाभी, यूनिवर्सिटी - प्रोफेसर और रिसर्च को हेय समझती हैं । उनके अनुसार मैं अपना समय नष्ट कर रही हूँ ; मुझे भी किसी धनी व्यवसायी व मिल-मालिक के घर की शोभा बढ़ानी चाहिए ।

आत्मनिर्वासन की मुझमें कभी नहीं, पर भाभी की बातों से मन में थोड़ी-सी खुशी और भर गयी श्यामा की बौद्धिकता के प्रभाव में न आ, धीरेन्द्र, दीक्षित और स्टड जिस प्रकार मुझे घेरे खड़े थे, वह मुझे बहुत अच्छा लग रहा था । मादक द्रव्यों के सेवन से कैसा लगता होगा यह मैं नहीं जानती, पर पुरुषों की चाहना-भरी दृष्टि की मदिरा मुझे सदा गुदगुदा जाती है । यदि मेरे पास अथाह रत्न-राशि भी होती, तब भी मुझे ऐसा न लगता, जैसा कि धीरेन्द्र के मुख पर प्रीतिमय दास-भाव देखकर लग रहा था ।"[1] उषा प्रियंवदा की "चाँदनी में बर्फ पर" और "मछलियाँ" जैसी कहानियाँ इस ढंग की हैं ।

विवरणात्मक शैली

नये कथाकार की विवरणात्मक शैली पहले के समान सपाट नहीं, स्थूल नहीं । उनके विवरण की जड़ें रस बाहर उछालने युक्त हैं । इस विवरणात्मक शैली में कभी चित्रात्मकता, कभी बिंब, कभी प्रतीक

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 12-13

आ जाते हैं । कथाकार पात्रों की मानसिकता और स्थितियों को व्यक्त करने के लिए विवरणात्मक शैली को अपनाते हैं । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में सुषमा के केशालंकरण की अभिव्यक्ति विवरणात्मक ढंग से हुई है । "सुषमा ने बाल चिकने कर, इकट्ठा करके मुट्ठी में भर लिये, उन्हें एक बल दिया और उसकी त्वरित गति से चलती उँगलियों ने गूँथकर जूड़ा तैयार कर लिया । वह बालों में काँटे खोंसने लगी ।"[1] "रुकोगी नहीं राधिका" में राधिका के घर की रूपरेखा लेखिका विवरणात्मक शैली में अंकित करती हैं । तीसरे उपन्यास में अनुका के एक दिवस का विशद वर्णन है । "अनु सुबह से धुलाई, सफाई, झाड़-पोंछ, बनने-सँवरने में लगी रहती है । शाम को कपड़े बदलकर, लिपस्टिक लगाकर प्रणव के लौटने का इंतजार करती है । एक नियत मुस्कान से उसका स्वागत करती है । अनु खाना गरम करती है, दोनों साथ - साथ खाते हैं । एक सुखद चुप्पी में, सब कुछ साफ-सुथरा एक अच्छी-सी पार्सल की तरह बँधा जीवन । कभी मूड होने पर उसे बाहर ले जाता है ।"[2] "पैरम्बुलेटर", "जाले", "छुट्टी का दिन" जैसी कहानियों में इसका संकेत है । घर में "पैरम्बुलेटर" के आगमन होने पर कालिन्दी पुलकित हो जाती है "और उस क्षण परमेश्वरी को लगा कि अब जीवन में उसे कुछ और नहीं चाहिए । उसने आसमान छू लिया है । पुलकित कालिन्दी और आनेवाले शिशु की प्रतीक यह गाड़ी, अब कुछ दिन बाद इसमें लेटा नन्हा-मुन्ना घर में परिवर्तन ले आयेगा ।"[3] "जाले" में लेखिका कौमुदी का स्वरूप चित्रित करके

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 48
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 23
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पैरम्बुलेटर - उषा प्रियंवदा - पृ. 3

कहती हैं - "कौमुदी उन आधुनिक युवतियों में थी, जो पुरुषों से शत-प्रतिशत समानता का दावा करती हैं । यूनिवर्सिटी से एम.ए. कर और एक प्रभावशाली संबन्धी के द्वारा पाँच सौ रुपये महीने की सरकारी नौकरी पा, अब वह माता-पिता से दूर अकेली रहती है ।"[1] "छुट्टी का दिन" में माया के छुट्टी के दिन की शुरूआत का वर्णन है । "पड़ोस के फ्लैट में छोटे बच्चे के चीख-चीखकर रोने से माया की नींद टूट गयी । उसने अलसायी पलकें खोलकर घड़ी देखी, पौने छह बजे थे । फिर उसे याद आया, आज तो छुट्टी का दिन है । उसने पैर फैला लिये । पलकें आँखों पर ढलक आने दीं । वह रेशमी चादर का नरम चिकना स्पर्श गालों पर महसूस करती हुई पड़ी रही । नींद की मीठी खुमारी अब भी उस पर छायी थी ।"[2]

विलीन शैली

"नयी कहानी का शैलीगत प्रयोग विलीन शैली का प्रयोग है जिसे शैलीहीन उपन्यासकार ट्रूमेन कपोट "वेरी डिफिकल्ट, वेरी एडमिरेबिल ऐंड आलवेज़ वेरी पापुलर मानता है ।"[3] यह जीवन्त रूप में कथा साहित्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत करनेवाली शैली है । इसके संबन्ध में कमलेश्वर कहते हैं - "कहानी बिना विचार के व्यक्ति संपन्न हो भी नहीं सकती थी और उसका यह व्यक्तित्व ही उसकी यह शैली है ।"[4] इस विलीन

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - जाले - उषा प्रियंवदा - पृ. 30
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन - उषा प्रियंवदा - पृ. 44
3. कहानी स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ. 151
4. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 192

शैली की वजह से कथा साहित्य की गति मात्र स्पष्ट नहीं होती, बल्कि उसमें छिपी अनुभूति का तीखा एहसास भी होता है । उपन्यासों में "पचपन खंभे लाल दीवारें" में तुषना के कथन से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमिका और पत्नी का रूप अलग - अलग है । उन में नील से पाँच वर्ष बड़ी तुषना की मानसिकता इसमें छिपी हुई है । "रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका उसकी चाह के अनुसार जीना चाहती है । वह पिता के उपदेशों को मानती नहीं और पूछती है कि जो पिता चाहता है उसे क्यों हमेशा होने देता है । "शेष यात्रा" में नारी शक्ति की उत्कृष्टता को व्यक्त करके दिव्या कहती है कि अनुका को प्रणव के सामने अपने आत्मसम्मान को नहीं छोड़ना चाहिए । कहानियों में "एक कोई दूसरा" में विलोम शैली द्वारा लेखिका व्यक्त करती हैं कि नीलांजना के दिल में डॉ. कुमार से जितना प्यार है उससे भी अधिक प्यार डाक्टर के दिल में है । इसीलिए सन्तुष्ट होकर नीलांजना कहती है - "पर मैं रोऊँगी नहीं । 'यह कैसी अपूर्व शान्ति मेरे ऊपर छा गयी है, यह कैसी परितृप्ति का बोध । मैं किताब हाथ में लिये उजली धूप में बैठी हूँ । उसका समर्पण का पृष्ठ मेरे सामने खुला है - टु दैट अदर वन, उस दूसरी को, अक्षर कहते हैं । और एक मृदु दृष्टि बार बार मुझसे कह रही है तुम, नीलांजना, तुम ही तो थी वह दूसरी ।"[1]

उषा प्रियंवदा एक पंक्ति द्वारा कहानी को विश्लेषित करती है ।[2] वह "जीवन की छोटी सी छोटी घटना में अर्थ के स्तर - स्तर

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 35
2. नयी कहानी के विविध प्रयोग - डॉ. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु - पृ. 300

उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँच देता है ।"[1] आज की दुनिया में मानवीय संबन्धों का आधार धन है । "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" में सुबोध कहता है - "प्यार से बडी एक और आग होती है भूख की, पेट की; वह आग धीरे धीरे सब कुछ लील लेती है ।"[2] संपूर्ण कहानी को यह पंक्ति अर्थपूर्ण बनाती है । नौकरी करते समय सुबोध की माँ सुबोध से अधिक प्यार करती है । लेकिन बेकार होने पर मातृप्रेम कम हो जाता है और माँ कामकाजी बेटी से अधिक प्यार करती है । रोटी के लिए अब वृन्दा पर निर्भर करना आवश्यक है । अतः मातृप्रेम को भी भूख की आग लील लेती है । बेकार होने के नाते शोभा का पिता सुबोध को छोडकर किसी दूसरे से शोभा का विवाह तय करता है । यहाँ भी रोटी की आग की वजह से दोनों का प्रेम संबन्ध टूट जाता है क्योंकि दुनिया का कोई बाप किसी बेकार को अपनी बेटी का हाथ नहीं देगा । स्वाभिमान को कायम रखने के लिए सुबोध ने नौकरी से इस्तीफा दी थी । लेकिन पेट की भूख के कारण स्वाभिमान को छोडकर वह वृन्दा की आज्ञाओं का पालन करता है जैसे घर के लिए साग-सब्जी लाना, वृन्दा की सहेलियों को घर पहुँचाना । उपेक्षित भाव से रखे भोजन "लालचियों की तरह बडे बडे कौर से निगलने"[3] में वह कोई सुस्ती नहीं दिखाता । इसका कारण यह है कि पेट की भूख को झेलना मानव को असंभव ही है ।

---

1. कहानी - नयी कहानी - नामवरसिंह - पृ. 34
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 163
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 167

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः यह बता सकते हैं कि उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में एक से अधिक शैलियों का प्रयोग हुआ है । "समसामयिक घटनाओं के विवरण में कथात्मक पात्र की आन्तरिक स्थिति का विश्लेषण करने के लिए आत्मचरित्र, प्रतीक, संकेत, पात्र एवं घटना में सामंजस्य स्थापित करने के लिए, नाटकीय विधि का मिश्रण जहाँ अनायास ही हो जाता है, वहाँ समन्वित शिल्पविधि जन्म लेती है ।"[1] "पचपन खंभे लाल दीवारें", "रुकोगी नहीं राधिका", "शेष यात्रा", "मोहबन्ध", "पूर्ति", "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" आदि रचनाओं में आत्मकथात्मक, संवादात्मक, विलीन शैलियों का सम्मिश्रण हुआ है ।

समाप्ति से शुरूआत

जहाँ कहानी की समाप्ति होती है वहाँ से उसका आरंभ करना नये कथा-साहित्य की शिल्पगत विशेषता है । उषा प्रियंवदा के उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" और "शेष यात्रा" में इस प्रणाली को अपनाया गया है । प्रथम में सुषमा और नील के संबन्ध-विघटन से उपन्यास की समाप्ति और इस घटना की यादों से उपन्यास की शुरूआत भी होती हैं । "शेष यात्रा" में अनुका और प्रणव के दाम्पत्य विघटन से उपन्यास का अन्त होता है । इस दाम्पत्य संबन्ध से उपन्यास का आरंभ भी होता है । कहानियों के अन्तर्गत "पिघलती हुई बर्फ" और

---

1. नयी कहानी - मीरा सीकरी - पृ. 112

"एक कोई दूसरा" में उषा प्रियंवदा इस तरह का प्रयोग करती हैं । बीरू की मृत्यु और सुधीरा की असाहिज स्थिति से दुखी "पिघलती हुई बर्फ" का अक्षय से कहानी की शुरूआत होती है । स्वप्न में यह अक्षय को सताता रहता है । इस शुरूआत के प्रेरणा-स्रोत के रूप में लेखिका कहानी की समाप्ति करती हैं जैसे "फिर रात को चौंककर जाग जाना और सुधीरा की चीख, कैलाती का धीरे-धीरे रोना । बर्फ पर रक्त के दाग ।"[1] अतः उषा प्रियंवदा समाप्ति से कहानी का आरंभ करती हैं । अपने को सुन्दरी माननेवाली "एक कोई दूसरा" की नीलांजना के लिए यह बहुत ही सन्तोषजन्य बात है कि डॉ. कुमार उससे प्यार करता है । इसी चिन्ता के कारण उसे एक प्रकार की तृप्ति होती है । इस कहानी का आरंभ भी नीलांजना की इसी विचारधारा से होता है । कहानी की शुरूआत में नीलांजना कहती है - "मेरे अन्दर बड़ा गहरा सन्तोष है कि मेरा रूप, मेरा चापल्य, मेरी हँसी किसी रिक्त जीवन का थोड़ा-सा कोना तो भर सकी ।"[2]

सांकेतिकता

उषा प्रियंवदा अपने कथा-साहित्य में सांकेतिकता का प्रयोग करती हैं । नये नये अर्थों को प्रस्तुत करने के लिए सांकेतिकता का प्रयोग होता है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में नील सुषमा को यह संकेत देता है कि उसे अपने सारे उत्तरदायित्वों के साथ स्वीकार करने को वह तैयार है । इसलिए वह कहता है - " वे ज़िम्मेदारियाँ मेरी भी

---

1. एक कोई दूसरा - पिघलती हुई बर्फ - उषा प्रियंवदा - पृ. 106
2. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 9

होंगी, तुम्हारे भाई-बहनों, सबके लिए सब कुछ वैसे ही होगा जैसे होता आया है ।"[1] "शेष यात्रा" की अनुका माँ बनने का आग्रह रखती है । लेकिन इतका सीधा उल्लेख उपन्यास में अंकित नहीं । परोक्ष रूप इसकी ओर संकेत है । इसलिए अनुका प्रणव से कहती है - "नीरजा को शादी के दस महीने बाद ही बेटा हुआ है न ।"[2] "नयी कहानी संकेत करती नहीं, बल्कि संकेत है ।"[3] "कितना बड़ा झूठ" में किरन अपने अवैध संबन्ध को झूठा स्थापित करने का प्रयत्न करती है और भक्स की यादों से पति को मुक्त कराने के लिए वह पति से सोने को कह देती है । किरन के मन में जो उथल-पुथल होता है, कहानी में उसकी ओर संकेत है - "वह अपनी जगह पर बैठी-बैठी विनय की ओर देखती रही । फिर एकाएक ही उठकर उसने विनय का हाथ पकड़ लिया और मन्द स्वर में कहा, "आइए, अब बिस्तर पर चलें ।"[4] इस संकेत के कारण कहानी में अतिरिक्त विवरण नहीं आता । "टूटे हुए" में भास्कर और टीटी का अवैध संबन्ध का संकेत है, वहाँ अतिरिक्त वर्णन की गुंजाइश नहीं । इसमें भास्कर का कथन है - "जब तक वह स्नानागार में रहती है, मैं बिस्तर ठीक कर देता हूँ । मैं नहीं चाहता कि इलेन आकर हमारी उपस्थिति का कोई चिह्न पाये । पर मैं जानता हूँ कि इलेन जानती है, तभी तो हर बार बिस्तर पर धुली और लैवेण्डर की गन्ध से सुवासित चादरें होती हैं, स्नानागार में साफ़

---

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 119
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 34
3. कहानी-नयी कहानी - नामवरसिंह - पृ. 42
4. कितना बड़ा झूठ - उषा प्रियंवदा - पृ. 54

तौलिये ।"[1] "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" में सुबोध शोभा से कहता है कि पेट की भूख प्यार से बड़ी आग है । इस आग में सबका नाश होता है । कहानी में पेट की भूख के सामने माँ का प्रेम, शोभा का प्यार, और सुबोध का आत्माभिमान अपने-अपने अर्थ खो बैठते हैं । "एक कोई दूसरा" में डॉ. कुमार की पुस्तक का समर्पण पृष्ठ इस बात की ओर संकेत देता है कि नीलांजना उसके लिए सबसे अधिक प्रिय व्यक्ति है ।

प्रतीकात्मकता

अर्थ को अधिक ग्राह्य बनाने में प्रतीक का बहुत बड़ा हाथ है । वह अभिधेय अर्थ के बजाय अन्य वास्तविक अर्थ की अभिव्यक्ति करता है । उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में प्रतीकों की संख्या अधिक नहीं है । "रुकोगी नहीं राधिका" में राधिका के जीवन की रिक्तता को व्यक्त करने के लिए आँगन की खाली क्यारियों को प्रतीक रूप में अपनाया गया है । अनुका के जीवन का धुँधलापन उसके मेज़ पर जमी धूल से स्पष्ट हो जाता है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" में पक्षी का आर्त्त चीत्कार सुषमा की मनोवेदना को प्रतीकायित करता है । उषा प्रियंवदा की अधिकांश कहानियों में प्रतीकात्मकता है । अज्ञेय कहते हैं - "महत्व या मूल्य प्रतीक का या प्रतीक में नहीं होता । वह उससे मिलनेवाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है ।"[2] उषा प्रियंवदा के प्रतीकों से इस तरह

---

1. एक कोई दूसरा - टूटे हुए - उषा प्रियंवदा - पृ. 145
2. आत्मनेपद - अज्ञेय - पृ. 256

की अनुभूति मिलती है । "मछलियाँ" कहानी में "छोटी मछली, बड़ी मछली"[1] नामक नाटक का उल्लेख है । यह तो स्वाभाविक है कि बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती है । लेकिन कहानी की नायिका विजी का संशय यह है कि "क्या छोटी मछली उलटकर वार भी नहीं कर सकती ।"[2] यहाँ पर बड़ी मछली और छोटी मछली क्रमशः मुकी और विजी का प्रतीक है । विजी भी मुकी से प्रतिशोध ले सकती - पाठक आसानी से यह समझता है । प्रतिशोध लेने में वह सफल भी होती है । इसलिए मुकी नटराजन से कहती है - "उसी ने बताया कि तुमने उसे पन्द्रह सौ डालर दिए हैं, डाक्टर के पास जाने और इंडिया लौट जाने के लिए ।"[3] "जाले" नामक कहानी कौमुदी द्वारा नियंत्रित प्रोफेसर राजेश्वर के जीवन को प्रतीकायित करती है । "जाले"में "मकड़ी के जाले" पारिवारिक जीवन का बिंब बन जाता है । कहानी में इसकी ओर संकेत है कि "अपने पुराने ढर्रे पर जीवन फिर लौटा लेने को वह हर समय छटपटाते रहते । उनको लगता कि वह मकड़ी के जाले में घिरकर रह गये हैं, जिसके तार दूर से बहुत सुकुमार, बहुत आकर्षक लगते हैं, पर, एक बार उनमें फँस जाने के बाद निष्कृति की कोई आशा नहीं रहती ।"[4] "कच्चे धागे"की धागा कुन्तल की संजोई हुई स्वप्नों का प्रतीक है और वह टूट भी जाती है । इस कहानी में लेखिका इन्द्रधनुष का प्रतीक प्रस्तुत करती हैं । यह नायिका के प्रेमी का

---

1. कितना बड़ा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 102
2. कितना बड़ा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 102
3. कितना बड़ा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 129
4. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - जाले - उषा प्रियंवदा - पृ. 43

प्रतीक है । प्रेमी के प्रति उसे मोह है, लेकिन इन्द्रधनुष की तरह वह उसके लिए अप्राप्य है । "चाँद चलता रहा" का पिंजरे में बन्द तोता किट्ट"[1], रोहिनी जैसी नारी की विवशता को व्यंजित करता है । दूसरी ओर "चाँद" रोहिनी का प्रतीक है । वह संध्या में उदित होकर उषा बेला में अदृश्य होता है । पुनः संध्या में उदित होता है । गतिमान चाँद की तरह रोहिनी भी रात का समय किसी पुरुष के साथ बिताती है और प्रातः उससे अलग होती है । अगले दिन दूसरे व्यक्ति से संबन्ध रखता है और इस प्रकार रोहिनी का जीवन क्रम भी गतिमान रहता है । नात्तर बाबू के जीवन की नीरसता का प्रतीक है "कँटीली छाँह" की "नागफनी पौधा ।"[2] "टीकोजी पर कढी हुई चिडिया"[3] "छुट्टी का दिन" की माया की विवशता का प्रतीक है । "पैरम्बुलेटर" में पतंगों और फूलों का उल्लेख है जो क्रमशः कालिन्दी की निराशा और प्रसन्नता को द्योतित करता है । "वापसी" में लेखिका उल्लेख देती हैं कि "जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी जाती है ।"[4] घर में गजाधर बाबू की स्थिति अंकित करने के लिए "चारपाई" का प्रयोग अधिक उपयुक्त है । इस बात को और भी उजागर करने के लिए कहानी के अन्त में गजाधर बाबू

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - चाँद चलता रहा - उषा प्रियंवदा -पृ. 110
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - कँटीली छाँह - उषा प्रियंवदा - पृ. 90
3. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन- उषा प्रियंवदा -पृ. 46
4. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 135

की पत्नी कहती है - "अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे । उसमें चलने तक की जगह नहीं है ।"[1] "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" न "फूल" जीवन के रोमान्टिक पक्ष का प्रतीक है । "झूठा दर्पण" वैवाहिक संबन्ध का प्रतीक है और "सागर पार का संगीत" भारतीयता को सूचित करती है ।

बिंबात्मकता

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में बिंबात्मकता का प्रयोग भी हुआ है । "सौंदर्यानुभव के सूक्ष्म रहस्यों को बिंबों द्वारा न केवल मूर्त्त करने में सहायता मिलती है, बल्कि भीतर प्रवेश करने और उनके गहरे अर्थों तक पहूँचने की प्रेरणा भी दृष्ट होती है ।"[2] उषा प्रियंवदा के प्रथम उपन्यास "पचपन खंभे लाल दीवारें" में मुट्ठियाँ खोलकर निधि लुटानेवाले व्यक्ति के रूप में सुषमा को अंकित किया गया है । "रुकोगी नहीं राधिका" की राधिका के कमरे का पुराना धूमिल पडा कैलेण्डर इसके जीवन का धुँधलापन व्यक्त करता है । "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" में सुबोध की मानसिक स्थिति को पाठकों तक संप्रेषित करने के लिए उषा प्रियंवदा बिंब का सहारा लेती हैं । "दो धुँधली, जलभरी आँखें दो उदास आँखों से मिलीं । उनमें एक मूक अनुनय थी । सुबोध ने माँ के चेहरे को देखा और मुसकुरा दिया । शब्द निरर्थक थे, दोनों एक

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - वापसी - उषा प्रियंवदा - पृ. 142
2. भाषा त्रैमासिक - सितंबर 1981 - नई कहानी-शिल्प विधान - डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण - पृ. 33

दूसरे की गोपन व्यथा से परिचित थे । उनमें एक मूक समझौता था ।"[1] "झूठा दर्पण" में अंकित स्वच्छ दर्पण अमृता के झूठे मिथ्या बोध का बिंब है । "कोई नहीं" की सूखी बदरंगी पिटूनियाँ नमिता के जीवन के सूनापन को प्रतिबिंबित करता है । "पिघलती हुई बर्फ" का बर्फ अक्षय के मन में छिपे हुए पापबोध को तप्रेषित करता है । इस प्रकार बिंब अनुभूति को पूर्ण रूप से अनावृत करता है । टी. एस. इलियट कहते हैं - "बिंब उस अनुभूति की गहनता का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसमें हम प्रवेश नहीं कर पाते ।"[2]

भाषा

"भाषा बाह्य यथार्थ और आभ्यन्तरिक यथार्थ, तथ्य और अनुभूति दोनों की अभिव्यक्ति करती है ।"[3] वह भावों और संवेदनों की प्रकृति से अनुशासित है । भाषा का पहला रूप रचनाकार समाज से हासिल करते हैं । उसमें अपने व्यक्तित्व का अंश जोडकर पाठकों के लिए सम्प्रेषणीय बनाते हैं । समाज से प्राप्त भाषा के अनुकूल वे अपनी संवेदना को व्यक्त करते हैं । अत: रचनाकार की भाषा का आधारभूत स्रोत समाज ही है ।[4] नयी कहानी की भाषा में शब्दों का नये संदर्भों में उपयोग होता है । साथ ही विरामचिह्नों विषयक नये प्रयोग और वाक्य गठन की नयी विधियाँ भी चित्रित है । इससे भाषा को सूक्ष्म और प्रौढ रूप मिलता

---

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 145
2. Selected Prose - T.S.Eliot - p.90.
3. Illusion and Reality - Christopher Caudwell - p.247
4. नई कहानी-नये प्रश्न - डॉ. सन्तबख्श सिंह - पृ. 36

है । व्यक्ति और युगानुभूति का सामंजस्य नयी कहानी की विशेषता है । अमुक कहानीकार की अपनी-अपनी भाषा-शैली है । यथार्थ जीवन के बीच से उभरती भाषा का प्रयोग उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में द्रष्टव्य है । "कृतिकार के नवीनतम विकास की दिशाएँ प्रमुख रूप से उसकी भाषा-प्रयोग विधि में प्रतिफलित होती हैं । साथ ही भाषा के माध्यम से किसी रचनाकार की प्रामाणिकता की भी परीक्षा अपेक्षया तटस्थ और विश्वसनीय ढंग से की जा सकती है । अपनी मौलिक स्थापना की भाषा एक सीमा तक संवेदना को नियमित और अनुशासित करती है । विचार जगत में किसी सर्वथा नये भाव को जन्म नहीं दिया जा सकता । चीज़ें तो बहुत कुछ वही होती हैं, उन्हें ठीक देखने के लिए दृष्टि की नवीनता अपेक्षित होती है । भाषा जितनी सर्जनात्मक होगी, कलाकृति उतनी ही विशुद्ध और प्रामाणिक होगी ।"[1] ज्ञान-विज्ञान के विकास के कारण आधुनिक कथाकार शब्द के अर्थ को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं । साथ ही उसमें छिपे भावों की अभिव्यक्ति भी करते हैं । अभिव्यक्ति की सादगी और सरल भाषा पर नये कथाकार बल देते हैं । "बोली जानेवाली भाषा का अमूर्तन और परिष्कार करके लेखक उसे सामान्य प्रयोग के लिए फिर समाज को वापस कर देते हैं ।"[2] उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग इसका अच्छा उदाहरण है जैसे "एक कोई दूसरा" में "डिपार्टमेंट" और "झूठा दर्पण" में "पेयरेन्ट्स" । "भाषा में हुआ परिवर्तन जनता की ज़रूरतों और आदतों में आये परिवर्तन को सूचित करता है ।"[3] इस परिवर्तन

---

1. भाषा और संवेदना - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 1-9
2. भाषा और संवेदना - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 22
3. The Writer and His World - Charles Morgein - p.57.

का कारण शब्द-बदलाव है । शब्दगत प्रयोग के लिए अंग्रेज़ी शब्द "पैरम्बुलेटर" उचित उदाहरण है । "पालना" के बजाय पैरम्बुलेटर शब्द का प्रयोग करने पर विषय-निर्वाह, भावाभिव्यक्ति, और लेखक का संस्कार - तीनों स्पष्ट हो जाता है । उषा प्रियंवदा अपने कथा-साहित्य में विरामचिह्नों का प्रयोग करती हैं जैसे "मनीश........ मेरे एक बन्धु.......",[1] "पुनर्मिलन पर...........",[2] तुम्हें याद है नमिता ."[3] "अगला दिन, काम का दिन.......।"[4] सरल होते हुए भी अलंकृत भाषा उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की उल्लेखनीय विशेषता है । "उजली आँखें", "धुली चादरें", "फीका नीला आकाश" जैसे सार्थक विशेषणों का प्रयोग और "गोल सा चेहरा", "संगमरमर की प्रतिमा" और "हिमकन्या-सी जमी हुई" जैसी उपमाओं का उल्लेख उषा प्रियंवदा की भाषागत विशेषतायें हैं ।

"सही अर्थ को कह सकने के लिए सही भाषा एक अनिवार्यता है । इसलिए हर लेखक भाषा की खोज करता है । साथ ही यह भी सही है कि सिर्फ़ सही भाषा की खोज कर लेने-भर से वैचारिक संवाद पूर्ण नहीं हो जाता, उसके लिए विचारों को श्रृंखलित भी करना पड़ता है ।"[5] उषा प्रियंवदा ने "रुकोगी नहीं राधिका"

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 139
2. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 105
3. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 55
4. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - छुट्टी का दिन - उषा प्रियंवदा-पृ. 57
5. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ. 167

में "सोफिस्टिकेशन"[1], "इलक्ट्रा काम्प्लेक्स"[2] जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । राधिका मन ही मन यह स्वीकार करती है कि स्वदेश में वह अजनबी बन चुकी है । इसलिए वह अपने को मित्रों और बन्धुजनों से दूर रखती है । राधिका के चरित्र को उभारने के लिए लेखिका "इलक्ट्राकाम्प्लेक्स" और "सोफिस्टिकेशन" का प्रयोग करती हैं । "कथ्य या मूल संवेदना के तनाव को झेलना कहानी की भाषा की पहली और अन्तिम शर्त होती है।"[3] उषा प्रियंवदा की कहानियों की भाषा इसकी अभिव्यक्ति देती है । उनकी कहानियों की सरल भाषा कथ्य को स्पष्ट रूप से उभारने का प्रयत्न करती है । इसलिए उन्होंने उपसर्गों का प्रयोग किया है । शब्द के पूर्व उपसर्ग जोड़कर उसके अर्थ में अधिक तीव्रता लाने के लिए लेखिका "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" में "अनमना", "अनजान"[4] और "पैरम्बुलेटर" में "अपमानित" "अगणित"[5] शब्दों का प्रयोग करती हैं । भाषा में छिपे अर्थ को निकालने के लिए उषा प्रियंवदा ने तुलनात्मक निपातों का प्रयोग किया है जैसे "तुझे फूलों की पुराने प्रेम पत्रों के पीले पड़े काग़ज़-सी कुछ स्मृतियाँ लिए हुए चली जाएगी ।"[6] प्रेमी देवेन्द्र के तिरस्कार के बाद अचला का जीवन सूखा हो जाता है । "निपातों का प्रयोग निश्चित शब्द समुदाय या पूरे वाक्य को अतिरिक्त भावार्थ प्रदान करने के लिए

---

1. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 6
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 133
3. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कथ्य और शिल्प-डॉ. शिवशंकर पाण्डेय - पृ. 157
4. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - पृ. 144
5. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पैरम्बुलेटर - उषा प्रियंवदा - पृ. 6, 10
6. जिन्दगी और गुलाब के फूल - मोहबन्ध - उषा प्रियंवदा - प. 15

होता है ।"[1] उषा प्रियंवदा सार्थक तथा प्रसंगानुकूल अंग्रेज़ी वाक्यों को भी प्रस्तुत करती हैं । उदाहरण के लिए बड़-दा की गाड़ी को "रुकोगी नहीं राधिका" में राधिका "पोर्च में खड़ी पौष्टिनाक गाड़ी"[2] संज्ञा देती है । इस उपन्यास में एक स्थान पर राधिका अक्षय से पूछती है - "आपको किसी खाली फ्लैट का पता मालूम है ?"[3] "पचपन खंभे लाल दीवारें" के अधिकांश पात्र शिक्षित होने के नाते इनकी भाषा शुद्ध और परिमार्जित मुहावरेदार भी हैं । उनके कथा साहित्य में "बूँद-बूँद से घट भरना",[4] "आँखों से हँसी फूटना,"[5] "ऊपर से तूफान गुज़रना,"[6] "कलेजे से लगाना"[7] जैसे कहावतों का प्रयोग भी हुआ है[8]। "शेष यात्रा" में भी अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग हुआ है । इनका प्रयोग निरर्थक रूप में नहीं, बल्कि प्रत्येक स्थिति के द्योतक रूप में हुआ है । इतना ही नहीं, अनुका के जीवन कहानी विदेश में ही घटित होता है । उस संदर्भ में तो अंग्रेज़ी शब्दों को प्रयुक्त करना स्वाभाविक ही है । "उषा प्रियंवदा की भाषा में जहाँ अंग्रेज़ी के बहुप्रचलित शब्दों के प्रयोग से एक नया लोच आया है

---

1. हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा - डॉ. दीमशिन्त - पृ. 214
2. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 121
3. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 60
4. पचपन खंभे लाल दीवारें - उषा प्रियंवदा - पृ. 11
5. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पैरम्बुलेटर - उषा प्रियंवदा - पृ. 2
6. रुकोगी नहीं राधिका - उषा प्रियंवदा - पृ. 44
7. शेष यात्रा - उषा प्रियंवदा - पृ. 71
8. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में शिल्पविधि का विकास - डॉ. तहसीलदार दूबे - पृ. 129

वहाँ सभी ओर सामान्य से शब्दों को ऐसा सुन्दर तारतम्य दिया गया है कि वे भाषा को एक नयी शक्तिमत्ता से भर देती हैं ।"[1] नारी की चिन्ताकुल मानसिकता "सागर पार का संगीत" में उपलब्ध है । स्वदेश और स्वजनों को छोड़ने पर वह दुखी और विवश हो जाती है । इसलिए वह सोचती है - "मैं देवयानी, जो इस समय एक अँधेरे-से रेस्तराँ में इस स्वीडिश-आयरिश कनेडियन पुरुष के साथ बैठी हूँ, देवयानी सोच रही थी, इस बड़ी-सी इमारत की इकतालीसवीं मंजिल पर जहाँ से शिकागो नगर की बिजलियाँ नज़र आती हैं, औस्कर ने शैम्पेन मँगायी हैं और वेट्रेस हम दोनों को कौतूहल से देख रही है - क्या इसी क्षण के लिए बन्धु - बान्धवों को पीछे छोड़, भाग्य-डोर से बँधी हुई यहाँ तक खिंच आयी ? इस समय, इस विशिष्ट क्षण में जो कुछ हृदय में उपज रहा है, क्या वह प्यार है ।"[2] "एक कोई दूसरा" में नीलांजना विजय के साथ शादी की बात पर सोचती है । वह विजय से शादी करना नहीं चाहती । वह समझती है कि "शायद इसलिए कि विजय उन्हीं सब बन्धनों का प्रतीक था, जिनसे मैं मुक्त होने का प्रयत्न कर रही थी । यदि विजय से उसकी संपत्ति छीन ली जाये तो उसके पास अपना क्या बचेगा ? वह एयरकंडीशंड घर, मिलों और भरी तिजोरियों के आवरण में अपनी मानसिक दरिद्रता को छिपाये हुए है । पहले मैं शायद विजय को वर लेती । गाजे-बाजे, तेज़ रोशनियों और कोलाहल के मध्य मैं उसकी पत्नी बन जाती, क्योंकि दो अमीर भाइयों की बहन का मूल्य विजय चुका सकता था । लेकिन

---

1. भाषा त्रैमासिक - दिसंबर 1985- आधुनिक हिन्दी कहानी - भाषिक संरचना के नए आयाम - डॉ. पुष्पपाल सिंह - पृ. 89
2. एक कोई दूसरा - सागर पार का संगीत - उषा प्रियंवदा - पृ. 64

अब [1] यहाँ पर नीलांजना के मन के भावों का सुन्दर अंकन हुआ है । उषा प्रियंवदा ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है । "कोई नहीं" इसका अच्छा नमूना है । इसकी नायिका नमिता अध्यापिका है और वह जीवन की नीरसता से पीड़ित है । नमिता के कथन से उसकी शैक्षिक योग्यता और निराशा का एहसास मुखर हो उठता है । वह कहती है कि "स्पोर्ट्स, कनवोकेशन, इम्तहान छुट्टियाँ सभी नियमित रूप से होता है । नोट्स पीले पड़ जाते हैं । फिर भी वह वही पढ़ाये चली जाती है । इस जीवन की कोई गति नहीं । होस्टल से कभी कोई लड़की भाग जाती है, किसी लड़का आत्महत्या कर लेता है, किसी अध्यापक को लेकर कोई स्कैण्डल हो जाता है, यही उसकी ज़िन्दगी के हाईलाइट्स बचे हैं ।" [2]

चित्रात्मकता

"स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी की भाषा में स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने की प्रवृत्ति है जिसके परिणामस्वरूप कहानी में "भाषा द्वारा चित्रों" की अभिव्यक्ति न करके "चित्रों की भाषा" का प्रयोग किया जाता है । राजेन्द्र यादव के अनुसार तो "कहानी मूलतः चित्रों की भाषा है । पहले चित्र ठोस वस्तुओं के हुआ करते थे, आज बेहद संश्लिष्ट हो गये हैं । घटनाओं, स्थितियों, भावनाओं, संवेदनाओं विचारों के तरल जटिल चित्र उनमें होते हैं ।" [3] उषा प्रियंवदा की

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 3
2. एक कोई दूसरा - कोई नहीं - उषा प्रियंवदा - पृ. 57

"एक कोई दूसरा" में इस चित्रात्मक भाषा का प्रयोग मिलता है जैसे "नीली तिल्क की साड़ी, उस पर चटक नारंगी बार्डर । नीला ब्लाउज़ साड़ी में कुछ ऐसा घुल-मिल गया था कि सुनहरे तारों से बुना नारंगी बार्डर ही झिलमिला रहा था ।"[1] "चाँदनी में बर्फ पर" नामक कहानी में कल्याणी के सौंदर्य वर्णन में भी यह चित्रात्मकता है । "गठा, गेहुँआ शरीर, झँपी-सी आँखें, ओठों के कोने थोड़े-से उठे हुए ।"[2] "मछलियाँ" में चित्रों के रंगों की सुत्कुराहट और विषाद की झलक पायी जाती है । "पतझर की सुनहरी रंगभरी शाम सड़क और इमारतों पर छाई हुई है । पूर्व से रह-रहकर हवा आती है जिससे विजी की हल्की, पारदर्शी नॉयलोन की साड़ी पर छपे फूल धीरे-धीरे हिलते हैं । सारे दिन के बाद जूड़ा ढीला हो, नीचे गर्दन पर टिका है और बैम्बूक्लिप का एक सिरा मांस में निरन्तर घुस रहा है ।"[3] उषा प्रियंवदा की "चाँदनी में बर्फ पर" कहानी में डाक्यूमेन्टरी फिल्म जैसा विवरण मिलते हैं । इसमें फोटोग्राफी टेकनीक की मिड-लांग शाट विशेषता पायी जाती है । "सारे दिन धूप खिली रही । ग्रीष्म में जहाँ झील का नीला पानी था, वहाँ अब दूर दूर तक केवल जमी हुई बर्फ दिखाई देती थी और उस पर शाम तक बच्चे स्केटिंग करते रहे ।"[4] इस मिड लांग दृश्य को कहानी के प्रारंभ में ही दिया गया है । इसप्रकार उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य के शिल्प

---

1. एक कोई दूसरा - उषा प्रियंवदा - पृ. 12
2. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ - उषा प्रियंवदा - पृ. 113
3. कितना बड़ा झूठ - मछलियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ. 98
4. एक कोई दूसरा - चाँदनी में बर्फ पर - उषा प्रियंवदा - पृ. 107

पक्ष के बारे में डॉ. नामवरसिंह का कथन सार्थक हो जाता है । वे कहते हैं - "मैं उषा प्रियंवदा के गहरे निर्मम विषाद, उनकी कला की चित्रात्मकता और तात्पर्य, उनकी भाषा की सहज प्रौढ़ता का प्रशंसक हूँ ।"[1]

शीर्षकों की मनोवैज्ञानिकता

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य के शीर्षक व्यक्ति की मानसिक स्थिति को अभिव्यक्ति देने लायक हैं । "टूटे हुए" आधुनिक दम्पति के टूटे हुए दाम्पत्य संबन्ध की ओर इशारा करता है तो "पिघलती हुई बर्फ" व्यक्ति के अचेतन में पडी अपराध-बोध की तीव्रता व्यक्त करता है । "सागर पार का संगीत" इसकी सूचना देती है कि प्रवासी जीवन बितानेवाली नारी को भारतीयता से कट जाना असंभव ही है । उषा प्रियंवदा का "वापसी" शीर्षक व्यक्ति के एकाकी जीवन में पुनः लौटने का संकेत देता है । "पचपन खंभे लाल दीवारें" सुषमा की मानसिकता का द्योतक है । वह छात्रावास के पचपन खंभे और लाल दीवारों के अन्दर जीने का निश्चय करती है । इसलिए यह शीर्षक भी अधिक संगत लगता है ।

निष्कर्ष

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की शिल्पगत विशेषता देखने योग्य है । उन्होंने अपने कथा-साहित्य में पूर्वदीप्ति शैली,

---

1. कहानी - नयी कहानी - डॉ. नामवरसिंह - पृ. 200

आत्मकथात्मक शैली, विवरणात्मक शैली आदि का प्रयोग किया है । ये कथानक के विकास और पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक हैं । उषा प्रियंवदा की भाषा तरल, स्पष्ट और चित्रात्मक है ।

उपसंहार

उपसंहार

आज का कथा-साहित्य एक ततत, गतिशील, ऐतिहासिक श्रृंखला का विकसित रूप है । प्रेमचन्द-पूर्व कथा-साहित्य का स्वरूप अस्पष्ट और अनिश्चित था । प्रेमचन्द ने उसे सामाजिक धरातल पर खडा किया और उसमें समष्टि मंगल की भावना भर दी । उन्होंने मध्यवर्गीय जनता के जीवन के रहस्यपूर्ण कोणों में प्रवेश करके स्थूल सामाजिक यथार्थ को वाणी दी । प्रेमचन्द ने समस्याओं का समाधान आदर्शमूलक परिणति में खोजा है । विश्वंभरनाथ कौशिक, बदरीनाथ भट्ट, सुदर्शन, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र इस समय के उल्लेखनीय कथाकार हैं । कौशिक जी ने व्यंग्यात्मक ढंग से युद्धोत्तर भारतीय परिस्थितियों को खींचा है । सुदर्शन के कथा-साहित्य का विषय परस्पर विरोधी चिन्ताधाराओं का द्वन्द्व है । उग्र जी के कथा-साहित्य के मूल में विद्रोही भावना झलकती है ।

उत्तर प्रेमचन्द-युग में हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में अनेक प्रवृत्तियों की शुरूआत हुई जिस पर परिवर्तित जीवन-मूल्यों, बौद्धिकता, दर्शन, मनोविज्ञान आदि का स्पष्ट प्रभाव है । इस युग में जीवन यथार्थ की अन्तरंगता का वैविध्यपूर्ण अंकन दिखायी पडता है । अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी ने मानव-मन के निगूढ यथार्थ को कथा का विषय बनाया तो यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव ने सामाजिक स्तर पर यथार्थबोध को अपनी रचनाओं द्वारा अनावृत किया । इन दो वर्गों में क्रमशः फ्रायडीय चिन्तन और मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि का

प्रभाव है । अन्तर्मन के कार्य-व्यापारों की प्रस्तुति हिन्दी कथा-साहित्य की नयी भावभूमि थी । जैनेन्द्र ने नारी विषयक परंपरागत रूढियों को मिटाया । उनका कथा-साहित्य चरित्र-प्रतिष्ठा के सबल प्रयत्नों का प्रमाण है । अज्ञेय ने मनोविश्लेषण और चिन्तन के आधार पर व्यक्ति के आत्मसंघर्ष को स्वर दिया है । अहंभाव की एकान्तिकता पर प्रहार करके जोशी जी ने मध्यवर्गीय जनता की दयनीय स्थिति की आलोचना की है । मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित यशपाल के कथा-साहित्य के पात्र कल्पित हैं, पर समस्याएँ सामाजिक यथार्थ की हैं । उच्चवर्ग के आडम्बरपूर्ण जीवन, मध्यवर्ग की संकीर्णता और निम्नवर्ग की विषमता उनके कथा-साहित्य के विषय हैं ।

नये युग के कथाकारों ने कथा-साहित्य को व्यक्तिपरक स्तर से हटाकर सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया । डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार - "यह सामाजिक दायित्व-बोध के निर्वाह की भावना प्रेमचन्द युग की देन है, न कि नयी कहानी की । प्रारंभ में आधुनिक कहानी का मूल उद्देश्य भी यही था, पर धीरे-धीरे उसमें भी दो धारायें होती गयीं और वह सामाजिक दायित्व-बोध के निर्वाह की भावना से आत्मपरक विश्लेषण की ओर ही मुडी ; 1960 के बाद इस प्रवृत्ति में पुनः परिवर्तन के आसार दृष्टिगोचर होते हैं और अनेक लेखकों का प्रयत्न आधुनिक कहानी को फिर से सामाजिक दायित्व-बोध के निर्वाह की भावना से सम्बद्ध कर देने की दिशा में परिलक्षित होता है ।"[1] नया

---

1. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - पृ. 37

कथा-साहित्य परिवेश के दबाव में बनते - बिगड़ते मानवीय संबन्धों, मूल्यों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति देता है । उसमें जीवन को उसकी संश्लिष्टता और जटिलता के साथ पकड़कर मानव-मूल्यों की खोज करने की प्रवृत्ति है । मानवीय जीवन की ट्रैजिक स्थितियों का मूल्यांकन करके व्यक्ति के बाहरी-भीतरी तनाव को मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी स्वीकारते हैं । वे हमें कृत्रिम जीवन-मूल्यों से मुक्ति देते हैं । मूल्य-विघटन को वे पारिवारिक और मानवीय संबन्धों के स्तर पर उद्घाटित करते हैं । महानगरीय सभ्यता में व्यक्ति मानसिक ग्रंथियों और असंगतियों का गुलाम बनकर अकेलापन का वरण करता है । संक्रान्त मनस्थितियों को उजागर करने पर मोहन राकेश और कृष्णबलदेव वैद बल देते हैं । शंकालु मानसिकता के कारण व्यक्ति विश्वासों और संबन्धों को नकारता है । धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा आदि के कथा-साहित्य में नागरिक जीवन की दुरूहता अंकित है । गाँव, पिछड़े हुए अंचल, कस्बों और मुहल्लों के टूटते-बनते जीवन को रूपायित करनेवालों में फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, अमरकान्त, विष्णु प्रभाकर के नाम उल्लेखनीय हैं । मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव वैद और उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में अस्मिता की तलाश करनेवाले व्यक्ति का चित्र है । ये पश्चिम के अस्तित्ववादी चिन्तन से प्रभावित हैं । मन्नू भण्डारी और कृष्णा सोबती के पास अनुभव के सीमित दायरे हैं । वे अपनी परिस्थितियों की चुनौतियों के बीच जूझती नारी जीवन की उफनती-कसमसाती नयी चेतना को लेकर कथा-साहित्य का चयन करती हैं । उनकी नारी पुरानी रूढ़ियों का परित्याग करती है । उनके कथा-साहित्य में नारी की

आन्तरिक मनःस्थितियों, अन्तर्द्वन्द्वों और उसकी मनोवृत्तियों का यथार्थ रूप है । कृष्णा सोबती के कथा-साहित्य में पारिवारिक जीवन की अछूती गुन्थियाँ उपलब्ध है । वे ताहत के साथ नारी की दमित इच्छाओं का खुला रूप अवतरित करती हैं, पात्र को उसकी कमज़ोरियों के साथ प्रस्तुत करती हैं, जीवनानुभव की आत्मिक सच्चाई को स्मृतियों के सहारे पर निर्मल वर्मा अभिव्यक्ति देते हैं । वे व्यक्तिपरक चेतना को कलात्मक ढंग से उद्घाटित करते हैं । आधुनिक मानव की जीवन-परिस्थितियों को गहराई से वे परखते हैं । विदेशी सभ्यता का अंग बनने में असमर्थ हो जाने पर यह मानव प्रवासी भारतीय मानसिकता का शिकार बनता है । उनकी अधिकांश रचनाओं का परिवेश विदेश है । परिवेश के व्यापक स्तर पर वे व्यक्ति के अकेलापन, संत्रास, कुण्ठा, आतंक की अभिव्यक्ति करते हैं । सामाजिक खोखलेपन और झूठी मर्यादाओं के प्रति तीखा व्यंग्य कृष्णबलदेव वैद के कथा- साहित्य में पाया जाता है । व्यक्ति की प्रवासी भारतीय मानसिकता की अभिव्यक्ति इनके कथा-लेखन में हुई है ; लेकिन परिवेश का सजीव वर्णन इसमें दिखाई नहीं देता । उषा प्रियंवदा इस धारा की लेखिका हैं । मन्नू भण्डारी और कृष्णा सोबती की अपेक्षा उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में आधुनिक वैविध्यपूर्ण जीवन के अनेक आयाम दिखाई पड़ते हैं । साठोत्तर युग में साहित्यिक जीवन की शुरूआत करके वे आज भी अपनी लेखन-कला से हिन्दी साहित्य की सेवा करती रहती हैं । उनका कथा-साहित्य प्रेमचन्द की यथार्थवादी परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी है । आँखों के सामने घटित जीवनानुभवों को उषा प्रियंवदा अभिव्यक्ति देती हैं । अर्थाश्रित पारिवारिक संबन्धों के परिप्रेक्ष्य में वे यह स्थापित करती हैं कि बेकार व्यक्ति को कामकाजी के वेतन पर आश्रित रहना

पडता है, उसको मानना पडता है, अन्यथा घर में उसका कोई स्थान नहीं होगा । यह चित्र झूठा नहीं, जीवित और वास्तविक है । जीवन-जगत की सच्चाइयों की बारीक विश्लेषण-क्षमता और मनोवैज्ञानिक पकड की सूक्ष्मता उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं । नफरत और प्रेम -व्यक्ति की इन दोनों भावनाओं को एकसाथ उषा प्रियंवदा अभिव्यक्त करती हैं । कृष्णबलदेव वैद, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में व्यक्ति की प्रवासी भारतीय मानसिकता का अंकन हुआ है । वैद परिवेश की अजनबी स्थिति को प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि व्यक्ति की इस मानसिकता को खींचते हैं । निर्मल वर्मा के समान उषा प्रियंवदा अपने पात्रों को उनके परिवेश में ही आंकित करती हैं । विदेश में मिसफिट व्यक्ति की प्रवासी भारतीय मानसिकता इनके कथा-साहित्य की मुख्य विशेषता है । विदेशी सभ्यता का अंग बनने के बाद भी इनके पात्र भारतीयता से जुडे हुए हैं । इसके पीछे लेखिका की मानसिकता छिपी हुई है कि स्वयं उषा प्रियंवदा अमेरीका में रहते हुए भी भारत से अलग न रह सकती । उषा प्रियंवदा परिचित व्यक्तियों की कथा यथावत् अवतरित नहीं करती, बल्कि कल्पना का सहारा लेकर कथा को पूर्णता देती हैं । "वापसी" कहानी के संदर्भ में यह द्रष्टव्य है । छुट्टियों के दिन उषा प्रियंवदा की मुलाकात एक स्टेशन मास्टर से होती है । यह भी ठीक है कि उससे लेखिका को उसके बच्चों की लापरवाही की जानकारी भी मिली । बल्कि रिटायर होकर घर लौटने के बाद की कहानी लेखिका की कल्पना पर आधारित है । फिर भी कथा-संगठन में जीवन्तता है । "छुट्टी का दिन", "संबन्ध", "टूटे हुए" जैसी कहानियों में भी उन्होंने इस प्रणाली को अपनाया है ।

कथ्य के स्तर पर उषा प्रियंवदा की कथा के केन्द्र में नारी है । यह नारी निजी व्यक्तित्व को मान्यता देकर, अपनी भावुक रुझानों से उभरकर निर्मम और ठोस निर्णय लेती है । नारी के परंपरागत और आधुनिक पक्षों को अनावृत करके उषा प्रियंवदा अपनी उत्कृष्टता का परिचय देती हैं । शिक्षा संपन्न नारी समाज में पुरुष के समान स्वातन्त्र्य और अधिकार चाहती है । आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने पर उसे यह आसान हो जाता है । लेकिन अन्य व्यक्तियों से उसका जो संबन्ध है उसमें ढीलापन आता है । रिश्ते की टूटन होने पर अपने जीवन की दिशा तय करने में वह असफल हो जाती है । पुरुष के बिना भी नारी जीवन बिता सकती । उषा प्रियंवदा की कथा में आधुनिक नारी की इस मनोभाव की झलक मिलती है । वे अबला, सीधी-सादी नारी की कथा नहीं कहती, बल्कि भारतीय नारी का शक्ति स्वरूप उभारती हैं । पति द्वारा छोडने पर वह अपने को कमज़ोर नहीं मानती और न "सती" प्रथा का पालन करती । वह अपने पैरों पर खडी होती है और सदियों से चलनेवाली रूढि का उल्लंघन करती है । लेखिका पुरानी और नयी पीढी का अन्तर मानती हैं । अब बेटे-बेटी को पिता डाँटता नहीं क्योंकि उसे मालूम है कि डाँटने से कोई फायदा नहीं, आधुनिक युग के बच्चे किसी के अधीन रहना नहीं चाहते चाहे वह पिता हो या माँ ।

बदलते प्रेमी-प्रेमिका संबन्ध का दृश्य उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता है । आज के प्रेमी और प्रेमिका प्यार पाने के लिए तडपते रहते हैं, दूसरों को प्यार देने के

लिए वे तैयार नहीं होते । आधुनिक नारी उन्मुक्त प्रेम चाहती है । वह बन्धनों में जकडना नहीं चाहती । उसका प्रेमी विवाहित भी हो सकता है या अविवाहित, स्वदेशी भी हो सकता है या विदेशी । उसे इसकी परवाह नहीं । ऐसी भी नारियाँ हैं जो समाज के लिए-परिवार के लिए अपने प्रेमी को छोडकर नारी महत्ता को बढावा देती हैं । नारी की श्रेष्ठता के साथ ही लेखिका पुरुष के गुणों की प्रशंसा करती हैं । उनका पुरुष पात्र मनपसन्द लडकी को उसकी शादी और तलाक के बाद स्वीकार करने से हिचकता नहीं । एक ओर गुरु-शिष्य संबन्ध की आत्मीयता और पवित्रता को और दूसरी ओर अध्यापिका की कमियाँ ढूँढने में तत्पर छात्राओं को लेखिका प्रस्तुत करती हैं ।

दाम्पत्य जीवन के विभिन्न आयामों का उद्घाटन उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य की महत्वपूर्ण विशेषता है । उनकी कथा में पति-पत्नी का आदर्श संबन्ध मिलता है । वैवाहिक संबन्धों में पर-पुरुष या पर-स्त्री का आगमन होता है । पत्नी और माँ होते हुए भी पर-पुरुष से संबन्ध रखकर नारी हमारी परंपरागत नारी-महिमा को चोट पहूँचाती है । इसकी परिणति संबन्ध-विच्छेद और संबन्ध-ढीलापन में होती है । काममूलक संवेदना लेखिका इस प्रकार अंकित करती हैं कि उनके नारी या पुरुष पात्र कहीं भी सीमा नहीं तोडते । वे मनुष्यसहज कामवृत्ति की पूर्ति के लिए ऐसे संबन्धों को बनाये रखते हैं । लेखिका इस संदर्भ में अपराध बोध से ग्रसित में सन्तुष्ट होनेवाली नारी का चित्र भी खींचती हैं ।

उषा प्रियंवदा के कथा-साहित्य में नैतिक पक्ष का उद्घाटन हुआ है । संयुक्त-परिवार विघटन उनकी कथा का उल्लेखनीय पहलू है । इस विघटन का कारण परिवार - सदस्यों के आपसी समझौते का अभाव है । व्यक्ति अपनी सुख-सुविधाओं को अधिक महत्व देता है, दूसरों की नहीं । ऐसी स्थिति में एकला परिवार उत्पन्न हो जाता है । सदियों से चलनेवाली मान्यताओं को तोडकर नैतिक मूल्यों को बदलने में नारी का बहुत बडा हाथ है । मनपसन्द पुरुष से संबन्ध स्थापित करते समय वह स्वदेश और स्वजनों की याद नहीं करती । अनैतिकता का प्रदर्शन करनेवालों में पुरुष की संख्या नारी से कम नहीं । प्रवासी भारतीय मानसिकता से युक्त नारियों के समान पुरुष का उल्लेख भी मिलता है । भारतीयता पर अनुरक्त पात्र विदेशी परिवेश में घुटकर जीवन बिताता है । पात्रों की इस मानसिकता का कारण परिवेश या दूसरा व्यक्ति नहीं, स्वयं वे हैं । भावावेश में वे यह नहीं सोचते कि स्वजनों और स्वदेश को छोडने पर उनका कोई बन्धु या मित्र नहीं होगा ।

उषा प्रियंवदा का पात्र नैतिक मूल्यों को कायम रखने का प्रयत्न करता है । वह अपनी परंपरागत नैतिक मान्यताओं को ठुकराना नहीं चाहता । इसलिए वह घर को विघटन से बचाता है । घर की हालत सचमुच दयनीय होते हुए भी - शरीर के मोल पर धन कमाने का अवसर मिलने पर भी नारी इसके लिए तैयार नहीं होती । युवा पीढी जीवन की समस्याओं से भागने के लिए आत्महत्या का सहारा लेती हैं और दूसरों से बदला लेकर भारतीय नैतिक मूल्यों को ठुकराती हैं । आज के सामाजिक जीवन में व्यक्ति के कथन और करनी में बहुत अन्तर है । लेखिका अनेक स्थानों पर इस झूठी सामाजिक नैतिकता पर व्यंग्य करती हैं ।

किती न किती तरह परिवेश से समझौता करने में अंततः व्यक्ति अस्मिता की खोज में मग्न हो जाता है । उषा प्रियंवदा के अनुसार व्यक्ति दुर्बल नहीं, बल्कि विशेष परिस्थितियों में वह बेबसी, हार और अकेलापन को भोगने को बाध्य हो जाता है । लेखिका व्यक्ति के अकेलापन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन करती हैं । स्वेच्छा से स्वीकृत अकेलापन भी है । व्यक्ति के सामने अकेलापन से बचने का द्वार खुला हुआ है । लेकिन वह इससे बचना नहीं चाहता । लेखिका परिवार-सदस्यों के बीच उत्पन्न दूरी और अलगाव को भी अंकित करती हैं । परिवार के सदस्य एक दूसरे की समस्याओं को समझने और उसका हल करने को तैयार नहीं होते । परिवारवालों के आपसी समझौते के बिना घरेलू जीवन को आगे बढाना मुश्किल ही है । ऐसी स्थिति में आत्महत्या के द्वारा व्यक्ति इस दुनिया से भी मुक्ति पाता है । माँ-बाप के झगडे के कारण बच्चे भी अजनबी बन जाते हैं । आज नयी पीढी वृद्ध पीढी को समाज में और परिवार में अजनबी बनाती हैं । नौकरी करते समय व्यक्ति को कभी कभी अफसर की कटूक्तियों को सहनी पडती है । लेकिन आत्मसम्मान के लिए नौकरी छोडकर बेकार रहने पर वह घर में अपने को अकेला पाता है । वैवाहिक संबन्ध में अलगाव का मुख्य कारण अपरिचित परिवेश और वंचना है । देरी से दाम्पत्य जीवन की शुरूआत करने पर और आर्थिक असमानता की वजह से भी वैवाहिक संबन्धों में दरारें पड जाती हैं । पति में रोमांस की कमी होने पर पत्नी पर-पुरुष से संबन्ध रखना चाहती है । उषा प्रियंवदा की कथा में सबका उल्लेख है ।

प्रेमी द्वारा छोडने पर उनकी यादों में कुंवारी रहनेवाली नारियाँ निराश होकर अकेले रहने का धैर्य दिखाती हैं । विदेश में रहते वक्त स्वदेश की यादों से पीडित पात्रों को अकेलापन का वरण करना पडता है । पापबोध से उत्पन्न अकेलापन भी अंकित है । आर्थिक कमी की वजह से घुटन भोगनेवाली नारियों को भी उषा प्रियंवदा प्रस्तुत करती हैं ।

नयी कहानी के शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से उषा प्रियंवदा का कथा-साहित्य महत्वपूर्ण है । उषा प्रियंवदा पूर्वदीप्ति शैली, विवरणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादात्मक शैली, विलीन शैली आदि नये नये प्रयोग करती हैं । पात्रों के रूप-रंग, कपडे, उसकी संवेदनाओं के उत्थान-पतन, घात-प्रतिघात का सुन्दर चित्र उषा प्रियंवदा कुशलता से खींचती हैं । पात्रों की शैक्षिक योग्यता के अनुसार कथोपकथन का चयन हुआ है । पात्रानुकूल वातावरण भी उषा प्रियंवदा की कथा की उल्लेखनीय बात है । वे समाप्ति से कथा की शुरूआत करती हैं । पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण उनके कथा-साहित्य में कई स्थानों पर अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग हुआ है । सरल, सपाट भाषा की वजह से पाठक की संवेदना कथा से आसानी से तादात्म्य स्थापित करती है । व्यक्ति की मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति देने लायक शीर्षकों का प्रयोग करके लेखिका ने अपने कथा-साहित्य को एक नया रूप दिया है । नये कथाकारों में उषा प्रियंवदा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

उषा प्रियंवदा की रचनाएँ

उपन्यास

1. पचपन खंभे लाल दीवारें - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
   प्र. सं. 1961.
2. रुकोगी नहीं.....राधिका ? -अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली ।
   प्र. सं. 1968.
3. शेष यात्रा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
   प्र. सं. 1984.

कहानी-संग्रह

1. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।
   चौथा संस्करण 1975.
2. एक कोई दूसरा - अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली ।
   प्र. सं. 1966
3. कितना बड़ा झूठ - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
   प्र. सं. 1972
4. मेरी प्रिय कहानियाँ - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली ।
   प्र. सं. 1974

संदर्भ - ग्रंथ

1. आत्मनेपद - अज्ञेय
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1960
2. अधूरे साक्षात्कार - नेमिचन्द्रजैन
   वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1966
3. अस्तित्ववाद और नयी कहानी - डॉ. लालचन्द गुप्त मंगल
   शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1975
4. आज की हिन्दी कहानी - विचार और प्रतिक्रिया - मधुरेश
   ग्रन्थ निकेतन, पटना, प्र.सं. 1971
5. आज का हिन्दी साहित्य - संवेदना और दृष्टि - डॉ. रामदरश मिश्र
   अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1975
6. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
   साहित्य भवन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1966
7. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - डॉ. नरेन्द्र मोहन
   दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड,
   दिल्ली, प्र.सं. 1975
8. आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य -
   कृष्ण बिहारी मिश्र
   आर्य बुक डिपो, दिल्ली, प्र.सं. 1972
9. आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काममूलक संवेदना -
   डॉ. श्रीराम बा. महाजन
   चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1986.
10. आलोचना और साहित्य - डॉ. इन्द्रनाथ मदान
    राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

11. एक दुनिया समानान्तर - राजेन्द्र यादव
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, ती. सं. 1974

12. कहानीकार मोहन राकेश - तुषमा अग्रवाल
पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1979

13. कहानी - नयी कहानी - डॉ. नामवरसिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि. सं. 1973

14. कहानी-स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि. सं. 1977

15. छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. अरुणा गुप्ता
ग्रन्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1989

16. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -
डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र. सं. 1982

17. नयी कहानी - मीरा तीकरी
पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1984

18. नयी कहानी - उपलब्धि और संभाएँ - डॉ. गोरधनसिंह शेखावत
राना पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

19. नयी कहानी - कथ्य और शिल्प - डॉ. सन्तबख्श सिंह
अभिनव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1973

20. नयी कहानी के विविध प्रयोग - डॉ. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1974

21. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर
शब्दकार, दिल्ली, प्र. सं. 1978

22. नयी कहानी-दशा, दिशा, संभावना - श्री. सुरेन्द्र
अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर, प्र.सं. 1966

23. नयी कहानी - नये प्रश्न - डॉ. सन्ताबरक्षा सिंह
साहित्यालोक, कानपुर, प्र.सं. 1981

24. नयी कहानी - प्रकृति और पाठ - श्री. सुरेन्द्र
परिवेश प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1968

25. नयी कहानी - संदर्भ और प्रकृति - डॉ. देवीशंकर अवस्थी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1973

26. परंपरा बन्धन नहीं - डॉ. विद्यानिवास मिश्र
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1976

27. प्रेमचन्द की विरासत और अन्य निबन्ध - राजेन्द्र यादव
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1978

28. प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य - डॉ. राधेश्याम गुप्त
विमल प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1970

29. भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ - डॉ. प्रमीला कपूर
साहित्य मण्डल प्रकाशन दिल्ली

30. भाषा और संवेदना - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1964

31. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ -
डॉ. शीलप्रभा वर्मा
विद्या विहार, कानपुर, प्र.सं. 1987

32. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता - डॉ. शशि जैकब
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1989

33. महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रेम का स्वरूप - सरिता सूद
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1978
34. मानव मूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1960
35. विवेक के रंग - डॉ. देवीशंकर अवस्थी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1965
36. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - मूल्य संक्रमण - डॉ. हेमेन्द्रकुमार पानेरी
संधी प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1974
37. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन-दर्शन -
डॉ. सुमित्रा त्यागी
साहित्य प्रकाशन, मध्यप्रदेश, प्र.सं. 1978
38. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्निहोत्री
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1983
39. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कथ्य और शिल्प - डॉ. शिवशंकर पाण्डेय
आलेख प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1978
40. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन - डॉ. भैरू लाल गर्ग
चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1979
41. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में शिल्पविधि का विकास -
डॉ. तहसीलदार दूबे
नटराज पब्लिशिंग हाउस, हरियाणा, प्र.सं. 1983
42. समकालीन कहानी का रचना-विधान - डॉ. गंगाप्रसाद विमल
सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली, प्र.सं. 1967

43. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका - डॉ. रणवीर रांग्रा
जगतराम एण्ड सन्स, दिल्ली

44. समकालीन हिन्दी कहानी - विविध संदर्भ - डॉ. कीर्ति केसर
नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1987

45. साठोत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पारुकान्त देसाई
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1984

46. साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी - डॉ. किरण बाला अरोड़ा
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1990

47. साठोत्तर हिन्दी कहानी - मूल्यों की तलाश - डॉ. वासुदेव शर्मा
शारदा प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1986

48. सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन - डॉ. रमेश कुन्तल मेघ
हिन्दी विभाग, गुरु नानक यूनीवर्सिटी,
अमृतसर, 1975.

49. हिन्दी उपन्यास - उपलब्धियाँ - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1970

50. हिन्दी उपन्यास - एक नयी दृष्टि - डॉ. इन्द्रनाथ मदान
लिपि प्रकाशन, दिल्ली

51. हिन्दी उपन्यासों के असामान्य चरित्र - डॉ. सुजाता
मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्र.सं. 1983

52. हिन्दी उपन्यास के पद-चिह्न - डॉ. मनमोहन सहगल
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1973

53. हिन्दी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी - डॉ. राजरानी शर्मा
साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1989
54. हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना - डॉ. एन.के.जोसफ़
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1989
55. हिन्दी कहानी - अलगाव का दर्शन - डॉ.गॉर्डन वार्ल्स रोडरमल
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1982
56. हिन्दी कहानी - एक नयी दृष्टि - डॉ. इन्द्रनाथ मदान
संभावना प्रकाशन, हापुड, प्र. सं. 1978
57. हिन्दी कहानी - एक अन्तरंग परिचय - श्री उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1967
58. हिन्दी कहानी - दो दशक की यात्रा - डॉ.रामदरश मिश्र,
डॉ.नरेन्द्र मोहन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1970
59. हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य - डॉ. रमेशचन्द्र लवानिया
अमित प्रकाशन, गाज़ियाबाद, प्र. सं. 1973
60. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
साहित्य भवन, इलाहाबाद, द्वि. सं. 1960
61. हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार - डॉ. बलवन्द आनन्द
तूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1978
62. हिन्दी लघु उपन्यास - घनश्याम मधुप
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1971

63. हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा - डॉ. दीमशिन्त
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1966

64. शृंखला की कड़ियाँ - महादेवी वर्मा
भारती भण्डार, इलाहाबाद, षष्ठ सं. 1931

65. An Introduction to the study of Literature-
William. Henry. Hudson.
George.G. Harrap & Co. Ltd. London.1910.

66. Illusion and Reality- Cristopher caudwell.
A.D. Lawrence & Wishart Ltd. London. 1950.

67. Literature and Life - Maxim Gorkey.
progress publishers, Moscow.

68. Man alone - Alienation in modern society -
Robert Macklever.
Hamish Hamilton , London.

69. Selected prose - T.S. Eliot.
Penguin books, England,1953.

70. Society an Introductory analysis - R.M. Maciver,
Charles. H. page.
Macmillan , London, 1961.

71. The outsider - Albert camus.
Hamish Hamilton, London, 1960.

72. The writer and his world - charles Morgein.
Macmillan , London , 1961

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना - अप्रैल - जून, 1968
2. आलोचना - परंपरा का नया मोड़ रोमान्टिक यथार्थ - - डॉ बच्चनसिंह 1967
3. कल्पना - सामाजिक गतिशीलता और आधुनिक कहानी - कपिलकुमार तिवारी - दिसंबर 1976
4. ज्ञानोदय - मेरी सृजन-प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - अगस्त 1969
5. धर्मयुग - 27 मार्च 1966
6. नई कहानियाँ - परिसंवाद - कहानी "अच्छी और नयी" - नामवरसिंह - जून 1962
7. वातायन - जनवरी 1966
8. समकालीन भारतीय साहित्य में पूर्व और पश्चिम के मूल्यों के बीच अवरोध की स्थिति - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, क, ख, ग अंक 1, 1963.
9. साप्ताहिक हिन्दुस्तान - डॉ. गंगाप्रसाद विमल - 30 मार्च 1980
10. नई कहानी - शिल्पविधान - भाषा त्रैमासिक, सितंबर 1981 - डॉ चन्द्रशेखर कर्ण
11. भाषा त्रैमासिक - दिसंबर 1985 - आधुनिक हिन्दी कहानी - भाषिक संरचना के नये आयाम - डॉ. पुष्पपाल सिंह
12. मधुमती - फरवरी 1968

==========